"शिव प्रसाद सिंह और फणीश्वर नाथ रेणु के कथा–साहित्य में आंचलिकता की परिकल्पना"

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की डी0 फिल0
उपाधि हेतु

शोध-प्रबन्ध

शोध निर्देशक
डॉ0 राम किशोर
रीडर
हिन्दी–विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

शोध-छात्र
रमेश कुमार शुक्ल
हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

2002

अनुक्रमणिका

भूमिका

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कथा-साहित्य में सन् 1950 के आस-पास ग्रामीण पृष्ठभूमि पर जिस कथा-साहित्य को प्रणायन हो रहा था, उसमें स्थानीय रंग की एक अपरिचित सी आहट 'आंचलिक' शब्द के रूप में सुनाई पड़ी। आंचलिक कथाकार रेणु ने 'मैला ऑचल' की संक्षिप्त भूमिका में लिखा था– 'यह है मैला आँचल एक आंचलिक उपन्यास। कथानक है पूर्णिया। मैंने इसके एक हिस्से के एक गाँव को पिछड़े गाँव का प्रतीक मानकर कथा का क्षेत्र बनाया है ---------। वस्तुतः हिन्दी कथा-साहित्य में आंचलिक जैसा विशिष्ट शब्द सर्वप्रथम यहीं सुनाई देता है। यद्यपि कि ग्रामीण पृष्ठभूमि पर बहुत से कथा-साहित्य की रचना हो चुकी थी और हो रही थी, पर आंचलिक कथा-साहित्य का आन्दोलन लगभग इसी समय आरम्भ होता है। प्रेमचन्द और उसके बाद बहुत से लेखकों ने गांव की मिट्टी को कथा-साहित्य में स्थान दिया, परन्तु रेणुजी ने एक विशिष्ट शैली, भौगोलिक भूभाग एवं लोकसंस्कृति को साहित्य में प्रतिष्ठित किया, जो आगे चलकर आंचलिक कथा-साहित्य के रूप में हिन्दी-साहित्य में विख्यात हुआ।

आंचलिकता की सोंधी महक से विविध सम्भावनाओं के द्वार खोलने वाले लेखकों में रेणु व शिव प्रसाद सिंह का नाम उभरकर सामने आता है। इसका कारण है– एक ओर रेणु का साहित्य जहाँ अछूते ग्रामांचलों की सोंधी महक से सराबोर है, नित्य उठती विशिष्ट समस्याओं से त्रस्त हैं तथा शैली की दृष्टि से एक नई दृष्टि से ओत-प्रोत है, वहीं शिव प्रसाद सिंह टूटती हुई सामन्तवादी व्यवस्था से बनते हुए एक नये भारत की तस्वीर खींचने की ओर उन्मुख दिखाई देते हैं। आम आदमी के जीवन के जीवन्त दस्तावेज प्रस्तुत करने वाली वे कथाएँ जीवन की गहरी पकड़ और प्रवृत्ति की 'पैरामानिक' सुषमा के साथ शिल्प की सहज सूक्ष्मता और जीवन्तता के अद्भुत संयोजन के कारण अपने एक अलग एवं विशिष्ट महत्व रखती हैं। इस प्रकार आंचलिक कथा-साहित्य के पितामह फणीश्वर नाथ रेणु और आंचलिकता की परिधि के सहारे गहरे केन्द्र

में उतरने वाले कथाकार शिव प्रसाद सिंह के कथा-साहित्य में आंचालिकता की परिकल्पना की खोज एक महत्वपूर्ण आवश्यकता बन जाती है। इसी कारण मैंने इन्हीं दो लेखकों की रचनाओं में आंचलिकता की परिकल्पना का विश्लेषण, अन्वेषण एवं परीक्षण करना आवश्यक समझा।

एक अन्य दृष्टि से भी दोनों कथाकारों का महत्व सिद्ध होता है। रेणु के धरतीपुत्रों की रपटें यह दिखाती हैं– आजादी के लिए तड़प रहे नौजवानों के ग्रामीण अंचल परिवर्तन के लिए किस तरह तड़प रहे हैं, राष्ट्रीय धारा में मिलने की कोशिशें शिव प्रसाद सिंह तक आते-आते कितनी सफल रही हैं। इन्ही धड़कनों एवं अकुलाहटों को परिवेशगत तथा शैलगत रूप में रूपायित करने हेतु शोध की रूपरेखा बनाई गई है।

सम्पूर्ण शोध-प्रबन्ध को पाँच अध्यायों में बाँटा गया है जिनका विवरण इस प्रकार है–

भूमिका

प्रथम अध्याय– आंचलिकता की परिकल्पना– परिभाषा, उद्‌भव व प्रवृत्तिगत विशेषतायें

द्वितीय अध्याय– आंचलिक कथा-साहित्य के तत्व– लोकतत्व तथा शिल्पगत तत्व

तृतीय अध्याय– फणीश्वरनाथ रेणु का कथा-साहित्य आञ्चलिक सन्दर्भ में

क. संक्षिप्त जीवन परिचय

ख. कृतित्व

ग. आंचलिक सन्दर्भ– 1. लोक तत्व के रूप में

2. शिल्पगत तत्व के रूप में

चतुर्थ अध्याय– शिव प्रसाद सिंह का कथा-साहित्य आंचलिक सन्दर्भ में–

क. संक्षिप्त जीवन परिचय

ख. कृतित्व

ग. आंचलिक सन्दर्भ– 1. लोक तत्व के रूप में

2. शिल्पगत तत्व के रूप में

पंचम अध्याय– फणीश्वरनाथ रेणु और शिवप्रसाद सिंह के कथा-साहित्य का आंचलिकता के सन्दर्भ मे तुलनात्मक अध्ययन

उपसंहार

प्रथम अध्याय के अन्तर्गत आञ्चलिकता के विविध पहलुओं पर विस्तार से विचार किया गया है। आंचलिक कथा-साहित्य की परिभाषा पर ही शतशः विद्वानों के विचार विश्लेपित किये गये हैं। चूँकि रेणु स्वयं आंचलिक कथाकार होने का गौरव प्राप्त करते हैं, अतएव उनके विचार को केन्द्र में रखकर सभी परिभाषाओं पर विचार किया गया है। ''मैला आँचल'' की भूमिका में लिखे गये शब्द 'अंचल' की पृष्ठभूमि तैयार करने में काफी सीमा तक सक्षम हैं। इसके अलावा शिव प्रसाद सिंह तथा अन्य समीक्षकों के विचार आंचलिक सन्दर्भ में विश्लेषित किये गये हैं, यथा– डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, नन्द दुलारे वाजपेयी, डॉ. राम दरश मिश्र, विवेकीराय, डॉ. पूर्णदेव, परमानन्द श्रीवास्तव, डॉ. गोपाल राय, राजेन्द्र अवस्थी, कुसुम सोफ्ट, डॉ. आदर्श सक्सेना, विमल शंकर नागर तथा जवाहर सिंह परिभाषा के अतिरिक्त आंचलिकता के उद्भव तथा प्रवृत्ति पर विस्तृत गवेषणात्मक खोजबीन की गई है। प्रवृत्ति के भीतर मुख्यतः चार बिन्दुओं– अंचल का सम्बन्ध विशेष भूभाग से, व्यक्ति-क्षेत्र-समाज, नायकत्व की प्रमुखता तथा स्थानीय रंगत-पर विचार किया गया है।

द्वितीय अध्याय में आंचलिकता के स्वरूप पर विचार किया गया है। आंचलिक कथा-साहित्य के दो मुख्य बिन्दुओं– लोकतत्व तथा शिल्पगत सौन्दर्य। पर विस्तार से

चर्चा की गई है। लोक जीवन में सांस्कृतिक महत्व के बिन्दुओं तथा शिल्पगत तत्वों पर विविध उदाहरणों द्वारा विश्लेषण किया गया है।

लोकतत्व आंचलिक कथा का प्राण होता है। लोकतत्व से तात्पर्य उस विशेष भूभाग की सांस्कृतिक विशेषता, जो उसे अन्य भागों से सर्वथा पृथक् रखती है। जैसे की किसी भू-भाग की अपनी जीवन-शैली– सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं आर्थिक। मुख्य रूप से जड़ता, मूर्खता, अन्धविश्वास, कामुकता, जाँतिपाँचि, रहन-सहन, आचार-विचार, मेले-ठेले, उत्सव-त्योहार, आभूषण, नृत्य, लोकगीत, वाद्य यन्त्र तथा अन्य स्थानीय प्रिय वस्तुएँ ------- मेले त्योहार आदि। लोक बोली में मुहावरे, उक्तियाँ, गालियाँ, हास्य-व्यंग्य, विभिन्न भाषाओं के गढ़े हुए शब्द एवं फिल्मी धुनों पर आधारित स्थानीय गीत।

शिल्पविधि के अन्तर्गत– कथा वस्तु का चयन, पात्र परिकल्पना संवाद, लोकबोली, उद्देश्य तथा देशकाल पर विधिवत् बहुपक्षीय दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है। कथावस्तु का चयन नगरों की अपेक्षा प्रायः अनजाने व अनचीन्हें स्थानों में किया जाता है, जहाँ की जीवन शैली सर्वथा अन्य साधनों से पृथक् है। इसी प्रकार पात्रों का चरित्र-चित्रण, संवाद, लोक भाषा, उद्देश्य व देशकाल में एक तरह की विशिष्टता पाई जाती है, जिसका सम्यक् विवेचन दूसरे अध्याय में किया गया है।

तृतीय अध्याय में फणीश्वरनाथ रेणु के समूचे कथा-साहित्य को आंचलिक सन्दर्भ में विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। वस्तुतः रेणु से ही आंचलिक कथा-साहित्य का उदय होता है, इसलिए स्वभावतः उनके कथा-साहित्य की खोजबीन आंचलिता की परिधि में किया गया है। विद्वत्जन् उनके कथा-साहितृय में आचंलिकता की खोज तो की है, किन्तु उनके साहित्य के अन्य प्रगतिशील तत्वों को प्रायः नजरअन्दाज ही किया है। क्योंकि रेणु को आंचलिक कथाकार आँख मूँदकर मान लिया गया है। मेरे विचार से किसी भी लेखक के साथ यह बेमानी मान्यता है। फणीश्वरनाथ रेणु के कथा-साहित्य

में आंचलिकता की परिकल्पना के साथ-साथ ही यह खोजने का भी प्रयास किया है कि आंचलिक धड़कनों में वे कौन से ऐसे प्रेरक तत्व है जिनसे रेणु के कथा-साहित्य ने एक नये क्षितिज की ओर संकेत किया है।

रेणु का समूचा कथा-साहित्य एक नवीन परिवेश के साथ सामने आता है– लोकतत्वीय तथा शिल्पगत्। उनकी कुछेक कहानियाँ तथा तीन उपन्यासों में आंचलिकता की पैठ इतनी गहरी हुई है कि शिल्प स्वयं बोल उठा है, लोकतत्व स्वयं पुकार उठा है।

रेणु के कथा-साहित्य में अंचल की विशेषता– स्वार्थ, अन्धविश्वास, जादू-टोना, गन्दगी, मूर्खता, जाति-पाँति, कामुकता, ज्योतिष, व्यवसाय, कुंठाऍं और ग्रन्थियाँ तथा युग-चेतना का प्रवेश एवं अंचल की विविध समस्याएँ– बड़े ही सहज रूप में प्रकट हुई हैं। रेणु ने अति यथार्थ का इतना सीधा वर्णन किया है कि वहॉ का सम्पूर्ण जीवन एकदम सामने आ जाता है। लोकसंस्कृति में भोज्य पदार्थ, अस्त्र-शस्त्र, परिवहन के साधन, वस्त्र, आभूषण, उत्सव-त्योहार, वाद्ययंत्र, सभासंघ, लोकहास्य, लोकगीत, लोकनृत्य, उक्तियॉ तुकबन्दी और लोकबोली को अच्छी तरह से विवेचित करने का प्रयास किया गया है। उनके आंचलिक उपन्यासों– 'मैला ऑचल', 'परती-परिकथा', 'जुलूस' में आंचलिक तत्व गहरे रूप में तथा 'दीर्घतपा' 'कितने चौराहे' तथा 'पलटूबाबू रोड' आदि उपन्यासों में आंचलिक भावधारा को छूते हुए कथाएँ एक अकथ भविष्य की ओर मुड़ गई हैं, जिनका सम्यक् विवेचन किया गया है। कहानियों में– 'ठुमरी' 'आदिमरात्रि की महक', अच्छे लोग' तथा 'अग्निखोर' संग्रह की चुनी हुई कहानियाँ आंचलिक भाव-धारा का अच्छा पिष्टपेषण करती हैं। खोज सम्बन्धी प्रयास यह रहा है कि आंचलिक कहानियों के सम्पूर्ण परिवेश को प्रभावित करने वाले तत्वों को उजागर किया जाय, जिससे आंचलिकता के सम्भावना-द्वार परत--दर-परत खुलते जायँ। आंचलिक तत्वों का विश्लेषण करते समय उनकी समस्याओं पर भी ध्यान दिया गया है।

चतुर्थ अध्याय में शिव प्रसाद सिंह के कथा-साहित्य का आंचलिक सन्दर्भ में अध्ययन किया गया है। उनके अब तक के निःसृत साहित्य के आधार पर 'अलग-अलग वैतरणी', 'गली आगे मुड़ती है', 'शैलूष' तथा 'नीला चाँद', 'कोहरे में युद्ध', 'दिल्ली दूर है', 'वैश्वानर', 'मंजुशिमा' उपन्यास तथा 'अन्ध कूप' और 'एक यात्रा सतह के नीचे' कहानी संग्रह को आंचलिक संदर्भ में विश्लेषित किया गया है। शिव प्रसाद सिंह जी ने स्वयं ही अस्वीकार किया है कि उनके उपन्यास तथा कहानियों में आंचलिकता की गन्ध तक नहीं है और इस बात पर वे असहमत भी हैं, परन्तु मेरे आलोचक मन ने 'कुछ न होने का कुछ' समझा है और शायद यह सत्य भी है कि आंचलिता की गन्ध से दूर रहने वाले सिंह जी के कथा-साहित्य में कुछ को छोड़कर वे सारे तत्व उपस्थित हैं। अलबत्ता उनके अन्य उपन्यासों ने इसीलिए ऐतिहासिक, पौराणिक रूप धारण कर आंचलिकता की बदनामी से बचने का प्रयास किया है। मेरा यही प्रयास रहा है कि जबरन् किसी कटघरे में किसी को न रखकर, मात्र इतना ही किया है कि कहाँ तक आंचलिकता की परिकल्पना शिव प्रसाद सिंह के कथा-साहित्य में रूपधारण कर सामने आ पाई है।

इसी क्रम में डॉ. सिंह से साक्षात्कार करके आंचलिकता पर उनसे खुली बातचीत की है। यह बातचीत और प्रस्तुत विश्लेषण सत्य की कसौटी नहीं, मात्र उनके विचारों के स्फुटीकरण का एक उद्देश्य है। डॉ. सिंह की कहानियों के भी व्यापक विश्लेषण किये गये हैं। ध्यातव्य तथ्य यह है कि डॉ. सिंह ने अपने मंजुशिमा, नीलाचाँद, कोहरे में युद्ध, दिल्ली दूर है, वैश्वानर तथा औरत उपन्यासों पौराणिक ऐतिहासिक एवं व्यक्तिगत आख्यानों का समावेश किया है, जो प्रस्तुत सन्दर्भ में सार्थक संकेत नहीं करते हैं, अतएव इन्हें शामिल नहीं किया गया है। मात्र तीन उपन्यास ही समीक्षा के केन्द्र में रहे हैं।

पंचम अध्याय में फणीश्वरनाथ रेणु तथा शिव प्रसाद सिंह के कथा-साहित्य का आंचलिक सन्दर्भ में विश्लेषित किया गया है। इस अध्याय में दोनों कथाकारों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। आंचलिक सन्दर्भ में फणीश्वरनाथ रेणु तथा शिव

प्रसाद सिंह के कथा-साहित्य का बेबाक विवेचन किया गया है। आंचलिकता की परिसीमाओं (लोक संस्कृति तथा शिल्प सौन्दर्य के व्यापक पहलुओं के साथ) में दोनों के कथा-उद्देश्य, संवाद, चरित्र-चित्रण, भौगोलिक ऐक्य तथा समस्याओं की गहन समीक्षा की गई है। यह प्रयास किया गया है कि दोनो कथाकारों के 'अंचल' की वे कौन सी ऐसी विशेषताएँ हैं, जिनसे समूचे कथा-जाल का निर्माण होता है, ऐसे तथ्यों को उजागर किया जाय। रेणु में जहाँ अपरिचित, अनचीन्ही माटी की सोंधी महक है, वहीं शिव प्रसाद सिंह में मिट्टी की महक के स्थान पर व्यक्तियों के व्यक्तिगत जीवन की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। मेरी दृष्टि में शिव प्रसाद सिंह का कथा-साहित्य विशिष्ट 'अंचल' में रचे-बसे उन मानवों की वह अन्तहीन गाथा है, जिनसे स्वयं शिव प्रसाद सिंह का व्यक्तित्व फलीभूत हुआ है।

उपसंहार में आंचलिक कथा-साहित्य के उद्‌भव के कारणों, उद्देश्य तथा भविष्य पर गहरी चर्चा हुई है। आने वाले साहित्य में आंचलिक कथा-साहित्य का क्या कथ्य होगा तथा संभावनाओं के द्वार किस दिशा में खुलेंगे, इस पर अपने विचार व्यक्त किए गये हैं।

अन्त में इस शोध-प्रबन्ध के निर्देशक गुरुवर डॉ. रामकिशोर शर्मा जी, रीडर, हिन्दी विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अमूल्य योगदान के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। समय-समय पर अपने गुरु गम्भीर चिन्तन द्वारा मुझे दिशा निर्देश देते रहे, जिससे सही दिशा में इस कार्य को पूर्ण किया जा सकता है। शोध-प्रबन्ध के पूर्ण होने के मार्ग में आने वाले विद्वत्जन् डॉ. मिथिलेश कुमार त्रिपाठी 'सरल', हरिमालवीय उद्‌घोषक आकाशवाणी इलाहाबाद, मित्र डॉ. दयाशंकर तिवारी, प्रो. मोहन अवस्थी तथा डॉ. राजेन्द्र कुमार, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग तथा राजकुमार शुक्ल लेखाधिकारी आदि के अमूल्य सुझावों को नहीं भुलाया जा सकता। शोध-प्रबन्ध के लिखते समय बाल-सुलभ जिज्ञासा से भरी रागिनी, रञ्जिनी तथा ऋतेष तथा धर्मपत्नी रीता शुक्ला का योगदान मेरे जीवन की अमूल्य निधि है। शोध प्रबन्ध के लिखते समय

शतशः विद्वत्जन् की पुस्तकों का अनुशीलन किया गया तथा उनसे कुछ उद्धरण भी दिया गया। इस सहयोग के लिए हम उन सबके हृदय से आभारी हैं।

इस शोध-प्रबन्ध से बहुत सी बातें सम्भव है कि छूट गई हों, खोज के और भी मार्ग खुल सकते हैं, अपने अमूल्य सुझावों एवं विचारों से आप हमें अवगत कराते रहेंगे, तो निश्चयतः इस दिशा में और भी खोजपरक़ तथ्य मिल सकते हैं।

विनयावतः

रमेश कुमार शुक्ल
शोध-छात्र
हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

प्रथम अध्याय

आंचलिकता की परिकल्पना

क. परिभाषा

ख. उद्‌भव

ग. प्रवृत्तिगत विशेषतायें

प्रथम अध्याय

आंचलिकता की स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कथा-साहित्य में सन् 1950 के आस-पास ग्रामीण पृष्ठभूमि पर जिस कथा-साहित्य का प्रणयन हो रहा था, उसमें स्थानीय रंग एक अपरिचित सी आहट आंचलिक शब्द के रूप में सुनाई पड़ी। आंचलिक कथाकार रेणु ने अपने प्रथम उपन्यास 'मैला आँचल' की भूमिका में लिखा– ''यह है मैला आँचल एक आंचलिक उपन्यास। कथानक है पूर्णिया। मैंने इसके एक हिस्से के एक गॉव को पिछड़े गॉव का प्रतीक मानकर कथा का क्षेत्र बनाया है[1]...........

वस्तुतः हिन्दी कथा-साहित्य में 'आंचलिक जैसा विशिष्ट शब्द सर्वप्रथम यहीं सुनाई पड़ता है। यद्यपि कि ग्रामीण पृष्ठभूमि पर प्रेमचन्द्र से लेकर और उसके बाद तक के बहुत से लेखकों कथा-साहित्य का प्रणयन किया था और कर रहे थे, परन्तु रेणु जी ने एक विशिष्ट शैली भौगोलिक भू-भाग एवं लोकसंस्कृति को साहित्य में प्रतिष्ठित किया, जो आगे चलकर आंचलिक कथा-साहित्य के रूप में हिन्दी कथा-साहित्य मे विख्यात हुआ।

आंचलिकता की सोंधी महक से विविध सम्भावनाओं के द्वार खोलने वाले लेखकों में रेणु व शिव प्रसाद सिंह का नाम उभरकर सामने आता है। इसका कारण है– एक ओर रेणु का साहित्य जहाँ अछूते, अपरिचित ग्रामांचलों की सोंधी महक से सराबोर है, नित्य उठती विशिष्ट, स्थानीय समस्याओं से त्रस्त है, शैली की एक नई सम्भावना से संवालित है, वहीं शिव प्रसाद सिंह का कथा-संसार टूटती हुई सामन्तवादी व्यवस्था से बनते हुए एक नये भारत की तस्वीर खींचने की ओर उन्मुख दिखाई देता है। इस प्रकार आंचलिक कथा-साहित्य के पितामह फणीश्वरनाथ रेणु और आंचलिकता की परिधि के सहारे गहरे केन्द्र में उतरने वाले कथाकार शिव प्रसाद सिंह के कथा-साहित्य में आंचलिता की परिकल्पना की खोज एक महत्वपूर्ण आवश्यकता बन जाती है।

---

1. मैला ऑचल 'भूमिका'– फणीश्वरनाथ रेणु प्रथम संस्करण–1954

आंचलिकता के सन्दर्भ में निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार करना चाहेंगे। निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार अपेक्षित हैं।

(क) परिभाषा

(ख) उद्भव

(ग) प्रवृत्तिगत विशेषताएँ

(क) परिभाषा– 'आंचलिक' शब्द 'अञ्चल' और 'इक' प्रत्यय के योग से बना है। 'अंचल' शब्द का लाक्षणिक अर्थ होता है– कोई ग्राम, प्रान्त या विशेष भूखण्ड जो राष्ट्र के मानचित्र पर होते हुए भी अपरिचित व अनदेखे हुए हों। यह 'अञ्चल' शब्द साहित्य में उस अर्थ की ओर संकेत करता है, जो किसी देश के भीतर उस भौगोलिक भूखण्ड की ओर अभिहित होता है, जिसकी अपनी एक विशिष्ट संस्कृति हो, अपनी स्थानीय बोली हो, विशिष्ट सामाजि व सांस्कृतिक परिवेश के भीतर लोकसंस्थायें व लोक परम्परायें हों। इसी लोकसंस्कृति व भौगोलिक विशिष्टताओं से युक्त भाववाचक संज्ञा का नाम है– आंचलिकता। अर्थात् आंचलिक उन क्षेत्रीय और समस्याग्रस्त ग्रामीण परिवेश के लिए प्रयुक्त होने लगा जो सामाजिक व सांस्कृतिक रूप से गठित इकाई के रूप में हो, जहाँ के निवासी अपने विशिष्ट रहन-सहन, तौर-तरीके, खान-पान व परस्पर व्यवहार से देश के अन्य लोगों से एकदम भिन्न हो। उनकी विशिष्टताओं व जटिलताओं के आधार पर ही उन्हें कहा जा सकता है। इस प्रकार के अंचल या भूखण्ड को अभिव्यक्त करने वाली रचना को हम आंचलिक साहित्य की संज्ञा से अभिहित कर सकते हैं।

'आंचलिक' शब्द का प्रयोग फणीश्वरनाथ रेणु ने सन् 1954 में लिखे अपने उपन्यास 'मैला आँचल' की भूमिका में किया था– 'यह है मैला आँचल, एक आंञ्चलिक उपन्यास। कथानक है पूर्णिया। मैंने इसके एक हिस्से के एक ही गाँव को पिछड़े गाँव

का प्रतीक मानकर इस उपन्यास का कथा-क्षेत्र बनाया''[2]

इससे स्पष्ट है कि रेणु ने ही सर्वप्रथम आञ्चलिक शब्द का प्रयोग किया तथा आञ्चलिक कथा-साहित्य का सृजन किया। इससे पूर्व इसी भाव-भूमि पर 'देहाती-दुनिया' शिवपूजन सहाय तथा 'बलचनमा' नागार्जुन ने उपन्यासों की रचना की, परन्तु रेणु ने ही सर्वप्रथम यह नाम' दिया।

मेरे विचार से यह निश्चित है कि रेणु ने 1954 ई० में कथा की पारिभाषिक चेतना को अंचल का आधार दिया। अंचल व्यक्ति से बड़ा समाज से छोटा क्षेत्र, बीच की कड़ी या मध्यवर्ती कड़ी है जो क्षेत्रीय कथाभूमि का आधार है।

इस सम्बन्ध में डॉ. शिव प्रसाद सिंह का कथन द्रष्टव्य है– ''आँञ्चलिकता की प्रवृत्ति स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दुस्तान की सांस्कृतिक प्रवृत्ति थी जिसके भीतर भारतीयता को अन्वेषित करने की सूक्ष्म अन्तः धारणा कार्य कर रही थी।''[3]

आञ्चलिकता के भीतर निम्नलिखित बिन्दु मुख्य रूप से आते हैं–

1. अञ्चल 'क्षेत्र' विशेष से सम्बन्धित है।

2. क्षेत्र व्यक्ति से बड़ा तथा समाज से छोटा होता है।

3. सम्पूर्ण अञ्चल ही नायकत्व प्राप्त करता है।

4. आञ्चलिकता में वे समस्त सन्दर्भ आते हैं जो किसी विशेष रीति-रिवाज, रहन-सहन व आचरण के अपने भीतर प्रतिबिम्बित करते हैं।

वस्तुतः अञ्चल' शब्द में स्थानीयता की पहचान एक अनिवार्य शर्त है, जो उसे

---

2. मैला आँचल– रेणु प्रथम संस्करण

3. आधुनिक परिवेश और नवलेखन – डॉ० शिव प्रसाद सिंह

अन्य क्षेत्रों से अलग रखता है। किसी स्थान विशेष की समस्या यदि व्यापक स्तर पर सार्वभौमिक रूप धारण कर लेती है अथवा समस्या विशेष रूप से सम्पूर्ण जनमानस उद्वेलित हो तो वह उस अञ्चल की समस्या न होकर सामान्य रूप धारण करती है और संज्ञा सामान्य ही ग्रहण करती है। उदाहरण के तौर पर यदि देखा जाय तो किसानों की ऋण समस्या एक ऐसा बोझ है जिससे भारतवर्ष का सम्पूर्ण किसान-वर्ग त्रस्त है। जबकि छूआछूत, वर्गभावना या अन्धविश्वास कुछ विशेष स्थानों पर ही पाया जाता है। इसे ही अंग्रेजी साहित्य में Local Colour की संज्ञा दी गई। और यह Regional Literate में ज्यादा पाया जाता है। हिन्दी कथा-साहित्य में इसे आञ्चलिक रूप दिया गया। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इन क्षेत्रों को आधार बनाकर लिखे गये साहित्य को आञ्चलिक कथा-साहित्य की संज्ञा दी गई। अर्थात् आञ्चलिकता के सभी बिन्दुओं को स्पर्श करने वाले साहित्य में 'अञ्चल' विशेष की गंध समा सी गई।

अव प्रश्न उठता है कि इस प्रकार का स्थानीय रंग अर्थात् आञ्चलिकता से युक्त साहित्य का प्रणयन कब से आरम्भ हुआ। कुछ विद्वान् शिवपूजन सहाय के प्रणयन कब से आरम्भ हुआ। कुछ विद्वान् शिवपूजन सहाय के उपन्यास देहाती दुनिया (1926) से कुछ नागार्जुन के उपन्यास 'बलचनमा' से तो कुछ फणीश्वरनाथ रेणु के लिखे उपन्यास 'मैला ऑचल' से आञ्चलिकता का उदय मानते हैं। उन्हीं तीन उपन्यासों को लेकर आञ्चलिकता के प्रारम्भ को लेकर विद्वत्समाज में तीव्र मतभेद है। एक ओर डॉ. पूर्णदेव, डॉ. सोनवणे तथा डॉ. राम दरश मिश्र जैसे विद्वान् 'मैला ऑचल' को प्रथम आञ्चलिक रचना मानते हैं तो दूसरी ओर महेन्द्र चतुर्वेदी व डॉ. नगीना जैन जैसे सुधी-मर्मज्ञ 'बलचनमा' को ही प्रथम आञ्चलिक उपन्यास मानते हैं। डॉ. सियाराम तिवारी जी शिवपूजन सहाय के उपन्यास 'देहाती दुनिया' से आञ्चलिक कथा-साहित्य का आरम्भ मानते हैं।

परन्तु साहित्य में आंचलिक शब्द सर्वप्रथम मैला आँचल की भूमिका में ही आता है। 'अंचल' शब्द का प्रयोग सोद्देश्य भूमिका में करके यह बताने की चेष्टा की गई

है, यह कथा उन लोगों के जय-पराजय, आचार-विचार, रहन-सहन एवं लोक संस्कृति को रूपायित करने के लिए ही रची जा रही है, जो आज़ाद भारत के हाशिए पर अलग-थलग से पड़ गये हैं। जिनकी ओर दृष्टि शायद ही किसी की जाती हो। मुख्य रूप से गाँवों की कहानी भी आंचलिक कथा-साहित्य नहीं है जैसा कि प्रेमचन्द की कहानियों की ओर इशारा किया जाता है। ध्यान रहे कि ग्राम कथा– आंचलिक कथा में गहरे अन्तर्बोध का सवाल है। 'मैला आँचल' के पूर्व को बहुत सी ऐसी रचनाएँ हैं, जिनमें ग्रामीण परिवेश को उभारते हुए एकाकी जीवन शैली के रूपायित किया गया है, परन्तु रेणु की कथाओं में अंचल या विशेष भूखण्ड का सम्पूर्ण लोकजीवन जैसा उतर सा पड़ा है। इस सम्बन्ध में सुरेन्द्र चौधरी का वक्तव्य द्रष्टव्य है– ''रेणु जब कथा लिखने चलते हैं तो उनके हाथ में मानो टेप रिकार्डर तथा कैमरा दोनों है, शब्द-चित्र इतने रमणीय बन पड़े हैं, मानो अभी बोल उठेंगे। एक-एक दृश्य अपनी यथार्थ पकड़ के लिए बेजोड़ है।''[4]

कहने का तात्पर्य यह है कि रेणु के चित्रण मानवीय संवेदना के विविध पहलुओं को स्पर्श करते चलते हैं क्योंकि रेणु की जिन्दगी स्वयं उस जिन्दगी की धड़कन बनकर रह गई है। उन परिवेशों में से जीकर साहित्य लिखा। भीगा हुआ यथार्थ लेखिनी के माध्यम से पन्नों पर उतर गया।

दूसरी ओर इस धारा के पूर्व लिखा गया 'देहाती दुनिया' उपन्यास आंचलिक विशेषताओं को स्पर्श करता है, परन्तु शिवपूजन सहाय ने न तो इसका उद्देश्य आंचलिक कथा का सृजन माना और न ही ऐसी किसी धारा का प्रणयन हुआ था। रेणु और नागार्जुन के उपन्यासों का सम्यक् विश्लेषण व विवेचन करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि रेणु व नागार्जुन के उपन्यासों या कथाओं में एक छोर की दूरी है। आंचलिक कथा-साहित्य में उपेक्षित भूखण्ड का समग्र चित्रण किया जाता है न कि उपेक्षित व्यक्ति का। वस्तुतः आंचलिक कथा-साहित्य में सम्पूर्ण अञ्चल ही नायकत्व प्राप्त

---

4. 'फणीश्वरनाथ रेणु'– सुरेन्द्र चौधरी (साहित्य अकादमी का संस्करण)

कर लेता है। रेणु व नागार्जुन की कथाओं के रूप में यही मूलभूत अन्तर है कि नागार्जुन जहाँ किसी एक व्यक्ति के दुःख-सुख एवं परिस्थितिका वर्णन करते हैं, वहीं रेणु समपूर्ण अञ्चल के जीवन को सम्पूर्ण परिवेश के साथ जीवन्त उतार देते हैं। इसीलिए अंचल विशेष की सम्पूर्ण धड़कने उनके साहित्य में कैद हैं।

अगला प्रश्न है आञ्चलिक कथा-साहित्य क्या है? उसमें वे कौन से विद्रूपताएँ व जटिलताएँ छिपी हैं, जिनसे यह समस्या-प्रधान साहित्य हुआ। विविध विद्वानों द्वारा दी गई आंचलिक कथा-साहित्य की परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाएगा।

'मैला आँचल' की भूमिका में रेणु की इस स्वीकारोक्ति के बाद कि 'यह है एक आंचलिक उपन्यास' कई बातें सामने आती हैं–

1. कथा का आधार पिछड़ा क्षेत्र

2. आञ्चलिक शब्द पिछड़े क्षेत्र के सन्दर्भ में

अर्थात् किसी स्थान विशेष के भू-भाग जिसकी अपनी विशेष जीवन-शैली हो आञ्चलिक कथा का आधार बनाया गया है। स्पष्ट है कि आंञ्चलिक कथा-साहित्य की जीवन-शैली में स्थानीय रंग का विशेष महत्व होता है।

डॉ. शिव प्रसाद सिंह के अनुसार आँचलिक वही कहानी कही जा सकती है जो किसी जनपद के जीवन, रहन-सहन, भाषा, मुहावरे, रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, पर्व-उत्सव, लोकजीवन व लोकनृत्य आदि को चित्रित करना ही अपना उद्देश्य माने।'' आंचलिक शब्द ही उनके साध्य होते हैं। खासतौर से रेणु के 'मैला-आँचल' के बाद इनका प्रभाव बढ़ा मेरी कथा में लोकल कलर या आंचलिक तत्व केवल साधन है, साध्य नहीं।''[5]

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा का कथन है– ''कुछ उपन्यासों में किसी प्रदेश विशेषका यथातथ्य व विम्बात्मक चित्रण प्रधानता प्राप्त कर लेता है और उन्हें प्रादेशिक या

5. आधुनिक परिवेश व नवलेखन – डॉ० शिव प्रसाद सिंह

आञ्चलिक कहा जाता है।''[6]

आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी– ''आंचलिक उपन्यासों में अपरिचित भूमियों और अज्ञात जातियों के जीवन का वैविध्यपूर्ण चित्रण होता है।[7]

डॉ. रामदरश मिश्र– आंचलिक उपन्यास का उद्देश्य स्थिर स्थान पर गतिमान समय में जीते हुए अञ्चल के समग्र पहलुओं का उद्घाटन करना है।''[8]

मधुकर गंगाधर– ''विशिष्ट आंचलिक वातावरण में दिन-प्रतिदिन की घटनाओं तथा वर्ग विशेष के प्रतिनिधि पात्रों की जीवन-प्रक्रिया के माध्यम से एक खास भौगोलिक संस्कृति का उद्घाटन करना आधुनिक आञ्चलिक कथा-साहित्य का उद्देश्य या आग्रह है।''[9]

डॉ० रामगोपाल सिंह चौहान– ''किसी उपन्यास मे आंचलिकता की विशेषता शैली, शिल्प, बोली-बानी, वेश-भूषा, रीति-रिवाजों आदि की ही विशेषता नहीं, वरन्, दृष्टिकोण की भी विशेषता है।''[10]

डॉ. पूर्णदेव– ''आञ्चलिक कथाकार राष्ट्र के विभिन्न भूभाग या विशिष्ट आँचलों का उनकी तमाम अच्छाइयों-बुराइयों सहित निर्लिप्त दृष्टि से चित्रण करता है, जिससे पाठकों के सम्मुख उस विशिष्ट अंचल का चित्र साकार हो उठता है।''[11]

---

6. हिन्दी साहित्य कोष सम्पादक– डॉ. धीरेन्द्र वर्मा
7. आधुनिक साहित्य– नन्ददुलारे वाजपेयी
8. हिन्दी उपन्यास एक यात्रा पृष्ठ–190
9. जनवरी 1966, आलोचना अंक, पृष्ठ–35
10. आधुनिक हिन्दी-साहित्य पृष्ठ–217
11. रेणु का आंचलिक कथा-साहित्य पृष्ठ–14

डॉ. राजेन्द्र अवस्थी– "आंचलिक कथाकृति में किसी विशिष्ट जनपद या क्षेत्र के जनजीवन का समग्र चित्रण हो जिसमें वहाँ की भाषा, वेश-भूषा, धर्म जीवन, समाज-संस्कृति तथा आर्थिक व राजनीतिक जागरण के प्रश्न एक साथ उभरकर आयें, वह आंचलिक कथा-साहित्य होगा।"[12]

अञ्चल या जनपद की व्याख्या दो प्रकार से की जाती है। कुछ विद्वानों के अनुसार (जिनमें आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी का नाम मुख्य है) अपरिचित भूमियों व अज्ञात जातियों के जीवन का वैविध्यपूर्ण चित्रण जिन कथाकृतियों में हो उन्हें ही आंचलिक कहा जाना चाहिए। डॉ. अवस्थी ने दूसरे प्रकार का अर्थ ग्रहण करते हुए अञ्चल की परिभाषा की है कि– 'अंचल एक देहात भी हो सकता है, एक भारी शहर भी। शहर का एक मुहल्ला भी और इन सबसे दूर सघन वन की उपत्यिकाएँ भी।

जोसेफ टी. शिप्ले ने लिखा है– "आंचलिक कथाकार प्रत्येक अंचल की उन विभिन्न परिस्थितियों पर ध्यान देता है, जो वहाँ के निवासियों के जीवन को गहरे रूप में प्रभावित करती है और इस प्रकार चारित्रिक एवं सांस्कृतिक वैविध्य को विकसित करती है।"[13]

इन परिभाषाओं का गहन अनुशीलन व विश्लेषण करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आंचलिक कथा-साहित्य किसी उपेक्षित अनचीन्हे व अपरिचित भूखण्ड के निवासियों को ही वाणी प्रदान करते हैं। उस भूखण्ड विशेष की समस्त सामाजिक धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक धड़कनें आंचलिक कथा-साहित्य मे पग-पग पर सुनाई पड़ती है। आंचलिक कथा-साहित्य की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसमे चित्रित मानव आदर्श की ऊँची चोटियों पर विराजमान न होकर यथार्थ की कंकरीली ऊबड़-खाबड़ जमीन रेंगते हुएसे नजर आते हैं। कहीं भी यथार्थ से हटकर वर्णन

---

12. सारिका, अक्टूबर 1961

13. Dictionary of world Literary terms Page 257

नहीं मिलता। इसीलिए कुछ लोग इसे गरीबों, असहायों का साहित्य होने की बदनामी भी सहनी पड़ती है। यद्यपि कि यह आरोप पूर्णतया निराधार है। मेरे विचार से आंचलिक कथा-साहित्य में स्वतंत्रता के पश्चात् भारतवर्ष के अनछुए, अनदेखे, उपेक्षित, अपरिचित व सर्वग्रसित क्षेत्र विशेष के साधारण जन की जीवन-कथा समाई रहती है जिसमें फूल भी हैं और कॉंटे भी। क्षेत्र विशेष की मानवीय संवेदनाएँ व विशिष्टताएँ उभारना ही इस साहित्य का एकमात्र उद्देश्य है।

आंचलिक कथा-साहित्य की विशिष्टताओं का उल्लेख करते हुए हम मुख्य रूप से इन प्रमुख बिन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित करते हैं–

1. भूखण्ड विशेष का वर्णन और उससे उत्पन्न समस्याओं का चित्रण।

2. पिछड़ेपन के कारणों का विशुद्ध यथार्थ वर्णन।

3. लोकसंकृति के विविध आयामों का चित्रांकन।

4. राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक पहलुओं का बारीकी से किया गया अन्वेपण।

इस प्रकार आंचलिक कथा-साहित्य के ये सभी तत्व एक नई विधा को जन्म देकर जनसाधारण के महत्व की प्रतिष्ठा करते हैं।

आंचलिक कथा-साहित्य का उद्देश्य– वस्तुतः आंचलिक कथा-साहित्य के सृजन के पीछे किसी विशेष उद्देश्य की प्रेरणा अब तक सामने नहीं आई है। क्योंकि किसी साहित्यकार ने उद्देश्य की घोषणा नहीं की है। हाँ, रेणु ने अपने प्रथम उपन्यास में यह अवश्य संकेत दिया है कि उन अंचलों की कथा कहने का उनका उद्देश्य यही है क आज़ादी के बाद उन क्षेत्रों की कथा को भी साहित्य में स्थान मिले जो अभी तक उपेक्षित रहे हैं कुछ प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं–

1. सामान्य जन की प्रतिष्ठा यथार्थ परिस्थिति का चित्रण।

2. राष्ट्रीय एकता की भावना या सामाजिक व्यवस्था के पुनर्निर्माण मे योगदान।

3. अपरिचित भूमि की लोकसंस्कृति को सामने लाना।

डॉ. इन्द्र नाथ मदान ने अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है– ''प्रेमन्दोत्तर युग मे सामाजिक यथार्थ का ही आगे चलकर जिन नाना रूपों में प्रस्फुटन हुआ, उनमें आंचलिक यथार्थ भी एक है।''[14] डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत के विचार से यथार्थवाद के नये क्षितिज खोजने के प्रयत्न के रूप में रेणु लिखे 'मैला आँचल' का बहुत बड़ा महत्व है। इनके द्वरा प्रस्तुत किये गये यथार्थवाद के आंचलिक यथार्थवाद की संज्ञा दी जाने लगी।''[15]

आंचलिक कथा-साहित्य के उद्देश्य पर विचार करते हुए डॉ. जवाहर सिंह ने लिखा है– ''दीर्घकालीन गुलामी के पश्चात् जनतंत्र की स्थापना ने चिर उपेक्षित व नगण्य भारतीय जनसाधारण के भीतर एक नई आशा व विश्वास का संचार किया। इसी आशा व विश्वास ने नये मानव मूल्यों की स्थापना तथा सामान्य जन की प्रगति और उत्थान के लिए अपनी संचित सांस्कृतिक ऊर्जा का संबल लेकर संघर्षपूर्ण विकासयात्रा प्रारम्भ की। आंचलिक साहित्य युग-युग से उपेक्षित, तिरस्कृत, शोषित और प्रताड़ित इन्हीं लघुमानवों की मानवीय प्रतिष्ठा व अधिकार प्राप्त करने की दिशा में किये गये या किये जाते हुए संघर्ष की व्यथा-कथा कहते हैं।''[16]

वस्तुतः साधारण जन का उपेक्षित होना सामाजिक अभिशाप था। कारण कि आजादी के बाद प्राप्त हुए अधिकारों का न तो उपयोग कर सकते थे और कर्त्तव्य के माध्यम से राष्ट्र निर्माण में सहायक सिद्ध हो सकते थे। इस प्रकार इस उपेक्षित, असहाय

---

14. आज का हिन्दी उपन्यास– इन्द्रनाथ मदान

15. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त– गोविन्द त्रिगुणायत

16. हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों की शिल्पविधि– जवाहर सिंह पृष्ठ–266

भू-भाग का समाज से कटाव उनकी सर्जनात्मक क्षमता का दुरुपयोग था। आंचलिक कथाकारों ने इस यथार्थ को स्वयं झेला और साहित्य में उभारा।

राष्ट्र की धारा से कटते जा रहे इस वर्ग के मानवों की अपनी करुण कहानी कुछ अलग ही थी। साधारण से साधारण जनता में भी सर्जना की अद्‌भुत क्षमता होती है। यह बात नहीं कि जो कल-कारखाने में कार्य करे, वही निर्माण कर रहा है। राष्ट्र का हर नागरिक अपने-अपने निर्माण कार्य में लगा है। इसलिए व्यक्तिगत को राष्ट्र का योगदान मानकर आंचलिक कथाकारों ने साधारण जनता की प्रतिष्ठा पर विशेष बल दिया। मानव-प्रतिष्ठा सम्बन्धी प्रदेय को स्वीकार करते हुए डॉ. जगदीश चन्द्र जोशी ने लिखा है– ''महत्वपूर्ण बात यह है कि सामान्यतः आचलिक उपन्यासों में अनास्था का स्वर नहीं मिलता। उसमें मानव पर सम्पूर्ण आस्था है, उस मानव पर जो टूट रहा है और इस टूटने से नया बना रहा है। सारे राष्ट्र में जो विकास आ रहा है, बड़े-बड़े बाँध, बड़ी-बड़ी नहरें, बिजली घर, कारखाने और उस भविष्य में आस्था जिसमें मानव सर्वोपरि होगा। यह वास्तव में आंचलिक कथा-साहित्य का सबसे बड़ा उद्देश्य है।''[17]

इस प्रकार हम देखते हैं कि रेणु के आंचलिक कथा-साहित्य की सबसे प्रमुख समस्या है– मानव में आस्था उत्पन्न करना एवं मानवता के कल्याण के लिए किये जा रहे कार्यो का यथार्थ चित्रण।

आँचलिक कथा-साहित्य का दूसरा उद्देश्य है सोये हुए अञ्चल के लोगों के मानस में राष्ट्रीय भावना का उद्‌घोष कराना, जिससे वे पूरी तरह आज़ादी का अर्थ समझ सकें तथा अपनी गिरती हुई दशा में कुछ परिवर्तन कर सकें। स्वतन्त्रता की लड़ाई की गूँज थोड़ी बहुत ही इन क्षेत्रों में पहुँच पाती थी। वे इन आन्दोलनों से दूर ही रहा करते थे। डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल ने आञ्चलिक कथा-साहित्य में उभरे राष्ट्रीय भावना का वर्णन इस प्रकार किया है– ''आञ्चलिक साहित्य देश की मिट्टी को तोड़कर उपजा है। इसमें

---

17. हिन्दी साहित्य एक सर्वेक्षण– डॉ. जगदीश चन्द्र जोशी पृष्ठ–168

विदेशीपन की गन्ध नहीं है। स्वतंत्रता के पश्चात् अपने देश के समाजवादी समाज की रचना से सम्बन्धित कार्यो का विस्तार गाँवों तथा अञ्चल तक होने लगा, जिसके फलस्वरूप अञ्चल विशेष में राजनीतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक चेतना मुखरित हुई। अंचल विशेष की धरती, वहाँ की लोकसंस्कृति, परम्पराओं, विश्वास, बोली, वेश-भूषा के जीवन्त चित्रण होने लगे।''[18]

डॉ. मुकुन्द द्विवेदी का कथन है– ''आंचलिक साहित्यकारों ने समग्र देश की चेतना के सम्मुख ग्रामीण चेतना को रखकर उसके पिछड़ेपन के कारणों को स्पष्ट करने का प्रयास किया है, साथ ही इस ग्रामीण चेतना के विकास के मार्ग में बाधक तत्वों का भी उल्लेख किया है।''[19]

आंचलिक कथा-साहित्य के राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत होने तथा साधारण जन को भी राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ने का महत् कार्य कर साहित्यकारों ने बहुविध भारतवर्ष की अनेकता में एकता का ज़ो सूत्र पिरोया, उसे साहित्य-जगत् कभी भुला नहीं सकता। साहित्य में युगचेतना व राष्ट्रीय भावना किस प्रकार जगह-जगह उभरकर सामने आई है इसे रेणु लिखित ''कितने चौराहे'' में देख सकते हैं। गाँधी जी की गिरफ्तारी ने सारे देश को हिलाकर रख दिया है। स्कूलों के पढ़वा लड़के भी योजना बनाते है– ''हम लोग हड़ताल करेंगे .... स्ट्राइक .... स्कूल नहीं जाएँगे .... बाजार बन्द होगा .... इस लोग कल कारखाना नहीं खायेंगे ....[20]

उन्हें अनुभव है कि 'कमजोर शरीर से दुनिया में कोई काम नहीं होता'। इस प्रकार हम देखते हैं कि सम्पूर्ण आंचलिक कथा-साहित्य ही राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत है। यह राष्ट्रीय चेतना सामाजिक व्यवस्था के पुनर्निर्माण के लिए लालायित है। 'परती-

18. आंचलिकता से आधुनिकता बोध– भगवती प्रसाद शुक्ल पृष्ठ–129
19. हिन्दी उपन्यास, युगचेतना व पाठकीय संवेदना–पृष्ठ–90 डॉ. मुकुन्द द्विवेदी
20. ''कितने चौराहे''– फणीश्वरनाथ रेणु– पृष्ठ–58

परिकथा' में जित्तन, 'मैला आँचल' का डॉ. प्रशान्त तथा 'अलग-अलग वैतरणी' का विपिन गाँव की उजड़ती हुई संसृकृति को बचाने के लिए भरसक प्रयास करते हैं। जिन लोगों के मन में रूढ़ियाँ व अन्ध विश्वास काई की तरह जम गई है, उन्हें हजार कष्ट सहकर भी वे उसे तोड़ना चाहते हैं और एक नये समाज का निर्माण करना चाहते हैं। तमाम विरोधों, जटिलताओं व संघर्षों के बीच रहकर ये सभी पात्र आंचलिक कथा-साहत्य के उद्देश्य का उद्घोष करते हैं। डॉ. प्रशान्त कहता है– ''मैं प्यार की खेती करना चाहता हूँ। ऑसू से भीगी हुई धरती पर प्यार के पौधे लहरायेंगे। मैं साधना करूँगा। ग्राम्यवासिनी भारतमाता के मैले आँचल के तले। मुरझाये होंठों पर मुसकराहट लौटा सकूँ। उनके हृदय में आशा व विश्वास को प्रतिष्ठित कर सकूँ।''[21]

इसके अलावा सतीश (जल टूटता हुआ), सुखराम (कब तक पुकारूँ) व विमल (रीछ) आदि ऐसे पात्र हैं जो सामाजिक व्यवस्था के पुनर्निर्माण का कार्य करते हैं।

आंचलिक कथा-साहित्य का जो तीसरा और महत्वपूर्ण उद्देश्य है– अनचीन्हे व अपरिचित भूमि की संस्कृति की रक्षा करना। लोक संस्कृति का चित्रण आंचलिक कथा-साहित्य का प्राण है। वस्तुतः आंचलिक कथा-साहित्य में लोकसंस्कृति की धड़कन समाई रहती है। साहित्य-स्त्रष्टा अपनी सृजन-यांत्रा के मध्य इन अंचलों की भूमि पर रहकर उनके दुःखों-सुखों को भोगा है और धड़कनों को भीतर जाकर सुना है। इस सम्बन्ध में डॉ. रमेश तिवारी ने अपने शोध-प्रबन्ध में लिखा है– ''इधर आंचलिक उपन्यासों के माध्यम से साहित्य ने नागरिक सभ्यता की संकीर्णता से निकलकर ग्रामीण तथा जनवादी सभ्यता तथा संस्कृति को अभिव्यक्ति देना प्रारम्भ किया है।''[22]

इसी प्रकार डॉ. शिव प्रसाद सिंह ने लोकसंस्कृति की आंचलिक शैली को इस प्रकार उद्घाटित किया है–"आंचलिकता की प्रवृत्ति स्वातंत्र्योत्तर हिन्दुस्तान की एक

21. मैला ऑचल– फणीश्वरनाथ रेणु पृष्ठ–333

22. हिन्दी उपन्यास–साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन–डॉ. रमेश तिवारी पृष्ठ–412

सास्कृतिक प्रवृत्ति थी, जिसके भीतर भारतीयता को अन्वेषित करने की सूक्ष्म अन्तःधारणा कार्य कर रही थी।''[23]

डॉ. गोविन्द झा लिखते हैं– ''राष्ट्र की एक संस्कृति होती है। यह राष्ट्र की सस्कृति प्रान्त की संस्कृति में बँटी हुई है। इसे समेटने का आयास आंचलिक उपन्यासों में दिखाई पड़ा है। यह एक शुभ लक्षण है और इसलिए इन बिखरी प्रान्तीय संस्कृतियों को एक सूत्र में पिरोने का कार्य आंचलिक उपन्यास ही कर सकते हैं।''[24]

उपर्युक्त विचारों में आंचलिक कथा-साहित्य का उद्देश्य लोकसंस्कृति की रक्षा करना ही बताया गया है। इसके अलावा आंचलिक कथा-साहित्य के गौड़ उद्देश्य भी हैं– अन्ध विश्वासों व रूढ़ियों को दूर करना, शिक्षा की प्रगति, नारी को सम्मानजनक स्थान दिलाना तथा बहुलांश में अपनी धरोहर के प्रति अतिशय मोह।

आंचलिक कथा-साहित्य की विशेषताएँ–

क. विशिष्ट बोली

ख. सम्पूर्ण अंचल ही नायकत्व धारण करता है

ग. भौगोलिक विशिष्टता

घ. नारी के प्रति दृष्टिकोण

डॉ. शिव प्रसाद सिंह के अनुसार ''आंचलिक उपन्यासों में आञ्चलिकता लाने के लिए ऊटपटांग शब्द, विचित्र वर्णन और लोकगीतों का समावेश, वाक्यों का खण्डों में बँटना एक अनिवार्य आवश्यकता बना गई थी।''[25]

---

23. 'कल्पना'– पृष्ठ 161–डॉ. शिव प्रसाद सिंह

24. सारिका–1961 पृष्ठ–93– गोविन्द झा

25. 'कल्पना' 1965 पृष्ठ–34

आंचलिक कथा-साहित्य की एक विशिष्ट बोली होती है, जिसमें वहाँ के लोगों की मान्यताएँ, कहावतें व उक्तियाँ शामिल होती हैं। भाषा के तौर पर प्रचलित विविध मुहावरों व लोकोक्तियों का स्वरूप स्थानीय बोली के कारण प्रायः बिगड़ सा गया है। तत्सम शब्दों का रूप भी तद्‌भव में परिवर्तित हो गया है। जगह-जगह इनका बिगड़ा रूप देखने को मिलता है। – 'आंचलिक कथा-साहित्य में प्रचलित भाषा में अपार क्षमता है, जिसके कारण अनेक वर्णन चित्र बनकर आये हैं। इस सम्बन्ध में डॉ. प्रकाश वाजपेयी का कहना है– "आंचलिक भाषा में होने के कारण भाषा की स्वाभाविकता, माधुर्य, स्थानीय बोली का रंग यहाँ अधिक उभरा है।"[26]

एक अन्य आलोचक का मन्तव्य इस प्रकार है– "उनके देशज शब्द केवल भाषा की आधारशिला ही नहीं है। उनका काम सरोखे व मेहराब भी बनाना है। उन्होंने लोकजीवन की भाषा उठाकर हिन्दी की अभिजात किन्तु मृतवत् औपन्यासिक गद्य को नई ताजगी प्रदान की है।"[27]

इस प्रकार आंचलिकता का प्रस्फुटन ही अंचल विशेष की विशिष्ट बोली से ही होता है। यद्यपि कि उनकी बोली किसी अन्यभाषा से सम्बद्ध नहीं है लेकिन उनकी विशिष्टता में उनकी अज्ञानता, अशिक्षा व रूढ़ियाँ अधिक सहायक होती है। साधारण व्यवहार में गालियों, लोकगीतों, विदेशी शब्दों, मुहावरों, लोक कथनों व लोक प्रचलित शब्दों इत्यादि पर विशिष्ट आंचलिकता का प्रभाव हर स्थान पर देखा जा सकता है। हमारे विचार से इन्हीं विशिष्टताओं के कारण यदि इन्हें आंचलिक कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

आंचलिकता की दूसरी विशेषता है– नायक तत्व का अभाव अर्थात् सम्पूर्ण

26. हिन्दी के आंचलिक उपन्यास– प्रकाश वाजपेयी पृष्ठ–72

27. आलोचना अंक–4, अक्टूबर पृष्ठ 83

अंचल ही नायकत्व धारण कर लेता है। आंचलिक कथा-साहित्य के चरित्र-निर्माण की अपनी विशेषता है कि साहित्य में परम्परागत नायक का लोप पाया जाता है। वस्तुतः अंचल विशेष के कथा की सजीवता और प्रयोजन उस अंचल के निवासियों के होने में ही निहित है। आंचलिक कथा-साहित्य में व्यक्ति विशेष की नहीं अपितु सम्पूर्ण अंचल की कथा समाहित रहती है। यही कारण है कि इसमें नायकों का प्रायः अभाव पाया जाता है क्योंकि विशेष भूखण्ड में रहने वाले नाना प्रकार के लोगों की अपनी विशिष्ट परिकल्पनाएँ हुआ करती हैं। इस प्रकार अंचल विशेष ही अपनी सम्पूर्ण विविधता और बिखराव के साथ कथा-साहित्य में आकर सामूहिक पात्रों के रूप में नायकत्व प्राप्त करता है अर्थात् असंख्य पात्र मिलकर उस सम्पूर्ण अंचल के विविध स्वरूप को सामने लाते हैं।

इन उपन्यासों में ''मैला आँचल'', 'परती परिकथा', 'अलग-अलग वैतरणी', 'देहाती दुनिया', 'आधा गाँव' आदि मुख्य रूप से आते हैं। 'मैला आँचल' और 'बलचनमा' उपन्यासों में मौलिक रूप से यही अंतर है। इसीलिए 'बलचनमा' को आंचलिक कथा-साहित्य में रखते हुए भी उसे आदर्श आंचलिक कथा-साहित्य की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। इसका मुख्य कारण है इस उपन्यास में व्यक्ति विशेष को नायक मानकर कथा को इसके आसपास ही केन्द्रित किया गया है, जबकि 'मैला आँचल', 'अलग-अलग वैतरणी' अथवा 'परती परिकथा' में एक विशेष भूखण्ड को नायकत्व प्रदान किया गया है।

दूसरी बात आंचलिक कथा-साहित्य 'अवतारवाद' की परिकल्पना को त्यागकर साधारण जन की समस्या को उठाने वाला यथार्थवादी साहित्य है। इसमे विशेष भूखण्ड की समस्त धड़कनों को कैद करने की पुरजोर कोशिश रहती है।

लोक संस्कृति– आंचलिक कथा-साहित्य का प्राण है। साहित्यकारों ने हमें सावधान किया है– 'प्राचीन परम्पराओं व सांस्कृतिक मान्यताओं की रक्षा का प्रश्न इस

युग की सबसे बड़ी माँग है।''[28]

इसीलिए आंचलिक कथाकारों ने भूखण्ड विशेष के रीति-रिवाज, मान्यताओं रहन-सहन, पर्व-त्योहार, लोकगीत, लोकनृत्य, रूढ़ियों, अन्धविश्वास, विशिष्ट बोली व लोक कहावतों का अपने साहित्य में भरपूर प्रयोग किया है। इन प्रयोगों के पीछे उद्देश्य समाहित था कि हमारे देश की संस्कृति विकास यात्रा में सहयोग देने वाले क्षेत्रों को भी राष्ट्र के विकास की मुख्य धारा में जोड़ा जाय। डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय आंचलिक कथाकार फणीश्वरनाथ रेणु के सम्बन्ध में लिखा है– ''रेणु के पास तो ध्वनि यंत्र है, जिसके माध्यम से उन्होंने इस अंचल के गायों की आवाज, पेड़-पौधों के पत्ते-पत्ते के हिलने की ध्वनि, नाक सिकुड़ने व छींकने की आवाजें, हँसलुयों व झाँझरों के बजने की आवाजें कंगनों की खनक तक मूर्त कर दी है।''[29]

लोकसंस्कृति के चित्रण के माध्यम से आंचलिकता को उभारने के साथ-साथ कथाकारों का यह भी उद्देश्य रहा है कि इन छिपी-अज्ञात लोकसंस्कृतियों को उभारकर सम्पूर्ण देश को बोध कराया जाय कि यह भी अपने देश की एक संस्कृति है तथा इनसे एक विकास-यात्रा प्रारम्भ की जा सकती है। इस सम्बन्ध में परती-परिकथा' के परिप्रेक्ष्य में डॉ. रामगोपाल सिंह चौहान लिखते हैं– ''जितेन्द्र के द्वारा आयोजित नाटक 'पंचचक्र में कोसी के प्रकोप में डूबते हुए गाँव, बहती हुई लाशें, चीख-पुकार से लेकर बाँध बँधने के संघर्ष तथा परती के फसल के लहलहाने तक के दृश्यों में उपन्यास की समस्त कथा के मर्म को अपनी समस्त गहाई के साथ उभारकर भविष्य की कल्पना को साकार रूप प्रदान कर जनता में नई आशा का संचार किया गया है।''[30]

---

28. हिन्दी उपन्यास, सिद्धान्त व समीक्षा--माखन लाल शर्मा–पृष्ठ–219
29. आधुनिक कहानी का परिपार्श्व– डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय पृष्ठ– 145
30. आधुनिक हिन्दी साहित्य– डॉ. रामगोपाल सिंह चौहान–पृष्ठ–225

इस प्रकार आंचलिक कथा-साहित्य में वर्णित विविध सांस्कृतिक रूपों की झलक आंचलिकता की एक विशिष्ट पहचान है। इन्हीं लोकसंस्कृतियों के अभ्युत्थान का निरूपण करने पर पता चलता है कि हिन्दी भाषी ग्रामीण समाज की व अनछुए, अपरिचित भूखण्डों की लोकसंस्कृति, बहुत विशाल व मूल्यवान है। इसीलिए आंचलिक कथाकारों ने ग्रामीण जनता की सांस्कृतिक विशालता को पूर्ण आत्मीयता के साथ हिन्दी-साहित्य में प्रतिष्ठापित किया है।

नारी की स्थिति की घोषणा– भारतीय समाज में नारी का स्वरूप व स्थिति सदैव समान नहीं रही है। प्राचीनकाल से आधुनिककाल तक स्थिति में उतार-चढ़ाव आते रहे हैं। आधुनिककाल में विविध प्रदेशों में विविध स्तर देखने को मिलते हैं। आंचलिक कथा-साहित्य में वर्णित नारियों के भिन्न-भिनन्न रूप पाये जाते हैं। कुछ जातियों में नारी की सेविका की सी स्थिति है, कहीं पुरुष रूपी आधार पर बेलि के समान पलने वाली, कहीं पुरुष पर शासन करने वाली और कहीं माता-पिता की किसी बेंची जाने वाली वस्तु के समान जैसी स्थितियाँ विद्यमान हैं। इन सभी स्थितियों का सम्यक् वर्णन आंचलिक कथा-साहित्य में किया गया है। आंचलिक कथाकारों ने अपने साहित्य में नारी के आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक व कामुक रूपो का इतना सफल चित्रण किया है कि इन कथाओं को हम सम्पूर्ण इतिहास की संज्ञा दे सकते हैं। इन कटघरों में फँसी हुई, दर्द से छटपटाती नारी की स्वतंत्रता का उद्घोष आंचलिक कथा-साहित्य का एक अन्य भी उद्देश्य रहा है। नारी की मनोभावनाएँ– समर्पण, जड़ता, सहनशीलता, सौन्दर्य-प्रदर्शन, गहनों से अति लगाव तथा हर छोटी-छोटी बात पर लड़ झगड़ पड़ना इत्यादि आंचलिक नारियों की बहुत बड़ी खूबी रही है। रेणु की कथा में नारी ने पुरुष को सम्मान तो दिया है, परन्तु वह मनोग्रन्थि से बच नहीं पाई है। स्वतंत्रता के पूर्व तथा बाद की नारी की स्थिति में एक बदलाव आ रहा है, यह परिवर्तन इन कथाकारों की दृष्टि से ओझल नहीं हुआ है। नारी को जहॉ विदेशी शासन तथा रूढ़ धर्माचार्यो ने गुलामी की बेड़ियाँ पहनाई हैं, शोषण किया है, वहीं रूढ़ियों व अन्धविश्वासों ने उसे

बौना भी किया है। बद से बदतर होती जा रही इन नारियों ने आज़ादी के बाद उन मूल तत्वो को पहचानना शुरू कर दिया है, जहाँ से इनके शोषण को खाद-पानी मिलता है। यही कारण है कि अंचल विशेष ही नहीं समस्त नारी जाति ने शोषण से मुक्ति के लिए जब सामंत-युग की शोषण-वृत्ति व धुंध से निकलकर उन्मुक्त वातावरण में साँस लेना चाहती हैं और पुरुषों के सम्मुख बराबरी की माँग रखती जा रही हैं। ऐसा लगता है कि अब वे सामंती जुए को फेंक देना चाहती हैं। यह स्पष्ट है कि इनके इस प्रयास में सरकार, सामाजिक सुधार कर तथा आंचलिक कथाकारों ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आंचलिक उपन्यासकारों इन उपेक्षित नारियों की स्वतंत्र्याकुल चेतना को वाणी प्रदान की है। इस सम्बन्ध में सुरेन्द्र चौधरी का कथन है– ''रेणु का दृष्टिकोण नारियों के सम्बन्ध में लिखे गये बहुत सी कथाओं को उघारना नहीं था, अपितु नारी-समस्या को अपन काल में पहचानकर उसके अन्तर्विरोधों को उजागर करना था।''[31]

मैला आँचल में मठ का स्वामी कहता है– ''लक्ष्मी का बाप जिस मठ का सेवक था वह मेरीगंज के अधीन है, इसलिए लक्ष्मी पर मेरा अधिकार है।"[32] 'लड़की की जाति बिना दवा-दारू के ही आराम हो जाता है ......[33] इस सम्बन्ध में इतना ही कहा जा सकता है कि नारी-स्वातंत्र्य-आन्दोलन आंचलिक कथा-साहित्य का एक रचनात्मक आन्दोलन था। जिसमें उनकी विविध समस्याओं का समाधान निकल सकता और यह भी युगों से पराधीन नारी अपने वजूद को पहचानकर पुरुष के साथ कदम मिलाकर विकास-यात्रा में सहायक हो सके।

आंचलिक कथा-साहित्य की समस्याएँ– (सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक)

आंचलिक कथा-साहित्य का उद्‌भव ही समस्याओं के फलक पर हुआ है।

---

31. फणीश्वरनाथ रेणु– सुरेन्द्र चौधरी– पृष्ठ–109
32. मैला आँचल–पृष्ठ–184
33. मैला आँचल–पृष्ठ–306

भारतवर्ष के अंचल विशेष जिस पर जन्म लेकर आंचलिक कथाकारों ने उसे पूर्णतः जिया, भोगा और समझा, उसकी स्वाभाविक निःसृति आंचलिक कथा-साहित्य में उभरकर साने आई है। ज़िन्दगी की ज़हालत में साँस लेते हुए भूखण्ड विशेष के जनजीवन की समस्याओं से सामना सोकर उठते और सोते समय हर समय हुआ करता है। और जो कुछ भी समस्याओं का समाधान सम्भव भी होता है, उसका निर्यात होने से कोई बचा भी नहीं पाता। इसीलिए तो डॉ. शिव प्रसाद सिंह के उपन्यास ''अलग-अलग वैतरणी'' में जग्गन मिसिर कहता है– ''इस गाँव से निर्यात ही हुआ करता है। जितनी अच्छी चीजें होती हैं, वे बाहर जाने के लिए बाध्य हैं।''[34] आंचलिक उपन्यास 'मैला ऑचल' में समाज का शब्द चित्र है। एक आलोचक ने अपने कथन में कहा है– ''गोदान के पश्चात् ग्राम्य-जीवन का इतना रंगीन ताना-बाना रेणु के सिवा और किसी ने नहीं बुना है।'' मेरीगज गॉव के लोग इतना होते हुए भी अपढ़, मूर्ख, ईर्ष्या-द्वेष से त्रस्त, कुंठाओं व ग्रन्थियों में उलझे हुए तथा कामुकता व भ्रष्टाचार के सबल पंजों में बुरी तरह जकड़े हुए हैं। अन्ध विश्वासी इतने हैं कि बिना जोतखीजी के परामर्श के किसी कार्य का श्रीगणेश करना अशुभ मानते हैं। अन्धविश्वासों के कारण ही गनेश की नानी डायना कहते हैं, परन्तु उसके सम्मुख कुछ नहीं कहते क्योंकि उन्हें डर है कि कहीं कोई जादू-मन्तर के द्वारा 'सराप' न दे दे।

आंलचलिक कथाकारों ने तथाकथित समाजसेवकों को कई बार उपन्यासों व कहानियों में पात्रों के कथन के माध्यम से फटकारा भी है। बाढ़ व सूखे के समय विभीपिकाओं में भी लोग अपने स्वार्थ की रोटियाँ सेंकने से बाज नहीं आते। समाज में सर्वत्र अनास्था एवं भ्रष्टाचार के कारण एक सी सामाजिक उलझन बढ़ती चली जा रही है। सबका मानवसत्ता पर से विश्वास उठता चला जा रहा है। वे सोचते हैं– सूर्य, चॉद, तारों का भी कोई विश्वास नहीं .... क्या जाने किस दिन उगना बन्द कर दें, कुछ कहा नहीं जा सकता। इतना ही नहीं समाज में विविध प्रकार की समस्याओं

34. अलग-अलग वैतरणी– शिवप्रसाद सिंह

ने इतना गम्भीर रूप धारण कर लिया है कि लोग यथार्थ ज्ञान का स्वरूप ही लगभग भूल चुके हैं। ईर्ष्या, डाह, द्वेष, कामुकता मानसिक कुंठायें, अशिक्षा, अन्धविश्वास, जादू-टोने तथा सामन्ती संस्कारों के कारण समाज में विविध समस्याओं ने भयंकर रूप धारण कर लिया है। इस प्रकार इन समस्याओं का चित्र प्रस्तुत कर इसके माध्यम से उन्हें एक व्यापक जीवन का संस्पर्श प्राप्त होता है। यदि ऐसा न हो तो आंचलिक समस्या एक सीमा में बँधकर रह जाय। इन्हीं समस्याओं में जातिवाद, छुआछूत, भूमि मोह, नारी-समस्या, जमींदारी तथा शोषण ने इतना विकराल रूप धारण कर लिया है कि इन्ही के चलते ये अंचल यदि मैले रह जाते हैं तो कोई आश्चर्य नहीं। भूमिहीनता की स्थिति ज्यों की त्यों बनी रहती है। नाममात्र के लिए जमींदारी समाप्त हुई है, किन्तु अभी तक राजा व जमींदार जमीन के स्वामी बने बैठे हैं।

''किसी के ज़मीन की मेंड़ एक इंच इधर से उधर हो जाय, सिर पर खून सवार हो जाता है।''[35]

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वतन्त्रता के पश्चात् के विगत तीन दशकों के आंचलिक भू-भाग का ग्रामीण समाज विविध उतार-चढ़ावों के बीच जीता चला जा रहा है। समाज के भीतर पूर्व की मान्यताओं में व्यापक परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है। लोक उन सामाजिक मान्यताओं को मानने से इनकार कर रहे हैं, जो उन्हें गुलाम बनाए हुए है। उदाहरण से स्पष्ट हो रहा है– ''इज्जत तो सबकी एक ही है बाबू। चाहे चमार की हो, चाहे ठाकुर की। हम आपका काम करते हैं, मजदूरी लेते हैं, हमें गरज है कि हम करते हैं। आपको गरज है कि कराते हैं। इसका मतलब ई थोड़े हो गया कि हम आपके गुलाम हो गये।''[36]

---

35. परती-परिकथा–रेणु

36. ''अलग-अलग वैतरणी''– शिवप्रसाद सिंह

इस प्रकार आंचलिक कथाओं में भारतीय ग्रामीण समाज का स्वरूप उसकी परम्परागत व परिवर्तनशील स्थिति के नियामकतत्व जाति एवं वर्ण-व्यवस्था, छूआछूत, पारिवारिक व्यवस्था, नारी की सामाजिक स्थिति तथा विविध सामाजिक समस्याओं का गहन व व्यापक चित्रण मिलता है।

भारतीय ग्रामीण समाज की परम्परागत आर्थिक व्यवस्था में नाना प्रकार के परिवर्तन हो रहे हैं। हिन्दी के आंचलिक कथा-साहित्य में ग्रामीण अर्थव्यवस्था के स्वरूप में स्वतंत्रता के पश्चात् एक विशेष प्रकार के बदलाव की आशा की जा रही है। भारत सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से कृषि, लघुउद्योग व परम्परागत आय के साधनों में लाभकारी दष्टिकोण को अपनाया। इसके लिए कृषि क्षेत्र में चकबन्दी जमींदारी की समाप्ति, सिचाई के साधनों में वृद्धि, खाद-बीज की उन्नत जातियों का सवर्द्धन, विपणन-व्यवस्था, उद्योगों में एक ओर भारी उद्योगों के माध्यम से अच्छी व त्वरित वस्तु का उत्पादन दूसरी ओर लघु उद्योगों के जाल से सबके लिए रोजगार में वृद्धि तथा अन्य बहुत से आय के लाभ के साधनों का प्रबन्ध किया गया।

लेकिन इन सारे प्रयासों के बावजूद आर्थिक दृष्टि से गाँव के लोग आशानुकूल प्रगति न कर सके। इसका कारण था– सरकारी तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार, उपेक्षा एवं सामाजिक असमानता। नीतियाँ ईमानदारी से क्रियान्वित नहीं करायी गई। 'मैला आँचल' उपन्यास केएक उदाहरण से ये बात अधिक स्पष्ट हो सकती है– ''जिस ज़मीन पर उनके झोपड़े हैं, वह भी उनकी अपनी नहीं।'' बेपरदे तो सारा गाँव है। कपड़ा अब कहाँ है? रिचरब में भी नहीं है.... सिरिफ कफन व सराध का कपड़ा है ...... उसी में से'' ....[37] इस आर्थिक विपन्नता के लिए बहुत कुछ अशिक्षा व उससे उत्पन्न अधिक जनसंख्या जिम्मेदार है। करैता गाँव की गली से गुजते हुए दयाल महाराज के शब्दों से भी ग्रामीण समाज में जनसंख्या की अतिवृष्टि से उत्पन्न समस्या का आभास मिल जाता है– ''मार

37. मैला आँचल– रेणु पृष्ठ–132

सालों को। कितने लड़के हैं साले.... जिधर निकलो म्याँव.... म्याँव..... काँव.... काँव। इन चूहों का कहीं अन्त भी है कि नहीं...... हे ईश्वर।''[38]

हिन्दी के आंचलिक कथा-साहित्य में वर्णित ग्रामीण समाज की अर्थव्यवस्था में आर्थिक, प्राकृतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक बाधाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है। सरकारी प्रयास के बावजूद आज भी गाँवों में ऋण की स्थिति दयनीय है; सुविधाओं का लाभ बड़े लोग लेते हैं; सूदखोरी ने बड़ों को बड़ा तथा छोटों को लगभग नंगा सा कर दिया है। फसल के समय भावों का गिर जाना और इसके बाद दामों का एकाएक चढ़ना आर्थिक व्यवस्था का कोढ़ रहा है। मध्यमवर्ग के काम आने वाली वस्तुएँ अति मँहगी हो गई। करैता गाँव के मेले का एक दृश्य देखें– ई क्या किया साह जी आपने? दयाल महराज नाक पर गमछा हिलाते हुए बोले.... ई खाली गुड़ की जलेबी की दुकान.... पारसाल तो आपने मिठाई की दुकान लगाई थी! ई उलटफेर काहें।.....''[39] ''अतिवृष्टि व अनावृष्टि तथा सूखा-पाला ने ग्रामीण कृषि व्यवस्था को अधिकांश में प्रभावित किया है। करैता ग्राम वर्षा के अभाव के कारण ग्रस्त है।''[40]

ग्रामीण जनता के सांस्कृतिक मूल्य भाग्यवाद, ईश्वर व स्थानीय देवी-देवताओं में अति आसक्ति व विश्वास की उसकी आर्थिक प्रगति में बाधक तत्व शामिल हैं। बिहार अंचल की पृष्ठभूमि पर आधारित परती परिकथा में जितेन्द्र द्वारा परती को तोड़ने को पाप की संज्ञा देते हुए ग्रामीण जनता उसका विरोध करती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास में बाधक तत्वों को दूर कर एक नये विकास की योजना को स्वरूप प्रदान किया है। सुधार सम्बन्धी योजना का उल्लेख भी मिलता है। परती परिकथा में सरकार कोसी योजना कार्यान्वित करती

38. 'अलग-अलग वैतरणी'– शिवप्रसाद सिंह
39. ''अलग-अलग वैतरणी''–शिवप्रसाद सिंह
40. अलग-अलग वैतरणी–शिवप्रसाद सिंह

है तथा जनता के करोड़ो रूपये की बचत तथा करोड़ों की आय का साधन उपलब्ध हो जाता है। रेणु के शब्दों में– कोसी योजना के लाभों को समाचार-पत्र से सुनाते हुए जितेन्द्र कहता है– ''परानपुर की परती पर इसी साल जूट और धान की खेती..... दुलारी दाय में कुल उपजाऊ ज़मीन ढाई हजार एकड़ है, जबकि परती पर सात-आठ हजार एकड़ जमीन अगले वर्षों में तैयार हो जाएगी।''[41]

इस प्रकार ग्रामीण अर्थव्यवस्था में बिनोबाभावे के भूदान यज्ञ ने भी काफी उत्थान किया। विशाल भूस्वामियों की भूमि स्वेच्छा से दिलवाकर भूमिहीनों -श्रमिकों को भी समान स्तर पर लाने का भगीरथ प्रयास किया गया। समाजवादी विचारधारा ने अर्थव्यवस्था का निर्माण इस आधार पर करने का बीड़ा वठाया कि एक भी ग़रीब की आँख में ऑसू न रहे।

इस प्रकार समकालीन ग्रामीण अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत् शोषण, अत्याचार, जमींदारी व अन्धविश्वास सम्बन्धी अवधारणा ने अब परिवर्तित रूप अपना लिया है जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सहायक सिद्ध हो रहा है। स्वतंत्रता के पश्चात् ग्रामीण मानचित्र से शोषण अर्थव्यवस्था में सुधार आ रहा है तथा ग्रामीण समाज के मध्य व निम्न वर्ग की वास्तविक आर्थिक प्रगति आंचलिक कथा-साहित्य की अगली कड़ी है।

राजनीतिक समस्याएँ– स्वतंत्रता के पश्चात् ही आंचलिक कथा-साहित्य का उद्‌भव होता है। इसलिए स्वाभाविक रूप से स्वतंत्रता से कुछ वर्ष पूर्व व पश्चात् की राजनीतिक समस्याएँ आंचलिक कथाओं में उभरकर सामने आई हो। यद्यपि की प्रथम आंचलिक उपन्यास ''मैला आँचल'' में 1942 से 1948 ई० तक पूर्ण राजनीतिक चित्र इसमे मिलता है। लेकिन अधिकांश आंचलिक उपन्यासो व कहानियों मे स्वतंत्रता के पश्चात् के स्वरूप का चित्रण दिखाई देता है। फणीश्वरनाथ रेणु के अधिकतर उपन्यास व कहानियाँ आज़ादी के पूर्व की पृष्ठभूमि पर लिखी गई है।'' महायुद्ध व देश की स्वाधीनता

---

41. परती परिकथा– रेणु

आन्दोलन की लहरों ने यहाँ के जीवन में कम्पन पैदा न किया हो, यह बात नहीं।''[42] राजनीतिक समस्याएँ थीं– चुनावी नीति, दलबन्दी तथा पूँजीवाद।

देश की राजनीति पर स्वतंत्रता के पश्चात् के वातावरण का विशेष प्रभाव पड़ा है। भारतीय संविधान ने जनता को अपने भाग्य का निर्णय करने के लिए स्वतत्र व निष्पक्ष अधिकार प्रदान किया है। लेकिन बहुत से बाधक तत्वों ने इन पर कुहरा सा चढ़ा दिया है। चुनावी नीति में जाति, धर्म, सम्प्रदाय, क्षेत्रवाद व धन-शक्ति ने बढ़चढ़कर हिस्सा लिया है, जिससे राजनीतिक गोटों बहुत कुछ शक्तिशाली लोगों के हाथ में सिमट कर रह गई हैं।'' किसका आदमी ज्यादा चुना जाय इसी की लड़ाई है। यदि राजपूत पार्टी के लोग आयें तो सबसे बड़ा मंतरी भी राजपूत होगा।''[43]

भाई-भतीजेवाद ने भी राजनीति को बहुत गन्दा कर दिया है। इसी भाई भतीजेवाद के कारण ही डॉ. प्रशान्त भी गिरफ्तार कर लिया जाता है। वोट देने वाले ग्रामीण जन पूर्णतया पूँजीपतियों के हाथ के खिलौने हैं– ''वे गरीबों के गले में गरीबों के जरिए ही छूती चलाते हैं।''[44]

इस प्रकार आंचलिक कथाकार रेणु ने ग्रामीण राजनीति पर कटाक्ष करते हुए एक स्थान पर लिखा है–'एक झूठ को दूसरे झूठ से, दूसरे को तीसरे से और तीसरे को चौथे झूठ से ढँकते-ढँकते मूल झूठ की पकड़ मजबूत हो जाती है।''[45]

हिन्दी के आंचलिक कथा-साहित्य में विविध राजनीतिक दलों के कार्यकर्त्ता भारतीय ग्रामीण समाज की राजनीतिक चेतना में अभिवृद्धि करते हैं, वहीं दूसरी ओर

42. आलोचना–35, जनवरी 1966, पृष्ठ–84

43. मैला आँचल–रेणु

44. मैला आँचल–रेणु

45. ''जुलूस''– रेणु

चुनावी नीति, दलबन्दी, राजनीतिक चालें, पूँजीवाद, भाई-भतीजेवाद के कारण रकाजनीतिक संकट पैदा हो गया है। जनता विभिन्न प्रकार के वादों-विवादों में फँसी मूकदर्शक बनी हुई सही व गलत का निर्णय नहीं कर पा रही है। इस साहित्यिक मोर्चे में स्वतंत्रता के पूर्व व बाद की विविध राजनीतिक हलचलों को अपने भीतर प्रतिबिम्बित किया है। इसीलिए विविध अंचलों में उत्भूत राष्ट्रीय भावना को वाणी प्रदान करने के कारण डॉ. विजयेन्द्र स्नातक व भगवती प्रसाद शुक्ल ने आंचलिक कथा-साहित्य को राष्ट्रीय भावीआ का साहित्य कहा है।

धार्मिक व सांस्कृतिक समस्याएँ– भारतवर्ष धर्म प्राण देश है। इसके प्रत्येक क्षेत्र में चाहे वह नगर हो या 'अचल' विशेष– धर्म के प्रति विशेष आग्रह पाया जाता है। प्रत्येक दुःख-सुख का प्रदाता ईश्वर होता है– ऐसी धारणा ग्रामीण समाज की एक पहचान है। कृषि महत्वपूर्ण व्यवसाय या आजीविका का साधन होने के कारण वे कृषि पर भी भगवान की कृपा मानते हैं। अतिवृष्टि या अनावृष्टि या बाढ़ के लिए इन्द्रभगवान से प्रार्थना करते हैं। मेरीगंज ग्राम की वर्षा के बारे में अवधारणा पर रेणु ने लिखा है– 'हर साल बरसात के मौसम में यही होता है। भगवान के हाथ की बात इंसान क्या जाने। इन्द्र भगवान से प्रार्थना की जाती है..... बरसाओ ..... जमीन वालों, बेजमीनों, सबों की रोटी का प्रश्न है और यदि लगातार पाँच दिनों तक घनघोर वर्षा हुई और खेतों में आलू डूबे कि ...जरा एक सप्ताह सबुर करो महराज .... टोला की औरतें इन्द्र को रिझाने व बादल को बरसाने के लिए आट-ज ट्टिन' खेतली हैं।''[46]

''सम्पूर्ण परानपुर परम देवता की पूजा करता है।''[47] ईश्वरवादी अवधारणा के अलावा ग्रामीण समाज में भूत-प्रेत, चुड़ैल, बहुदेववाद व जिनों का भय भी धार्मिक दृष्टिकोण की ओर संकेत करता है। इनके अधिकतर कार्य इन्हीं देवी व देवताओं के प्रताप

---

46. मैला-ऑचल– रेणु

47. परती-परिकथा–रेणु

से सम्पन्न होते हैं। इस अज्ञात भय को इन्होने धर्म का जाना पहनाया है और इससे इनकी स्थिति होती चली जाती है। आंचलिक कथाकारों ने यह बात बार-बार अपने-अपने साहित्य में उभारा है कि आखिर वे कौन सी शक्तियाँ हैं, जो इन धार्मिक विश्वासों को बढ़ावा दे रही हैं। यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि इसके मूल में यहाँ की अशिक्षा व मूढ़वादिता है। वे आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की नई-नई खोजों से सर्वथा अनभिज्ञ हैं।, जिसका फल है कि अन्धविश्वास व रूढ़ियों को वे धर्म मान बैठें है। इसी परम्परा को कायम रखने के लिए मठों, सम्प्रदायों व मन्दिरों की स्थापना पर बल देते हैं। ये स्थान चाहे भ्रष्टाचार के अड्डे ही क्यों न हों लेकिन चूँकि यहाँ धर्म फलता-फूलता है, इसलिए वे उसके पीछे भागे चले जा रहे हैं।

धर्म का दूसरा रूप था– एक दूसरे के धर्म के प्रति तत्कालीन लगाव न विद्रोह। आंचलिक कथा-साहित्य में व्यक्त धर्म का स्वरूप एकात्मक संस्कृति की रक्षा के लिए अधिक व्यक्त हुआ है। अधिकतर मामलों में हिन्दू-मुस्लिम-सिख-ईसाई व अन्य धर्मों के समर्थकों में पारस्परिक सहिष्णुता पाई जाती है। किन्तु कुछेक स्थानों पर विद्वेष व विद्रोह भी पाया जाता है। परस्पर सौहार्द का एक छोटा उदाहरण प्रस्तुत है–

'अरे चमके मन्दिरवा में चाँद

मसजिदवा में वंशी बजे

मिली रही हिन्दू मुसलमान

मान अपमान तजो।'[48]

'अलग-अलग वैतरणी' में व्यक्त एक दृश्य–

'आज तक ऊपर ख़ुदा गवाह है बेटे, मैंने कभी हिन्दू-मुसलमान में फर्क नहीं किया..... आज तक खलील मियाँ की बहू-बेटी को या उनके किसी पुश्त में खानदान

---

48. मैला आँचल–रेणु

की किसी लड़की को कभी हिन्दुओं ने अपनी बहू व बेटी से अलग नहीं माना।''[49]

हमारे देश के संविधान-निर्माण के समय निर्माताओं ने धार्मिक स्वतंत्रता का मूलाधिकार हमें सौंपा और सरकार यह बराबर प्रयास करती रही है कि धर्म निरपेक्ष राज्य की स्थापना के मूल उद्देश्य की प्राप्ति हो सके। छूआछूत, सती-प्रथा, बाल विवाह, जादू टोने व अन्य प्रतिगामी विश्वास विज्ञान की प्रगति व शिक्षाई के प्रचार-प्रसार से धीरे-धीरे टूट रहे हैं। स्थिति अब यह नहीं है कि हरिजनों का प्रवेश मन्दिरों में वर्जित हो यद्यपि की आंचलिक कथाओं में वहाँ की लोकसंस्कृति इन तत्वों से अभी भी ग्रस्त है। इन्हीं प्रतिगामी तत्वों का मूल चित्र आंचलिक कथाओं में उभरकर सामने आया है। कथाकारों का उद्देश्य यह रहा है कि धर्म के वास्तविक स्वरूप को जनता समझे और धर्म में व्याप्त कुरीतियों, कठमुल्लापन व रूढ़ियों को त्यागकर मानव-धर्म के पालन के लिए आगे आयें। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि आंचलिक कथा-साहित्य में वर्णित भारतीय ग्रामीण समाज में ईश्वरवाद, बहुदेववाद, भूत-चुड़ैल, ओझा-गुनी, साधु-सन्तों की स्थिति, पाप-पुण्य की अवधारणा, अन्य धर्मों से समन्वय व विद्वेष व धर्म की परम्परागत विशेषताएँ गहरे रूप में समाई हैं, जिन्हें आंचलिक साहित्य की एक विशेप दृष्टि ही खोज सकती थी।

सांस्कृतिक समस्याएँ– भारतीय ग्रामीण समाज की अज्ञात-अछूती व उपेक्षित लोकसंस्कृतिक को राष्ट्र के सामने लाने का श्रेय आंचलिक कथाकारों को पूर्णतया मिलता है। आंचलिक कथा-साहित्य में यहाँ की लोकजीवन-शैली, मान्यताएँ व रहन-सहन और बहुलांश मे विचार तक निरूपित हुआ है। यह इस साहित्य की सबसे बड़ी महत्वपूर्ण उपलब्धि है। डॉ. रवीन्द्र भ्रमर का कहना है– ''किसी भी देश की लोकसंस्कृति में वहाँ के विशाल भू-भाग के अशिक्षित व असभ्य मनुष्यों के प्राणों का स्पन्दन होती है। इन्हीं के सम्पूर्ण चरित्र का चित्रांकन आंचलिक कथा-साहित्य की लोक संसृकृति के निर्माण

---

49. अलग-अलग वैतरणी–शिवप्रसाद सिंह

में सहायक होता है।''[50]

लोकसंस्कृति का प्राण है– सम्बन्धित भू-भाग की लोकभाषा या स्थानीय बोली। वस्तुतः उस बोली से ही उस वातावरण की सहजता का आभास रो सकता है। उसी वातावरण को यदि खड़ी बोली में तत्सम रूप में प्रस्तुत करें तो वह बात नहीं रह जाती। कुछ आलोचक आरोप लगाते हैं कि स्थानीय बोली में सहज-सप्रेषण की भावना का अभाव पाया जाता है। इसके उत्तर में प्रसिद्ध आलोचक डॉ. विमल शंकर नागर का कथन है– ''लोकसंस्कृति का प्रतिबिम्बन लोकभापा के बिना न हो सकेगा। लोकसंस्कृति में लोकगीत, लोकोक्तियाँ, लोकनृत्य, लोककथाएँ, गालियाँ व मुहावरे इत्यादि आते हैं। भला लोकभाषा के बिना इन्हें कौन प्रस्तुत कर सकता है? लोकसंस्कृति के प्रमुख उपादान इस प्रकार हैं– लोकबोली या स्थानीय बोली, पर्व-त्योहार, वाद्ययन्त्र, पहनावा, रहन-सहन, परिवहन, अन्धविश्वास, मूर्खता, जाति-पाँति, व्यवसाय, लोक साहित्य, लोकवाद्य, लोकनृत्य बिगड़े शब्द, प्रिय गालियाँ, मुहावरे, कथन-सभा-सोसायटी, खान-पान, तुकबन्दी, जादू-टोना तथा कामुकता।''[51]

यद्यपि कि आंचलिक साहित्य में विशेष भूभाग के लोकजीवन को समस्याओं के तौर पर निरूपित किया गया, परन्तु फिर भी उनके साधारण जीवन के इतने विविध पक्ष प्रस्तुत किये गये हैं कि पूरा का पूरा का अंचल हमारी आँखों के सामने तैर जाता है।

आंचलिक कथाकार रेणु ने अपने कथा-साहित्य में लोकसंस्कृति के विविध चित्रों को संयोजित कर पात्रो की गूढ़ मनः स्थितियों को उभारा है। इन चित्रों के माध्यम से अन्य बहुत से साहित्यकारों वे विशेष भूखण्ड की मनः स्थितियों के सामने लाकर लुप्त

---

50. पद्मावत् में लोकतत्व– डॉ. रवीन्द्र भ्रमर, पृष्ठ–20

51. हिन्दी के आंचलिक उपन्यास, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सन्दर्भ– डॉ. विमल शंकर नागर

होती हुई जा रही भारतीय सस्कृति के एक और पक्ष को उद्घाटित करने में विशेष सफलता प्राप्त की है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आंचलिक कथा-साहित्य में अवतरित लोक संस्कृति के विविध उपादानों एवं सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों के परम्परागत स्वरूप यहाँ के जीवन को एक नई गति देते हैं। भारतीय ग्रामीण समाज सांस्कृतिक दृष्टि से आज भी बहुत समृद्ध है। आंचलिक उपन्यासकारों ने साहित्य में इन्हें स्थान देकर विलुप्त होती जा रही जनसंस्कृति की रक्षा करने का भगीरथ प्रयास किया है। लोकसंस्कृति की रक्षा तथा राष्ट्र की मुख्य धारा से इन्हें जोड़ने का जो सत्प्रयास आंचलिक कथा-साहित्य में मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

●

द्वितीय अध्याय

आञ्चलिक कथा-साहित्य के तत्व

लोकतत्व–

1. परम्परा
2. जादूटोने
3. अन्धविश्वास
4. मूर्खता
5. कामुकता
6. पर्व-मेले-त्योहार
7. खान-पान
8. रहन-सहन
9. संस्कार
10. अन्य स्थानीय रंग

शिल्पगत तत्व–

1. कथावस्तु
2. चरित्र-चित्रण
3. भाषा-शैली
4. संवाद
5. देशकाल अथवा वातावरण
6. उद्देश्य
7. शिल्पगत वैशिष्ट्य

द्वितीय अध्याय

आंचलिक कथा-साहित्य के तत्व

क. लोकतत्व

लोक संस्कृतिक आंचलिक कथा-साहित्य का प्राण है। भूखण्ड विशेष के समग्र चित्र को साहित्यकारों साहित्य में लोकजीवन के व्यवहार व रहन-सहन के माध्यम से व्यक्त किया जा सकता है। लोक संस्कृति का अर्थ होता है–किसी भी क्षेत्र विशेष की जीलन-शैली, आचार-विचार तथा रहन-सहन। इसका सम्यक् रूप में आंचलिक कथा-साहित्य में देखने को मिलता है। आंचलिक कथाकारों का मुख्य उद्देश्य रहा है कि अनजाने भूखण्ड व अपरिचित स्थानों के लोक जीवन को सामने लाया जाय और देश के अन्य भाग के लोगों से इनका परिचय कराया जाय, जिससे इनमें एकात्मता की भावना उत्पन्न हो। संस्कृति का अर्थ होता है– संस्कारित अर्थात् जनमानस वातावरण के विविध प्रभावों से मिट्टी के खिलौनों की भाँति निर्मित। अभिप्राय यह है कि मनुष्य जिन तत्वों से निर्मित होता है तथा जिसमें उसका शारिरिक व मानसिक विकास होता है, उसे संस्कार कहते हैं। इसी वातावरणीय संकलित मनोदशा में पलने वाला मनुष्य संस्कारित कहा जाता है और इसी परम्परा का नाम संस्कृति है। स्वतंत्रता के पश्चात् देश के भीतर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व वैचारिक बदलाव आ रहे थे लेकिन देश के भीतर कुछ भूखण्ड ऐसे थे, जिन तक इस बदलाव की रञ्च मात्र भी भनक न थी, विकास की ये किरणें इन तक नहीं पहुँच पा रही थी। इन्कलाब, कानून, गाँधी, मंत्री, वोट, दहेज, इस्त्री, रेडियो, अखबार इत्यादि न जाने ऐसे बहुत से शब्दों को सुना जाता था किन्तु वास्तविक स्थिति क्या है, इन्हें पता नहीं था। जमींदारी प्रथा की समाप्ति, वोट का अधिकार, चकबन्दी, बाँध-निर्माण, पञ्चवर्षीय योजनाएँ, अश्पृश्यता-निरोधी कानून तथा मोटर-गाड़ी के साधनों के हो जाना और इस वातावरण में जीवित रहते हुए भी

इनसे अपरिचित रहना या उसका गलत अर्थ में प्रयोग करना इस वातावरण की जागरूकता की पहचान है। अन्धविश्वास रूढ़ियों, कुंठाओं, कामुकता, गालियों व गन्दगी में धँसे होने के कारण ये अपने वास्तविक स्वरूप को भूल गये हैं। जैसे कि इन्हें किसी कुएँ में ढकेल दिया गया ओ। वे बाहरी ज्ञान-विज्ञान, आचार-विचार व व्यवहार से कोई सम्पर्क नहीं रखते, यही उनके पिछड़ेपन व निरीहता का कारण है।

इसी लोकसंस्कृति का दिग्दर्शन कराना आंचलिक कथा-साहित्य का उद्देश्य रहा है। वस्तुतः इन अंचलों की मुख्य समस्या है–अशिक्षा व घोर गरीबी। यह इनके भौगोलिक परिवेश तथा सामाजिक-आर्थिक दशा की देन होती है। इसी अशिक्षा व घोर गरीबी ने इनके जीवन को बेहद ढंग और अभिशप्त बनाकर छोड़ा है। एक ही वातावरण में सदैव रहने के कारण दूसरों से सम्पर्क न होने से और गरीबी के कारण ये मिट्टी की सीधी-सादी मूर्तियाँ जहालत भरे परिवेश में जीवन बिताने को बाध्य हैं और इसे ही वे जीवन शैली या नियति मान बैठे हैं। अंचल विशेष की यह बड़ी बिडम्बना है कि लोग इन्हें गन्दा, असभ्य व नीच मनुष्य की संज्ञा दे बैठे हैं, लेकिन यह करुण सत्य है कि आज़ादी के बाद हुए परिवर्तनों की धड़कन को सुनने के लिए ये बहुत अधीर है। जैसा कि सुरेन्द्र चौधरी का कथन है– 'आँअंचल विशेष की रपटें यह दिखलाती हैं कि यहाँ के लोग आज़ादी के बाद हुए परिवर्तनों में स्थान पाने को छटपटा रहे हैं और उनकी कोशिशें बहुत महत्वपूर्ण हैं कि वे राष्ट्रीय धारा में मिल जाना चाहते हैं।''[1]

अब प्रश्न उठता है कि वे कौन सी ऐसी महत्वपूर्ण बातें हैं जो इनके जीवन-पद्धति में पग-पग पर पाई जाती हैं और पूरी भीड़ में जिनसे इनकी एक पहचान बनती है। निश्चयतः किसी भी देश, समाज या व्यक्ति की पहचान उसके अपने व्यक्तित्व से होती है। उसी प्रकार इन अछूते अंचलों की पहचान भी इनकी जीवन-शैली, रहन-सहन तथा आचार-विचार से होती है, जिसे लोक संस्कृति कह सकते हैं। लोकसंस्कृति के सम्बन्ध में डॉ० रवीन्द्र भ्रमर का कथन है– ''किसी भी देशी की संस्कृति उन असभ्य

1. फणीश्वर नाथ रेणु – सुरेन्द्र चौधरी ।

व अशिक्षित मनुष्यों के प्राणों का स्पन्दन होती है, जो वहाँ की जनसंख्या के विशाल अंग होते हैं। इन अशिक्षित व असभ्य लोगों के सामाजिक जीवन के विविध पहलुओं व परम्परा के कारण उन तत्वों का रूप धारण कर लेते हैं, जिन्हें लोकतत्व और उनके योग को लोकसंस्कृति कहा जाता है।''[2]

इन्हीं तत्वों को ध्यान में रखते हुए आंचलिक साहित्यकार प्रदेश विशेष के रीति-रिवाज, रहन-सहन, त्योहार-पर्व, तीर्थ-मेले, लोकनृत्य, परम्परागत मान्यताएँ विभिन्न प्रकार की रूढ़ियाँ, किस्से कहानियाँ, कला, बोली-वाणी, लोकोक्तियाँ, मुहावरे आदि पर भरसक आलोक प्रक्षेपण कर रहे हैं। यह उनकी बड़ी देन है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे – रेणु के पास तो ध्वनियन्त्र है, जिसके माध्यम से उन्होंने इस अंचल की गायों की आवाज़, पेड़-पत्तों के हिलने की ध्वनि, नाक सिकोड़ने तथा छींकने की आवाजें, हँसुलियों व झाँसों के बजने कँगनों की खनक तक मूर्त कर दी है।''

प्रत्येक अंचल की अपनी एक विशिष्ट जीवन-पद्धति होती है, जिसका निर्माण वहाँ के लोगों के रीति-रिवाज, सामाजिक, नैतिक, धार्मिक व आर्थिक विश्वासों, मान्यताओं तथा सांस्कृतिक परम्पराओं से होता है। वास्तव में इन्हीं सारे तत्वों के समन्वित रूप को ही लोकसंस्कृति की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है। आंचलिक साहित्यकार इसी विशिष्ट संस्कृति के माध्यम से वहाँ की धड़कनों को सुनने का प्रयास करता है। वास्तव में लोक जीवन-पद्धति ही विशिष्ट अंचल की नब्ज़ है, जिसे पकड़कर समूचे भू-भाग की स्थिति जानी जा सकती है। यह आंचलिक संस्कृति की विशेषता निवासियों के रहन-सहन, आचार-विचार, वेश-भूषा, मान्यताएँ, नृत्य-गीत कथा, उत्सव-त्योहार आदि से लेकर आदर्श, सामाजिक मूल्य, आस्थाएँ व विश्वासों से निर्मित होती है। ध्यान देने की यह है कि अंचल की इन्हीं विशेषताओं से एक दूसरे की पहचान बनती है। स्थानीय बोली का अंचल की संस्कृति को प्रतिबिम्बित करने में महत्वपूर्ण स्थान है। कुल आलोचक स्थानीय या आंचलिक भाषा के प्रयोग के कारण अहिन्दी भाषी ही लोगों

2. पद्मावत में लोकतत्व – रवीन्द्र भ्रमर।

के सामने दुरूहता का आरोप लगाते हैं। पर यह बात बड़े स्पष्ट तौर पर कही जा सकती है कि लोकनृत्य, लोकोक्तियाँ, हाव-भाव, पर्व-त्योहार पर गाये जाने वाले लोकगीतों का निर्माण वहाँ के जीन से सम्बद्ध वातावरण से होता है। अतः वहाँ की बोली में ही उसे व्यक्त किया जा सकता है। अन्यथा एक सर्वमान्य भाषा में व्यक्त करने से इसके रूप को सही ढंग से नहीं पहचाना जा सकता। इस प्रकार लोक बोली के महत्व को किसी भी दशा में उपेक्षित नहीं किया जा सकता। लोक बोली की विशिष्टता यह है कि उस पूरे वातावरण को सहज रूप में व्यक्त करने की इसमें अद्‌भुत क्षमता होती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आंचलिक कथाकार प्रत्येक अंचल की उन विभिन्न परिस्थितियों पर ध्यान देता है, जो वहाँ के निवासियों के जीवन को गहराई से प्रभावित करती है और इस प्रकार चारित्रिक व सांस्कृतिक वैविध्य को विकसित करती है।''

लोक संस्कृति के तत्व इस प्रकार हैं– स्थानीय बोली, मनोरंजन के साधन पर्व एवं त्योहार, लोकगीत, लोकनृत्य, पहनावा, खान-पान, विवाह-संस्कार, विश्वास, आचार-विचार, लोकोक्तियाँ, गालियाँ, तुकबन्दियाँ, किस्से-कहानियाँ तथा अन्य ढेर सारी स्थानीय चीजें।

वस्तुतः लोकजीवन में इतनी विविधताएँ उपस्थित हैं कि किसी शब्द-सीमा में उसे बाँधना उसे सीमित करना है। अंचल विशेष की सम्पूर्ण जीवन-शैली किसी प्रिज्म से कम नहीं, जिसमें रेणु जैसे साहित्यकार की दृष्टि पड़ते ही विविध सतरंगी प्रतिबिम्बों का निकल उठना स्वाभाविक सा है। फिर अध्ययन की सुविधा के लिए हम कुछ मुख्य बिन्दुओं पर विचार करेंगे।

लोक बोली– भाषा किसी भी समाज के भावों की वाहिका होती है। अंचल विशेष में बोली जाने वाली भाषा को हम लोक बोली कह सकते हैं। आंचलिक कथा-साहित्य की लोक सांस्कृतिक विशेषताओं में लोकभाषा, लोकबोली या अंचल विशेष

की स्थानीय बोली का इसलिए बड़ा महत्व है कि इस बोली ने ही वहाँ के जन-जीवन को अच्छी तरह व्यक्त किया है। दूसरी बात यदि स्थानीय विशेषता की पहचान यदि लोगों के सामने रखना है तो निश्चयतः ही स्थानीय बोली का सहारा लेना ही पड़ेगा। उस स्थान के परिदृश्य को समझने के लिए अंचल विशेष की बोली का प्रयोग आंचलिक कथाकार की एक आवश्यकता बन जाती है। कथाकारों ने इस बोली का प्रयोग बखूबी किया है। रेणु व नागार्जुन के बारे में तो यह अवधारणा सी बन गई है कि इनके उपन्यासों व कहीं-कहीं स्थानीय बोली के कारण इतनी दुरूहता आ गई है कि वे साधारण पाठक के समझ के परे की चीज बन जाती है। पूरे परिदृश्य को समझने के लिए वहाँ की स्थानीय बोली का ज्ञान आवश्यक है। वस्तुतः भाषा या स्थानीय बोली का ही यह प्रभाव है कि अंचल का पूरा का पूरा परिदृश्य पाठकों के सम्मुख जीवन्त रूप में उतर आता है। स्थानीय बोली के प्रयोग के पीछे कथाकारों का दो उद्देश्य कार्य कर रहा था– स्तान विशेष का यथार्थ-चित्रण करने के लिए और वहाँ के जीवन को सजीवता व सहजता की कसौटी पर रखने के लिए। विशेष पात्रों, स्थितियों, स्थानों व चरित्रों को भावानुकूल भाषा थमा देना आंचलिकता की एक विवशता ही कही जा सकती है। डॉ० रामदरश मिश्र ने उचित ही कहा है–''विशेष प्रकार की अनुभूति को कहने के लिए जब हमारी तथाकथित साहित्यिक भाषा में ठीक-ठीक शब्द नहीं मिलते तब स्थानीय शब्दों का प्रयोग लेखक की अनिवार्य विवशता हो जाती है।''[3]

इस सम्बन्ध में निश्चित तथ्य है कि भाषा तो स्वयं भी मानव एवं समाज की संस्कृति की संवाहक होती है।

इस प्रकार लोकभाषा का प्रयोग आंचलिक प्रवृत्ति की एक प्रमुख पहचान है। यदि इस भाषा का प्रयोग न किया जाय और जन-जीवन की झाँकी प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाय तो वह प्रयास उसी प्रकार है जैसे कमरे में बैठकर राजस्थान की रेत भरी दोपहरी का वर्णन किया जाय अथवा हिमालय की गहन ठिठुरती शाम के बारे

3. हिन्दी उपन्यास; एक अन्तर्यात्रा– डॉ० रामदरश मिश्र पृष्ठ-192

में लिखा जाय। अर्थात् बिना लोकबोली के आंचलिक कथा-साहित्य में वर्णनात्मक स्पन्दन नहीं आ सकता, जो वास्तव में उसकी आवश्यकता है। मेरे विचार से भारतीय समाज का अधिकांश गाँवों में रह रहा है। शहरों में खो रहे गाँवों की विलुप्त होती हुई संस्कृति की पहचान को बनाये रखने में आंचलिक साहित्यकारों ने चरित्र-चित्रण, लोक बोली तथा पूरे वातावरण का वर्णन जिस क्षमता के साथ किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है, इसके पीछे स्थानीय बोली की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यह भगीरथ प्रयत्न लोक कथाकारों ने वातावरण की सहजता को बनाये रखने के लिए उन्हीं के स्वर में स्वर मिलाकर गीत गाया। यह आंचलिक कथाकारों की ऐतिहासिक देन है। इस प्रकार लोक बोली का महत्व इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि लोक बोली ने वातावरण को मूर्त रूप प्रस्तुत किया।

पर्व-त्योहार– पर्व-त्योहार मानव-जीवन की संघर्ष-यात्रा में एक ऐसा पड़ाव है, जहाँ थोड़ा रुक कर वह मनोरंजन करता है, संघर्ष के लिए शक्ति प्राप्त करता है। यह भाव-भूमि मानव-मन की एक सत्य व्याख्या है। विश्व के किसी कोने में रहने वाले मनुष्य अपने-अपने ढंग से पर्व-त्योहार मनाते हैं। आंचलिक कथाकारों ने विशेष भू-भाग के पर्व-त्योहारों, मनोरंजन के साधनों व विशिष्ट लोक रंजकों का निरूपण अपने कथा-साहित्य मे किया है। ये उत्सव दो प्रकार के होते हैं– स्थानीय व राष्ट्रीय। परन्तु आंचलिक कथा-साहित्य में पहले प्रकार के पर्वों का बखूबी प्रयोग किया गया है। यहाँ के लोग स्थानीय पर्व को ही अपना इष्ट पर्व मान बैठे हैं तथा इन्हीं पर इन्हें गर्व है। 'मेला आँचल' में सर्वप्रथम बिहार के पूर्णिया जिले के त्योहारों के बारे में पता चलता है। यहाँ के लोग 'शिखा' तथा 'शामा चकेवा' में विशेष रुचि लेते हैं। इसके अलावा अनन्त पर्व, जाट-जाहिन खेलना, बधवा पर्व, रामनगर मेला, कोतहर मेला, सतुआनी पर्व तथा लालबाग मेला भी इनमें शक्ति व उत्साह व सञ्चार करते हैं। 'परती-परिकथा' में परानपुर गाँव की कुँवारी लड़कियाँ ब्याही, बेटा-बेटी वाली, अधेड़-बूढ़ी सब मिलकर शामा चकेवा का त्योहार मनाती हैं। इस पर्व पर महिलायें गीत गाती हैं–

''आ रे मानसा सरो... ओ बरा के झलमल पनियाँ...आ...

खचमच मोतिया भंडा...आ...र...।[4]

'मैला आँचल' में आया होली पर्व का एक लोकगीत देखें...

''नयना मिलानी करी ले रे सैया नयना मिलानी करी ले।

अब की बेर हम नैहर रैहबो जो दिल चाहे से करी ले।।[5]

उ०प्र० के करैता गाँव के पर्व-त्योहार तो अतुलनीय ही हैं। पूरा साल ही धार्मिक पर्वों व त्योहारों में बीत जाता है। मेले का विशेष महत्व है क्योंकि मेला सार्वजनिक बनाव-श्र्यृंगार दिखाने का ऐसा स्टेज है, जिसमें क्षेत्र की ज्यादतर विशेषताएँ उभरकर साने आती हैं।

आर्थिक भार व घोर गरीबी के कारण मेलों व पर्वों का उतना उल्लासपूर्ण वातावरण अब नहीं रह गया है। अब के मेले व त्योहार मात्र फर्ज अदायगी बनकर रह गये हैं। दूसरा पहलू यह है कि नौजवान इस सामूहिक हर्ष-आनन्द के मामने को व्यर्थ समझते हैं। रेणु के शब्दों में– ''नये नौजवानों की नजर में इस तरह के पर्व त्योहार, रूढ़िग्रस्त समाज की बेवकूफी के उदाहरण मात्र है। शामा चकेवा, करमा-धरमा, हाक-डाक इत्यादि पर्वों को बन्द करना होगा।''[6]

पर्वों-त्योहारों के अलावा लोक-साहित्य लोकजीवन के अभिन्न अंग हैं। इसके अन्तर्गत लोकगीत, लोकोक्तियाँ, मुहावरे, लोक नाट्य तथा लोकनृत्य इत्यादि आते हैं। अंचल की पृष्ठभूमि में ये तत्व संस्कृति के आधार-स्तम्भ हैं। इस आंचलिक तत्वों से

---

4. 'मैला आँचल'– रेणु।
5. 'मैला आँचल'– रेणु।
6. 'परती-परिकथा' रेणु।

भूखण्ड विशेष की एक अलग पहचान बनती है। नृत्य को ही उदाहरण के तौर पर लें तो स्पष्ट हो जाता है कि नृत्य लगभग हर समाज में होता है। परन्तु नृत्य के साथ गीत, नाज-नखरे, वेश-भूषा, हाव-भाव, अंग-प्रदर्शन व शैली हर क्षेत्र में अलग-अलग है। इसी प्रकार बोली, मुहावरे, गीत कड़ियाँ, टेर व पुकार की अपनी विशिष्ट पहचान है। ये सभी तत्व मिलकर आंचलिकता को जन्म देते हैं। इस सम्बन्ध में लोकगीतों का महत्व निरूपित करते हुए डॉ० भागीरथ मिश्र ने लिखा है– "किसी भी जाति के लोकगीत उसकी संस्कृति के धरोहर हैं। लोकगीतो में प्राप्त संस्कृति के द्वारा हमारा जातीय बल, वैभव, आकांक्षाएँ, लालसायें, हृदय की उदारता व करुणा, अत्याचार पर असन्तोष की भावना, प्रकृति के साथ जीवन का लगाव आदि भलीभाँति स्पष्ट होते हैं।"[7]

रेणु ने "मैला ऑचल" व 'परती परिकथा' तथा शिव प्रसाद सिंह 'अलग-अलग वैतरणी' और आंचलिक कथाकारों, लोकगीतों के माध्यम से पात्रों की गूढ़ मनः स्थितियों व वातावरण को सजीवता प्रदान की है।

'मैला-आँचल' में इन्द्र को रिझाने के लिए महिलाओं का जाट-जट्टिन खेलते हुए एक गीत सुनिए–

सुनरी हमार जटिनियाँ हो बाबू जी

पतरी बाँस के छोकिनिया हो बाबी जी...[8]

उ०प्र० तथा बिहार के अधिकतर भागों में लोकगीतों का गाया जाना लगभग हर माह, हर पर्व तथा हर परिस्थितियों में पाया जाता है। यहाँ तक कि मृत्यु पर भी गीत 'कढ़ाकर' गाया या रोया जाता है। इन लोकगीतों में नई फसल के समय, ऋतु, वियोगावस्था, विवाह, पर्व-त्योहार, भक्ति राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत तथा नाटक,

---

7. 'अध्ययन' - डॉ० भगीरथ मिश्र पृष्ठ-118

8. मैला आँचल–रेणु

नौटंकी के समय के दृश्य पाये जाते हैं। कभी-कभी ये लोकगीत प्रसिद्ध फिल्मी गीतों की धुनों पर भी सुने जाते हैं। मरणोपरान्त गीत भी आंचलिक स्वर लिए रहते हैं।

विवाह मानव-जीवन का एक संवेदनशील मोड़ होता है। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीत हृदय के तारों को छूते हुए चले जाते हैं। इन गीतों में पग-पग पर मोड़ आता है। नेहछू के समय, नहाते समय, पालकी पर बैठते समय, दुलहन विदा होते समय तथा माँग भरते हुए आदि दृश्यों के अलग-अलक वैवाहिक गीत अंचलों में यहाँ की लोकसंस्कृति पर प्रकाश डालते हैं।

लोकगीतों के संसार में यदि गोते लगाना चाहें तो आइए चलें उन अंचलों की ओर जहाँ महिलाएँ, किशोरियाँ व बूढ़ी औरतें झूम-झूमकर अधखुले अंगों को धूप व सर्दी में हँसिया, खुरपी, कुदाल लिए श्रम के पसीने से तर-ब-तर गाये जा रही हैं। दूसरी ओर नौजवानों की टोली 'भारत में आयल सुराज' बच्चों को दूध पिलाती माताएँ दुलराकर आरे आवा....पारे आवा.... मृत्यु पर कारन कर रोती हुई, डोली को ले जाते हुए कहार लोग 'हय... हय... इत्यादि तरह के गीत भी गाये जा रहे हैं। गाँवों में आल्हा-ऊदल का गीत, नौटंकी का फूहड़ गीत..... गवना लेइजा बालमा.... इत्यादि भी गाया जाता है।

हिन्दी के आँचलिक कथा-साहित्य में लोक कथाओं, लोक नाटकों, लोक नृत्यों व लोकोक्तियाँ का महत्वपूर्ण स्थान है। रेणु वितचिर 'मैला आँचल' की लोक कथाओं के सम्बन्ध में डा० शान्ति स्वरूप गुप्त का कथन है– "लोक कथाओं के साथ भारतीय ग्रामीण समाज की युगीन ट्रेजडी को रेणु ने इतनी कलात्मकता के साथ गूँथ दिया है कि इस उपन्यास का शिल्प महाकाव्यात्मक हो उठा है।"[9]

'मैला आँचल' के तान्त्रिमा टोली में सुरंगा सदाब्रिज की लोक कथा लोरिक बज्जेमान, राना डूबीघाट, सुन्दरि नैका तथा दुलारी लचिया ('अलग-अलग वैतरणी')

---

9. हिन्दी उपन्यास; महाकाव्य के स्वर–डॉ० शान्ति स्वरूप गुप्त।

इत्यादि विविध प्रकार की लोक कथाएँ हैं, जिसमें वहाँ के जनजीवन की ज्ञात-अज्ञात बहुमूल्य सांस्कृतिक गतिविधियों की धड़कन समाहित है।

लोक नाटकों का भी आंचलिक कथा-साहित्य में प्रचुर उदाहरण पाया जाता है। जितेन्द्र के द्वारा आयोजित पंचचूक, विदापत नाच व आल्हा-ऊदल की लड़ाई वाली नौटंकी के दृश्य भी यत्र-तत्र देखने को मिलते हैं। नाटकों के माध्यम से कथाकारों ने विकास के एक नये परिदृश्य का उद्घाटन किया है तथा साथ ही अंचल विशेष के जन-जीवन के मनोरंजन की मनःस्थिति का परिचय दिया है। इन नाटकों व नौटंकियों से वे मनोरंजन भी करते हैं।

लोकोक्तियाँ– किसी भी समाज की वे यथार्थ स्थापनायें होती हैं, जिनके माध्यम से दैनंदिन के कार्य प्रभावित होते हैं। इनमें आपसी व्यवहार, खेती-बारी, नैतिकता, आदर्श व अन्य बहुविध सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों की कसौटी पायी जाती है। कुछ प्रमुख लोकोक्तियाँ विचारणीय हैं, जो इस प्रकार हैं–

1. ''बारह बरस का पुत्ता नहीं तो कुत्ता''[10]
2. ''जिसकी कोठी में दाने, उसके मूरख भी सयाने''[11]
3. ''बामन नाचे तेली तमाशा देखे''[12]
4. ''बड़ बतियाये, चमार तलियाये''[13]
5. ''घाट बदरिया का व्यवहार करो बेगारी उतारो पार''[14]

---

10. 'बबूल'– विवेकीय राय।
11. 'मढ़ी का दिया'– गुरूदयाल सिंह।
12. 'परती-परिकथा'– रेणु
13. 'अलग-अलग वैतरणी'– शिव प्रसाद सिंह
14. 'मैला आँचल'– रेणु।

इसके अतिरिक्त आञ्चलिक कथा-साहित्य में आये लोकोक्तियों का तेवर इतना तीव्र है कि वे सीधे हृदय पर चोट करती हैं। उनका क्षेत्र भी विस्तृत है, जैसे कि–शिक्षा की स्थिति, भाग्यवाद, बेगार-प्रथा, शरीर महत्ता, यौन सम्बन्धी तथा श्रम की महत्ता।

इसके अतिरिक्त सांस्कृतिक परिदृश्य में जादू-टोना, अन्धविश्वास, कामुकता, रूढ़िवादिता, रहन-सहन, खान-पान, पहनावा, मनोग्रन्थियाँ, संस्कार व वैचारिक-व्यावहारिक रूप में इतना बहुविध हैं कि सहसा उन्हें पहचानना एक कठिन समस्या हो जाती है। आंचलिक साहित्यकारों–उदयशंकर भट्ट, नागार्जुन, रेणु, शिव प्रसाद सिंह, भैरव प्रसाद गुप्त, राजेन्द्र अवस्थी, रामदरश मिश्र व रांगेय राघव ने अपने-अपने कथा-साहित्य में संस्कृति के इन पक्षों पर विशेष जोर दिया है।

भारतीय समाज में विशेषकर आंचलिक क्षेत्रों में वेश-भूषा में इतनी भिन्नता व विविधता पाई जाती है कि यही उनकी लोक जीवन-शैली की पहचान कही जाती है। आभूषणों का शौक स्त्रियों की एक भारी कमजोरी है। स्त्रियों को आभूषण से गहरा प्रेम संसार की किसी भी मूल्यवान वस्तु से ज्यादा होता है। लगभग हर समाज में वे परिस्थिति के अनुसार अनन्त, कनपासा, डयरिंग, झुमका, कंठसर, कनफूल, कँगना, सिकरी, झँझनी, बाजू, बुलाकी तथा बुनाला पहनती हैं। पुरुण साफा, धोती, हाथ दस्ताना, मोजा, अँगूठी तथा तरह-तरह के पहनावे पहनते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आँचलिक कथा-साहित्य सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत समृद्ध है। कथा-साहित्य में वर्णित विविध प्रदेशों की छोटी अज्ञात व अपरिचित भूमि पर बसे लोगों के समाज में विशेष रूप से महिलाओं की वेश-भूषा, आभूषण एवं सौन्दर्य-प्रसाधन सभ्य समाज या नगरीय सभ्यता से कोसों दूर है। यही भिन्नता सचमुच ग्रामीण संस्कृति का एक अनोखा परिचय है। यद्यपि कि बाह्य सम्पर्क से इसमें अब कुछ परिवर्तन हो रहा है, लेकिन उनकी मनचाही वस्तुओं से आज भी उन्हें दूर नहीं किया जा सकता। ध्यान देने योग्य बात तो यह है कि ये सारे सौन्दर्य-प्रसाधन इनकी सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक मर्यादा से जुड़े हुए हैं। 'गोदना गुदवाना' भारतीय ग्रामीण नारियों

का परिचित शौक रहा है। 'जंगल के फूल' नामक उपन्यास में माँ अपनी बेटी को गोदने का महत्व बताती है– 'मत रो बेटी, ये गुदने तेरी सुन्दरता में चार चाँद लगायेंगे। अच्छा प्रीतम, सबसे प्यार और नरक में भी ये गुदने तेरी रक्षा करेंगे।'[15]

इसी प्रकार खान-पान, रहन-सहन तथा आचार-विचार में इन आंचलिक लोगों में एक विशिष्टता पाई जाती है, जो इन्हें अन्य लोगों से भिन्न रखती है। इसी तरह आंचलिक लोक जीवन शैली में सभा-सोसायटी, टोलाबन्दी, हास-परिहास, वाद यन्त्र, परिवहन, वनस्पतियाँ, फिल्मी गीतों की धुनें, तुकबन्दियाँ, किस्से, उक्तियाँ, उद्धरण-ग्रन्थ, स्थानीय शब्द, बिगड़े शब्द, स्वयंभू शब्द, विदेशी शब्द, प्रिय शब्द इत्यादि बहुत सी ऐसी विशेषताएँ हैं कि इन पर महाकाव्यो की रचना की जा सकती है। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि यहाँ की जीवन-शैली इतनी जटिल व संश्लिष्ट है कि सेकर उठने के बाद और सोने के पहले तक के सारे व्यहार व्यापक भाव-भूति वाले प्रतीत होते हैं। अनुभव से मैने यह जाना है कि आँचलिकता का निर्माण किसी एक पक्ष को लेकर कोई भी शोध-कर्ता नहीं कर सकता। इनके जीवन के इतने विविध पक्ष हैं कि आंचलिकता जैसे उनकी अपनी ही पहचान है।

समसामायिक ग्रामीण जन-जीवन में बदलाव की एक लहर सी चल पड़ी है, जिसने सांस्कृतिक रूप को बहुलांश में परिवर्तित किया है। यह कहना अनुचित न होगा कि इसी बदलती हुई मानसिकता का सम्प्रेषण ही आंचलिक कथा-साहित्य के उद्‌भव का कारण है। इस बदलाव से ऐसा नहीं कि विध्वंस हो रहा है, बल्कि निर्माण की एक प्रक्रिया भीतर-भीतर चल रही है। टूटने में ही निर्माण का अर्थ समाहित है। सांस्कृतिक मूल्यों के संहार व निर्माण के सम्बन्ध में डॉ० नित्यानंद तिवारी लिखते हैं– ''गाँव टूट रहा है, मूल्य टूट रहे हैं, सत्य टूट रहा है कोई किसी का नहीं... सब अकेले हैं... मगर नहीं... एक नया गाँव बन भी रहा है, किसानों-मजदूरों का।[16]

---

15. 'जंगल के फूल' – राजेन्द्र अवस्थी।

16. संचेतना– डा० नित्यानंद तिवारी

संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि आंचलिक साहित्य में वर्णित संस्कृति की अपनी विशिष्ट पहचान है। साहित्य में अवतरित लोक संस्कृति के विविध उपादान सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्यों के परम्परागत व परिवर्तित रूप के आधार पर कहा जा सकता है कि अंचल की संस्कृति बहुत पुरातन व समृद्ध है। इसका प्रतिबिम्बन कर आंचलिक कथाकारों ने राष्ट्र की सांस्कृतिक विरासत की एक और कड़ी का अन्वेषण कर साहित्य में ऐतिहासिक पुनरीक्षण का मार्ग प्रशस्त किया।

शिल्प तत्त्व

शिल्प किसी भी रचना का वह सम्पूर्ण ढाँचा है, जिसमें बाह्य व आन्तरिक सम्प्रेषण सौन्दर्य रचना को कालजयी बनाता है। अर्थात् रचना का शिल्प जितना ही सुगठित, सुनियोजित व मर्यादित होगी, रचना में उतनी ही प्रौढ़ता व विशालता समाहित होती है।

शिल्प का अर्थ होता है– ढाँचा, जिसके माध्यम से कलाकार अपनी अनुभूतियों व मनःस्थितियों के मूर्त रूप प्रदान करता है। साहित्य में शिल्प का स्वरूप उस रचना-प्रक्रिया का नाम है, जिसके माध्यम से साहित्यकार अपनी अनुभूतियों को इस प्रकार से संप्रेषित करता है कि वे संवेदनीय बन जाय। इस शिल्प को माध्यम बनाकर साहित्यकार मनःस्थितियों, संवेदनाओं व उद्देश्यों को साहित्य में अवतरित करता है। वृहद् हिन्दी कोष में शिल्प का अर्थ इस प्रकार दिया गया– ''किसी चीज के बनाये या रचने का ढंग अथवा तरीका किसी वस्तु के जो-जो विधियाँ अथवा प्रक्रियायें होती हैं, उनके समुच्चय को शिल्प विधि नाम से पुकारा गया है।''[17]

शिल्प का कोशगत अर्थ होता है–कलात्मक सिद्धि या यान्त्रिक कुशलता।[18]

---

17. वृहत् हिन्दी कोश– ज्ञानमण्डल लि० बनारस।

18. आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी वाल्यूम–XI–136

किन्तु साहित्य में शिल्प शब्द का अभिप्राय कोशगत अर्थ से कुछ भिन्न होता है। कोशगत अर्थ एक सामान्य सा लक्षण प्रस्तुत करता है, जबकि साहित्य में शब्दों का अर्थ व्यञ्जना व लक्षणा से बहुत अर्थों में परिवर्तित होता रहता है। डॉ० त्रिभुवन सिह ने शिल्प के सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त किया है–'शिल्प अथवा रचना-विधि का सम्बन्ध उस परिणिति से है जो कृति को सभी रचना विधायक तत्वो के सहयोग से कृतिकार की प्रतिभा द्वारा प्राप्त होती है।''[19]

वस्तुतः शिल्पविधि का जो प्रयोग काष्ठ, मिट्टी, बर्तन व रंग का सम्मिलन कर कलाकार एक मूर्ति, चित्र या दीवार का निर्माण करता है, साहित्य में वही प्रयोग सर्जनात्मकता या स्वानुभूतियों का प्रकटीकरण भाव-भंगिमा, संवाद, चरित्र-चित्रण व कथा की बुनावट के माध्यम से किया जाता है, इसे ही साहित्यिक शिल्प का नाम दिया जा सकता है। इस सम्बन्ध में राजेन्द्र यादव के विचार द्रष्टव्य हैं–''जिन संवेदना चित्रों से लेखक अपनी अनूभूतियों को पाता है, उन्हें अधिक युक्तिपूर्ण ढंग से संयोजित कर इसको पाता है, उन्हें अधिक युक्तिपूर्ण ढंग से संयोजित कर इस प्रकार संप्रेषित करता है कि वे अधिक सम्प्रेषणीय बन जाय और इसके लिए लेखक को शिल्प का सहारा लेना पड़ता है।''[20]

साहित्य में शिल्प का प्रयोग एक अनिवार्य विवशता है। जिस प्रकार शहद से मधुरता अलग नहीं की जा सकती, उसी प्रकार कथा से शिल्प को अलग नहीं किया जा सकता। शिल्प के वैशिष्ट्य के ही कारण साहित्य में विविध विधाओं का प्रणयन नित-नित होता रहता है–नाटक, कहानी, उपन्यास, खण्डकाव्य, महाकाव्य व गीति काव्य इत्यादि। अतः साहित्य के प्रकारों का निर्धारण शिल्प के माध्यम से ही होने के कारण पाठकों के लिए इसकी अनिवार्यता सर्वाधिक बढ़ जाती है।''[21]

19. हिन्दी उपन्यास; शिल्प और प्रयोग – डॉ० त्रिभुवन सिंह।
20. एक दुनिया; समानान्तर (भूमिका) – राजेन्द्र यादव।
21. हिन्दी उपन्यास; शिल्प और प्रयोग– डॉ० त्रिभुवन सिंह।

शिल्प के सम्बन्ध में समग्रतः यह कहा जा सकता है कि शिल्प उस रचना प्रक्रिया का द्योतक है, जिसके माध्यम से साहित्यकार अपनी कल्पनाओं व अनुभूतियों को एक व्यापक साहित्यिक धरातल पर उकेरता है। शिल्प को साहित्यिक रूप में पारिभाषित करते हुए इसकी कथागत प्रक्रिया पर विचार करना हमारा प्रमुख उद्देश्य है। साहित्य की विशिष्ट व अनिवार्य विधा उपन्यास व कहानी के स्तर पर शिल्प-विधि की व्याख्या हम इस प्रकार कर सकते हैं।

किसी भी उपन्यास-निर्माण प्रक्रिया में शिल्प वह साधन है, जिससे रचनाकार विषय का प्रतिपादन, परीक्षण व विस्तार करता है। विषय-वस्तु में से अर्थ को निकालकर उसे संवेद्य अभिव्यक्ति प्रदान करता है। चूँकि उपन्यास विशाल फलक पर निर्मित होता है। अतः स्वाभाविक रूप से शिल्प के सभी पहलुओं को काफी गहराई के साथ प्रयोग में लाजाय जाता है। कुछ विद्वान तो शिल्प को ही सब कुछ मान बैठते हैं, लेकिन यह निश्चित है कि रचना से शिल्प अलग नहीं। इस सम्बन्ध में डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव का कथन द्रष्टव्य है– ''शिल्पविधि रचना-प्रक्रिया का एक पक्ष है। रचना का वक्तव्य शिल्प के भीतर से व्यक्त होता है, इसके द्वारा सम्प्रेषित होता है।''[22]

शिल्प विधि दो रूपों में रचना-प्रक्रिया के भीतर दिखाई देती है–आन्तरिक व बाह्य। कुछ विद्वानों ने रचना में आन्तरिक प्रेरणा पर जोर दिया है तो कुछ विद्वानों ने रचना के प्रस्तुतीकरण के बाह्य स्वरूप पर विशेष बल दिया है। आन्तरिक प्रक्रिया का सम्बन्ध लेखक की वैचारिक, अनुभूतिपरक, कल्पनाशील भावना प्रधान, अवलोकन बिन्दु, चिन्तन या दृष्टिकोण से प्रभावित रूपाकार से है, जबकि बाह्य पक्ष अभिव्यक्ति के समस्त साधनों से सम्बन्ध रखता है। साहित्यकार का आन्तरिक पक्ष रचना की सम्पूर्ण भागवत् व चिन्तनशील प्रक्रिया से सम्बन्ध होता है, वहीं बाह्य पक्ष सम्प्रेषण के माध्यम पर विशेष जोर देता है।

---

22. हिन्दी कहानी की रचना-प्रक्रिया – परमानन्द श्रीवास्तव।

''कहानी या उपन्यास की शिल्पविधि का विकास लेखक की प्रयोग बुद्धि पर इतना निर्भर नहीं करता, जितना उसके मैटर की आन्तरिक उपेक्षा पर।''[23]

डॉ० नामवर सिंह भी साहित्य के रूप (शिल्प) को केवल रूप नहीं मानते बल्कि जीवन को समझने के लिए भिन्न-भिन्न माध्यम मानते हैं।[24]

वस्तुतः वर्ण्य-विषय में रुचि न रखने के फलस्वरूप ही कलाकार शिल्प से अभिभूत होता है.... उसमें डूब जाता है।

दूसरी ओर बाह्य रूप विधान को ही महत्व देने वाले विद्वान् कहते हैं कि उपन्यास के रूपाकार का विषयवस्तु के बिना कोई अस्तित्व ही नहीं है और उसकी विषयवस्तु विचार और वस्तु के अतिरिक्त और क्या है। उसी को तो रूपाकार प्रदान किया जाता है। शिल्पकत संगठनात्मक निपुणता के लिए विषय-वस्तु की समृद्धि भी आवश्यक है।

ऊपर आये इन अभी विद्वानों के विचारों का गहन अध्ययन व विश्लेषण करने पर शिल्प के आन्तरिक व बाह्य स्वरूप की महत्ता पर एक सर्वमान्य हल निकालना एक दुरूह कार्य है। लेकिन इतना तो सर्वमान्य है कि शिल्प किसी भी रचना के आन्तरिक उद्वेग को रूप देने वाला एक ऐसा ढाँचा है, जिस पर साहित्य की मजबूत दीवार खड़ी की जा सकती है। दूसरे शब्दों में शिल्प आन्तरिक व बाह्य ढाँचे के रूप में एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

शिल्प-निर्धारण के मार्ग में एक प्रश्न और उठता है शैली का 'शैली' अंग्रेजी के Style का हिन्दी रूपान्तर है। शिल्प व शैली में भ्रम पैदा हो जाता है, इसलिए थोड़ा सा इस पर विचार कर लें।

'शैली' उस रचना-प्रक्रिया का नाम है, जिसमें किसी लेखक के व्यक्तित्व की

---

23. कहानी; नये सन्दर्भ की खोज – मोहन राकेश।

24. कहानी, नई कहानी – डा० नामवर सिंह।

स्पष्ट छाप दिखाई देती है। शैली किसी कला या कृति की उस प्रवृत्ति की द्योतक होती है, जिसके कारण वह अपने ही समान की अन्य रचना से भिन्न दिखाई देती है। शैली विशिष्ट प्रणाली, ढंग या तरीके को व्यञ्जित करती है। वस्तुतः शैली शिल्प का ही भाग है।

इस प्रकार उपर्युक्त सभी पक्षों व मतों का विश्लेषण करने पर 'शिल्प' का जो स्वरूप हमारे सामने आता है, उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि शिल्प किसी कलाकार के मनोभावों व अनुभूतियों को प्रस्तुत करने का वह आन्तरिक व बाह्य माध्यम है जो अलग-अलग बिखरे हुए तत्वों को समन्वित कर संयोजित कर रचना का उद्देश्यच निर्धारित करता है। इस सन्दर्भ में किसी भी रचना के शिल्प को हम विविध उपादानों में विभक्त कर सकते हैं–

1. कथावस्तु;
2. चरित्र-चित्रण;
3. भाषा-शैली;
4. संवाद;
5. देशकाल;
6. उद्देश्य;

1. कथावस्तु– कथावस्तु किसी कहानी या उपन्यास का प्राण-तत्व है। इसी पर सम्पूर्ण रचना की अर्थवत्ता टिकी होती है। इसे हम विविध नामों–कहानी, वस्तु, कथ्य, कथावृत्त अथवा कथा–से जानते हैं। आंचलिक कथा-साहित्य में कथावस्तु का आधार कोई आदर्श पात्र न होकर सीमित स्थान, अंचल-विशेष का सम्पूर्ण जीवन अथवा जाति विशेष की जीवनगत समस्यायें होती हैं। अंचल विशेष की केन्द्रिकता के कारण कथावस्तु के शिल्प में जो अन्तर दिखाई पड़ता है, उसके पीछे लेखक का यह मंतव्य होता है कि

अंचल विशेष की सीमित समग्रता का सम्पूर्ण विवेचन है। कथानक में बिखराव तथा मंथर गतिशीलता तथा एकसूक्षता का अभाव जैसी विशेषताएँ आंचलिक कथावस्तु की ही हैं। इस रूप में प्रायः आंचलिक कथा-साहित्य का कथांचल नगरों की अपेक्षा किसी अपरिचित भूखण्डों एवं क्षेत्र-विशेष से सम्बद्ध होता है। साधारण गाँवों अथवा अपरिचित भूखण्डों को ही कथा का मुख्य केन्द्र बनाया जाता है। क्षेत्र विशेष का रंग आंचलिक उपन्यासों के सिर पर चढ़कर बोलता है, कथानक भी उससे बच नहीं सकता। कथावस्तु के अनुसार उस अंचल के समस्त जीवधारियों, मानव प्राणियों में भी अपनी अलग एक मनःस्थिति होती है अथवा एक विशिष्ट जुड़ा रहता है जो किसी अन्य भूमिभाग में उगे हुए फूल-पत्तों और प्राणियों को गंध से भिन्न होने के कारण अपनी एक अलग विशिष्टता रखती है। जिन कथाओं में कथा का सम्बन्ध नगर या नगर क्षेत्र से है, उनमें भी गाँव से आये हुए पात्रों द्वारा स्थानीय रंगों और प्रादेशिक शब्दों का रंग पसारा जाता है। आंचलिक कथावस्तु में वहाँ की विशिष्ट संस्कृति जीवन-प्रणाली व प्राकृतिक परिवेश गहरे रूप में समाया रहता है, जिसके कारण अन्य साहित्य से वह पूरी तरह भिन्न होता है। 'अलग-अलग वैतरणी' में करैता गाँव 'परती-परिकथा' में परानपुर गाँव और 'मैला आँचल' में मेरीगंज गाँव इस इस विशिष्ट कथावस्तु का आधार है।

आंचलिक कथावस्तु के विश्लेषण से हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं–

1. कथावस्तु का गठन विशुद्ध आंचलिक समस्या पर है।

2. ये समस्याएँ विशिष्ट भौगोलिक व प्राकृतिक परिस्थितियों की देन हैं।

3. इन कथाओं में प्रायः भूमि सम्बन्धी, आर्थिक, सामाजिक व नैतिक समस्याएँ प्रमुख हैं।

4. भोगे हुए यथार्थ का सम्पूर्ण चित्रण।

2. चरित्र-चित्रण– डॉ० माखन लाल शर्मा के इस कथन से हम पूर्णतया सहमत

हैं कि ''जैसे विभिन्न मिट्टी के प्रकारों में लगाये गये पौधों में भिन्न-भिन्न सौन्दर्य व सुगन्ध होती है, वैसे ही नये व आकर्षक पात्र हमें आंचलिक कथा-साहित्य में देखने को मिलते हैं।[25] आंचलिक कथा-साहित्य। में ऐसे पात्रों को स्थान दिया जाता है कि जो लोक संस्कृति के अधिकतम नजदीक व प्रतिनिधि माने जा सकते हैं। इन कथनों में यथार्थ का सम्यक् चित्रण किया गया है। आंचलिक कथाकारों ने अंचल विशेष के भू-भाग के ही उन चरित्रों को कथा में स्थान दिया है, जिन्होंने जिन्दगी के गहरे अर्थों को भले ही न समझा हो, परन्तु उसे भोगा अवश्य है। लोकगीत, लोकनृत्य, पर्व, उत्सव, त्योहार, बोली, गालियाँ एवं अन्य लोकतत्व इन सबने आंचलिक कथा-साहित्य में चरित्रगत विशेषताओं को समेटा है। इन चरित्रों की सहज उपस्थिति आंचलिकता को रूपायित करने के लिये पर्याप्त है। यद्यपि कि ये चरित्र अलगअलग रूपों में कथा में आते हैं, इनके ढंग व सोच अलग-अलग किस्म के हैं, पर प्रवृत्तिगत विशेषता लगभग एक जैसी है। गाँवों में अत्याचार, शोषण और सामंती प्रवृत्तिय।ओं के दिखाने के लिए 'अलग-अलग वैतरणी' के जैपाल सिंह, 'पानी के प्राचीन' के गजेन्द्र बाबू, 'जल टूटता हुआ' के महीप सिंह जैसे चरित्रों की अवतारणा की गई है। इसी प्रकार के शोषक शोषित, उपेक्षित, बुद्धिमान व सबल चरित्रों की इन कथाओं में भरमार रहती है। इन चरित्रों की मुख्य विशेषता यह होती है कि ये अपने आप में विशिष्ट सांस्कृतिक गंध लिये रहते हैं। जो बराबर मुग्ध किये जाते हैं।

आंचलिक कथा-साहित्य में पात्रों की संख्या अधिक होती है। इसका मुख्य कारण है– आंचलिक जीवन का कोई भी पक्ष अनछुआ, अनदेखा न रह जाय। अंचल की विविधता को रूप देने के लिए लेखक हर कोण से चरित्रों की सृष्टि करता है।

कुछ पात्र आर्थिक क्षेत्र से जुड़े होते हैं तो कुछ नैतिक, मनोवैज्ञानिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक पक्षों से कुछ कुंठाग्रस्तता से तो कुछ यौन भ्रष्टाचार एवं रूढ़िवादी परम्पराओं से। ये पात्र वास्तव में जीवन के यथार्थ भोग रहे हैं। 'मैला आँचल' और

25. हिन्दी उपन्यास, सिद्धान्त व विवेचन – महेन्द्र एवं माखन लाल शर्मा।

'अलग-अलग वैतरणी' के पात्रों में सर्वाधिक वैयक्तिक एवं वर्गीय चरित्रों का कलात्मक रूप प्रकट हुआ है।

इन चरित्रों में वर्गगत विशेषताएँ भी पाई जाती हैं। कुछ चरित्र विशुद्ध परम्पराओं से चिपके हैं तो कुछ विशुद्ध वैज्ञानिक एवं प्रगतिशील विचारों के धनी भी हैं। 'अलग-अलग वैतरणी' में विपिन का चरित्र परंपरागत सामंतीय पात्रों से सर्वथा भिन्न है। इसीलिए वह वर्ग चरित्र या टाइपम होकर अपने व्यक्तित्व की अलग छाप छोड़ता है।

इन चरित्रों का सृजन आंचलिक कथा-साहित्य में कई रूपों में किया गया है–

1. नाटकीय चरित्र-चित्रण विधि;

2. कथोपकथन द्वारा चरित्र-चित्रण;

3. समूह वार्ता;

4. पत्र और डायरी द्वारा (पुष्पी का विपिन के नाम पत्र, पटनहिया भाभी का कनिया के नाम पत्र, उमाकान्त पाठक का दीनदयाल के नाम पत्र इत्याती);

5. अंतरंग चरित्र-चित्रण।

आंचलिक कथा-साहित्य में सर्वप्रधान पात्र तो अंचल ही होता है तथा अन्य सभी पात्र उस अंचल-नायक के बहुआयामी चरित्र में पूर्णतः पर्यवसित हो जाने में ही उनकी सार्थकता है।

संवाद– आंचलिक कथा-साहित्य में आये चरित्रों के कथोपकथन ज्ञान की उहापोह से सर्वथा मुक्त होते हैं। उनके संवादों में विशेष भू-भाग की सोंधी महक, हास्य-रस की चाशनी के साथ-साथ व्यंग्य और कटाक्ष की फुहारें भी मिलती हैं। जहाँ ये संवाद आंचलिक चरित्रों की अशिक्षा और मूढ़ता को मूर्तिमंत करते हैं, वहीं उनकी हास्यप्रियता और मानवता को भी प्रकाशित करते हैं। उदाहरण के लिए ये पात्र पूँजीपतियों को बगुले

की तरह 'सादा' बताते हैं। कितना व्यंग्य है! वस्तुतः उन्हीं के शब्दों में वे 'बुद्धि के जहाज' होते हैं।

पात्रों के वार्तालाप में आंचालिक भाषा के शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों, गालियों एवं अन्य सारी वार्ता विधियों का प्रयोग होता है। संवाद छोटे ह ओं अथवा बड़े इनमें लोकभाषा का खुलकर प्रयोग किया गया है। छोटे-छोटे गीत के टुकड़े, फिल्मी मुखौटे, हल्का सा झगड़ा, गालियाँ, मुहावरे और अन्य देशज शब्द-वाक्य इन पात्रों द्वारा प्रयोग किये जाते हैं। स्थानीय बोली के शब्द हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू का लोकोच्चरित शब्द बार-बार आया है। कुछ विशिष्ट उपमाएँ द्रष्टव्य हैं--

कलेजा पुदीना के पत्ता बराबर होना, डागडरिन से पेट नहीं छुपता, महाभारत मच गया, हर जगह मजूर हैं, हर जगह हुजूर हैं इत्यादि।

आंचलिक कथा-साहित्य में पात्रों की संज्ञा बहुत अधिक होती है इसलिए सहज रूप में पात्रों की संवाद-शैली भी भिन्न-भिन्न होगी। अंचल ही एक विशिष्ट पात्र के रूप में उपस्थित होता है, जिसका व्यक्त रूप समूह पात्र होता है। 'मैला आँचल', 'अलग-अलग वैतरणी', परती--परिकथा, जुलूस, दीर्घतपा आदि उपन्यासों तथा रेणु, की कहानियों एवं शिव प्रसाद सिंह के कथा-साहित्य में जगह-जगह ये समूह संवाद-शैली देखी जा सकती है। इस संवाद-शैली की विशेष स्थिति यह है कि कौन किससे बात कर रहा है, कुछ पता नहीं, पर कथा का संवाद-सूत्र छूटने नहीं पाता। रामदरश मिश्र व मायानंद मिश्र के उपन्यासों में भी यह शैली द्रष्टव्य है। संवाद-शैली के कई रूप द्रष्टव्य हैं– आत्मवार्ता, पुनर्कथन वार्ता तथा गाली गलौज युक्त वार्ता।

भारत के पूर्वी प्रदेशों के विभिन्न अंचलों पर आधारित उपन्यासों के पात्रों की वार्तालाप की शैली पर पूर्वी हिन्दी की शैलीगत विशिष्टताएँ प्रभाव डालती हैं, वाक्यगठन में समान ध्वनि वाले शब्द युग्मों की प्रधानता दिखाई देती है– मेला-ठेला, गाछ बिरिछ, दवा-बिरो, घात-पात, खेती-बारी तथा माल-जाल आदि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आंचलिक कथा-साहित्य में चित्रित पात्रों की संवाद-शैली अत्यन्त 'लोकल कलर' लिए बुए है, जिनमें कही 'स्व' तो कहीं 'पर' तो कहीं 'समूहगत' वार्तालाप का स्वर सुनाई पड़ता है। यह स्वर रेणु, शिवप्रसाद सिंह, रामदरश मिश्र, राजेन्द्र अवस्थी, मायानंद मिश्र व नागार्जुन की कथाओं में ज्यादा सुनाई पड़ते हैं।

भाषा-शैली– भाषा विचारों की सर्वाधिक सशक्त व व्यावहारिक माध्यम है। आंचलिक कथाकारों ने अंचल विशेष की स्थानीय रंगत को उभारने के लिए जिन लोकतत्वों का विपुलता के साथ प्रयोग किया है। उनमें लोकभाषा, बोलियों, उपबोलियों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। लोक कहावतें, लोक मुहावरे, लोकगीत, लोककथाएँ एवं अन्य बहुत से लोकरूप, लोकभाषा का निर्माण करते हैं। इसलिए स्वाभाविक रूप से तत्सव शब्दों की अपेक्षा तद्‌भव शब्दों को स्वीकार करना पड़ा। महत्वपूर्ण बात यह है कि स्थिति व घटना के साथ-साथ शब्दों में सहज घुमाव व मरोड़ भी दिया गया है। विद्युत कड़-कड़, चर्रर...र गुड़ाम...गुड़म करती हुए गिरती है, बादल गड़गड़, गड्म...गुड्म कड़-कड़...कड़ करते हुए बरसते हैं और आँधी तूफान भड़भड़ करते हुए और अन्य भी प्रकृतिस्थ घटनाएँ अपने सहज सौन्दर्यबोध के साथ इन कथाओं को आगे खींचते हुए चलती हैं। वस्तुतः ध्वनि चित्र प्रत्येक आंचलिक कथा की एक सबसे बड़ी पहचान है विशेषकर रेणु के उपन्यासों व कहानियों में।

आंचलिक जीवन के विविध सन्दर्भों से जुड़े हुए पात्र अपने आपसी संवादों मे उस स्थान की बोली के विशिष्ट मुहावरों में ही अपने को सही ढंग से अभिव्यक्त कर अपनी विशिष्ट पहचान रख सके हैं। वही बात यदि दूसरी बोली में कहें तो कृत्रिमता आ जाएगी। उस आंचलिक बोली में ही उन की लोकसंस्कृति व लोक व्यवहार स्पष्ट हो सकता है। यही कारण है कि आंचलिक कथाकारों का भाषिक संरचना-शिल्प इतना विशिष्ट वैशिष्ट्य के कारण ही आंचलिक मान लिए जाते हैं। रेणु के 'दीर्घतपा', 'कितने चौराहे' अथवा बहुत से लेखकों की जो कथाएँ आंचलिक मान ली गई हैं, को केवल भाषिक आधार पर आंचलिक मान लिया जाता है, जबकि इनमें से अधिकतर उपन्यास

वातावरण की दृष्टि से आंचलिक नहीं हैं। वस्तुतः आंचलिक उपन्यासों व कहानियों में अंचल स्वयं बोलता है, कथा कहता है, इसलिए कथाकार की भाषा ही आंचलिक भाषा बन जाती है। रेणु के 'मैला आँचल' व 'परती परिकथा' की सफलता का यही रहस्य है।

आंचलिक कथा-साहित्य की विशेषता इस बात में है कि इनमें लोकभाषा के विविध उपादानों– लोकगीत, लोककथाएँ, लोकमुहावरे आदि का भाव-सम्प्रेषण के माध्यम के रूप मे साहित्य के स्तर पर विपुल प्रयोग किया गया है। परम्परागत संकीर्ण भाषागत शिल्प को तोड़कर आंचलिक जीवन-परिवेश की गतिशील प्रक्रिया को व्यक्त करने का कार्य इन कथाकारों ने सबसे पहले किया। यह ठीक है कि रेणु पूर्व नागार्जुन के 'रतिनाथ की चाची' (1948) तथा 'बलचनमा' (1952) उपन्यास प्रकाशित हो चुके थे, परन्तु इनमें स्थानीय बोली के अतिरिक्त कुछ नहीं है न तो आंचलिक शिल्प और न ही आंचलिक भाषा व गहरा रंग।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि अपनी विशिष्ट विषय-वस्तु, उद्देश्य तथा विषय की प्रकृति की अपरिहार्य अनिवार्यता के वशीभूत आंचलिक कथाकारों ने सम्पूर्ण कथात्मक शिल्प के क्षेत्र में जो नये-नये प्रयोग किये हैं, उनमें भाषा-संरचना के क्षेत्र में इनका प्रयोग अधिक क्रान्तिकारी, सार्थक व सफल रहा है।

देश-काल– कथा-साहित्य के प्रमुख तत्वों में देश-काल-वातावरण भी एक है। देश-काल-वातावरण ये तीनों शब्द कथा-साहित्य के परिप्रेक्ष्य में विशेष अर्थ-व्यञ्जक है। देश का अर्थ–स्थान विशेष जहाँ घटनाएँ घटती हैं। एक विशेष भू-भाग, जहाँ जीवन की समस्याएँ एवं संघर्ष बिखरे रहते हैं। काल उस समय विशेष बोधक है, जिसके प्रवाह में घटनाएँ घटती हैं। 'वातावरण' या परिवेश स्थान विशेष की भौगोलिक, प्राकृतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विशेषताओं से निर्मित एक अनुभूतिपरक तत्व जो वहाँ के जनजीवन को प्रभावित करता रहता है।

आंचलिक वातावरण के निर्माण में अनेक भौतिक-अभौतिक तत्वों का योगदान होता है, जिनमें मुख्य हैं-

क. भौगोलिक - प्राकृतिक परिवेश

ख. कालिक परिवेश

ग. सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश

भौगोलिक स्थिति का मनुष्य के रहन-सहन व आचार-व्यवहार पर सम्पूर्ण प्रभाव पड़ता है। पर्वतीय क्षेत्र, पठारी क्षेत्र, नदी के तट-क्षेत्र, सूखाग्रस्त क्षेत्र, बाढ़ग्रस्त क्षेत्र तथा अन्य बहुत से क्षेत्रों ने आंचलिक धड़कन को गहरे रूप में चित्रित किया है। आंचलिक कथाकार अंचल विशेष के भौगोलिक-प्राकृतिक वातावरण को विस्तार और सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवरणों के साथ चित्रित करता है। इस अंचल के निवासियों के जीवन पर यहाँ का वातावरण इतना प्रभावी है कि उसी से विशेष अंचल का निर्माण होता है।

'परती-परिकथा' अपने अंचल के बारे में स्वयं बोलता है-धूसर, वीरान, अन्तहीन प्रान्तर...पतिता भूमि, परती जमीन, बन्ध्या धरती, धरती नहीं, धरती की लाश जिस पर कफन की तरह फैली है.... बालूचरों की पंक्तियाँ...।[26] रेणु के दो उपन्यासों व अन्य लेखकों की रचनाओं में वर्णित भौगोलिक स्थिति इतनी विशिष्ट है कि हर बात में यहाँ का जीवन अन्य लोगों से भिन्न व बिखरा हुआ है। वस्तुतः अंचल की विशिष्टता दिखलाने के लिए और कथा तथा पात्रों के लिए उचित पृष्ठभूमि के निर्माण की दृष्टि से यह आवश्यक भी है। भौगोलिक व प्राकृतिक वातावरण का स्वरूप कहीं शब्द चित्रात्मक है तो कहीं ध्वनि चित्रात्मक, कहीं रूपात्मक है तो कहीं भावात्मक और काव्यात्मक।

---

26. परती परिकथा – रेणु।

कथा-साहित्य ऐसा गतिशील दर्पण है, जिसमें कालधारा में प्रवहमान गत्यात्मक जीवन प्रतिबिम्बित होता है। ऐसे गतिशील समय के साथ-साथ मनुष्य के रहन-सहन व विचारों में क्रमशः परिवर्तन होता जाता है। आंचलिक कथा में अंचल विशेष के जिस विशिष्ट वातावरण का प्रस्तुतीकरण होता है, वह विशिष्ट काल से संदर्भित भी होता है। प्रायः सभी आंचलिक उपन्यासों में स्वतंत्रता के बाद तेजी से बदलते हुए आंचलिक जीवन के वातावरण की ही सृष्टि हुई है। आंचलिक उपन्यास व कहानियों में जन-जीवन सम्बन्धी जिस सामाजिक वातावरण के निर्माण को लेखक सर्वाधिक महत्व देता है और जिसके कारण आंचलिक जीवन की सलारी विशिष्टाएँ प्रकट होकर आंचलिक उपन्यासों का विशिष्ट स्वरूप निर्धारित करती हैं, उस वातावरण में काल या समय का सन्दर्भ हर हालत में वर्तमान रहता है। इसीलिए आंचलिक उपन्यास व कहानियाँ अपने समय की सच्ची तसवीर ही नहीं, बहुत हद तक प्रामाणिक दस्तावेज भी होते हैं। 'बहती गंगा', 'मैला आँचल', 'परती-परिकथा', 'अलग-अलग वैतरणी' तथा 'बाबा' बटेसरनाथ' आदि अन्य आंचलिक उपन्यासों में समय-सापेक्ष चित्रण बड़ा ही मनोहारी है।

समसामयिक या आसन्न वर्तमान कालिक वातावरण के सबसे सुन्दर उदाहरण रेणु के उपन्यासों में मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि रेणु सम्पूर्ण कालिक परिवेश के साथ कैमरा व टेप रिकार्डर लेकर इस क्षेत्र में उतरे हैं। छोटी कालावधि के सम्पूर्ण घटनाक्रम को बड़ी सूक्ष्मता के साथ 'मैला आँचल' में चित्रित किया गया है। मेरे विचार से आंचलिक परिवेश गहरे रूप में समय-सापेक्ष होता है। इसी समय के चलते सामाजिक व सांस्कृतिक सन्दर्भ बदलते रहते हैं। इसी आधार पर आंचलिक सांस्कृतिक सन्दर्भ बदलते रहते हैं। इसी आधार पर आंचलिक कथा का निर्माण होता है और आंचलिक वातावरण तैयार होता है। उदाहरणतः 'मैला आँचल' में सन् 1946 से 48 तक के काल खण्ड में पूर्णिया जिले के उत्तरी भाग 'कोशी अंचल' क्षेत्र के सम्पूर्ण वातावरण–आर्थिक, राजनीति, सामाजिक व नैतिक आदि को–मेरीगंज की प्रतीकात्मकता के माध्यम से चित्रित किया गया है। इस प्रकार की विविध आंचलिक कथाएँ क्षेत्र विशेष के विशेष कालखण्ड

की स्थितियों का चित्रण करती हैं। इस सम्बन्ध में डॉ० जवाहर सिंह का कथन द्रष्टव्य है–''आंचलिक उपन्यास विधा स्वातन्त्र्योत्तरकाल के अंचलीय जनजीवन के यथार्थ-चित्रण के लिए प्रतिबद्ध नई लेखकीय और अनिवार्यतः समसामयिक वातावरण से ही सम्बद्ध है। अतः आंचलिक उपन्यासों का वातावरण मुख्यतः कालिक ही होता है।''[27]

उद्देश्य–आंचलिक कथाएँ सोद्देश्यता की सर्वथा हिमायती रचनाएँ हैं। आंचलिकता इनकी प्रवृत्तिगत विशेषता है तथा यथार्थवादिता इनकी दृष्टिकोणगत विशेषता। वस्तुतः आंचलिक की खोज यथार्थ की ओर व्यापक दृष्टिकोण व्यक्त करता है। इस सम्बन्ध में गोविन्द त्रिगुणायत कहते हैं– यथार्थवाद के नये क्षितिज खोजने के प्रयत्न के रूप में रेणु लिखित 'मैला आँचल' का बहुत बड़ा महत्व है। इनके द्वारा प्रस्तुत यथार्थ को आंचलिक यथार्थ की संज्ञा दी जाने लगी। आंचलिक उपन्यास का उद्देश्य है– विकास के नये क्षितिज से अपरिचित-जन को सामने लाना। स्थिर स्थान पर गतिमान समय में जीते हुए अंचल के व्यक्तिगत के समग्र पहलुओं को उद्घाटित करना।

अनचीन्हें, अनछुए, अल्पज्ञात, अपरिचित, धूल-धूसरित, ऊबड़-खाबड़ अंचल, अशिक्षा, अन्धविश्वास, दमघोंट गरीबी, अमानवीय शोषण, टूटते-बिखरते आपसी रिश्ते, यौन-विकृतियाँ, आधुनिकता व प्राचीनता की टकराहटें, लोकनृत्य में थिरकते पाँव तथा विविध तरह की अन्य लोक वस्तुएँ आंचलिक कथाकार की यात्रा में एकत्र किये गये इतने सारे तत्वों के संयोजन का कोई न कोई उद्देश्य तो होगा ही।

प्रारम्भ के कुछ आंचलिक कथा-साहित्य को छोड़कर स्वतंत्रता के पश्चात् प्रकाशित लगभग सभी आंचलिक उपन्यासों व कहानियों समाज-सापेक्ष उद्देश्य समाहित रहा है। नागार्जुन के उपन्यास व कहानियाँ जहाँ सामाजिक स्तर पर मार्क्सवादी जीवन-दर्शन तथा समाजवादी विचारों को उद्देश्य के रूप में अपनाती हैं, वहीं रेणु, शिव प्रसाद सिंह, राही मासूम रजा, केशव प्रसाद मिश्र, रामदरश मिश्र तथा मधुकर गंगाधर के

27. हिन्दी व आंचलिक उपन्यासो की शिल्प विधि – डॉ० जवाहर सिंह

उपन्यास व कहानियाँ लोक जीवन के अनछुए, अनचीन्हे व अपरिचित स्थानों के चित्रण को रूपायित करते हैं।

उद्देश्य प्रतिफलन की विविध स्थितियों को देखते हुए आंचलिक कथाओं के तीन वर्ग किये जा सकते हैं–

1. उद्देश्य प्रतिफलन स्पष्ट एवं उघड़े रूप में।

2. उद्देश्य प्रतिफलन सांकेतिक रूप में।

3. पाठकीय संवेदना पर उद्देश्य का प्रतिफलन छोड़ दिया जाता है।

प्रथम वर्ग मे वे आंचलिक साहित्य आते हैं जो राजनीतिक वादग्रस्तता व सैद्धान्तिक प्रतिबद्धता से सम्बद्ध होते हैं। इनमें नागार्जुन, रांगेय राघव, भैरव प्रसाद गुप्त तथा हिमांशु श्रीवास्तव की रचनाएँ आती हैं। इनके पात्र शोषक व शोषित दो वर्गों में बँटे होते हैं।

दूसरे वर्ग के साहित्यकारों में आंचलिकता की परिकल्पना प्रच्छन्न और अन्तर्भूत है। रेणु के 'परती-परिकथा' के सम्बन्ध में डॉ० धनंजय वर्मा का कथन है– ''परिकथा इस बात का उदाहरण है कि कोई लेखक कृति में कितना डूबकर लिख सकता है, पर साथ ही कितना तटस्थ और निरपेक्ष भी रह सकता है।'' इन कथाओं की राह से गुजरते हुए रेणु या अन्य आंचलिक कथाकारों के दृष्टिकोण से वस्तुस्थिति का अवलोकन करने के लिए पाठक कोई बाध्यता महसूस नहीं करता। अंत तक जाते-जाते पाठक लेखक से सहमति ही व्यक्त करता है। इसमें रेणु, शिव प्रसाद सिंह, तथा राही मासूम रजा के साहित्य को रखा जा सकता है।

तीसरे वर्ग के उपन्यासों व कहानियों में उद्देश्य अस्पष्ट सा रहता है। उद्देश्य किसी प्रत्याशा पर निर्भर रहता है। इस तरह के उपन्यासों का मूल स्वर है– जीवन-विकास की गतिशील धारा में मनुष्य के संघर्ष का महत्व। देवेन्द्र सत्यार्थी के उपन्यास 'ब्रह्मपुत्र'

तथा 'रथ के पहिए' इस वर्ग प्रमुख रचनाएँ हैं।

इन उपन्यासों में भले ही पारंपरिक पद्धति से किसी निश्चित उद्देश्य का प्रतिफलन न हुआ हो या विशिष्ट जीवन-दर्शन या लेखनीय प्रतिबद्धता का इजहार न हुआ तो, परन्तु इनकी उद्देश्यपरकता से इनकार नहीं किया जा सकता। उद्देश्य संकेतों के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त किया गया है कि वे अंचल-विशेष के वास्तविक दृष्टिकोण को सहजता-सरलता-सुगमता एवं सौम्यता प्रदान करते हैं। दूसरे वर्ग के साहित्यकारों का उद्देश्य प्रतिफलन-विश्लेषण ही हमारी खोज का विषय है। इसमें रेणु व शिव प्रसाद सिंह के उपन्यासों व कहानियों को हम विश्लेषित करेंगे।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि न तो रचना के मूलय-निर्धारण में उसके शिल्प-विधान को ही एकमात्र मानदंड मानने वाले कलावादी सिद्धान्त ही सर्वथा पूर्ण व समीचीन हैं और न केवल रचना के कथ्यको ही सब कुछ मान लेने वाले यथार्थवादी मानदण्ड ही। वस्तुतः उच्चकोटि की रचना के लिए विषय और शिस्प दोनों के समन्वय और एकरूपता की आवश्यकता है। विषय वही श्रेष्ठ समझा जाएगा, जहाँ वह सर्वथा उपयुक्त शिल्प-विधान के माध्यम से प्रकट हुआ है। विषय के साथ शिल्प की एकरूपता आवश्यक है। इस आधार पर यह स्पष्ट है कि रचना के मूल्य-निर्धारण में शिल्प की महत्वपूर्ण भूमिका है।

इस प्रकार आंचलिकता को हमने इसके दो रूपों–लोकतत्वगत व शिल्पगत–में विभाजित कर विश्लेषित किया। आंचलिक कथाओं की कथा, बोली, वातावरण, चरित्र और उद्देश्य में आंचलिकता के कौन-कौन से तत्व किस रूप में आते हैं, यह हुई वस्तुगत आंचलिकता तथा इन सभी तत्वों को आंचलिकता किस तरह प्रभावित करती है, इसे शिल्पगत आंचलिकता की संज्ञा दी जा सकती है।

वस्तुतः एक अंचल किसी दूसरे अंचल से अपनी जिन विशिष्टताओं के कारण भिन्न होता है, उनमें पहला है विशिष्ट प्राकृतिक अथवा भौगोलिक स्थिति। इन क्षेत्रों

में विकास की किरण छू तक नहीं गई होती। ये स्थान दूर नदी के तट, पहाड़ी क्षेत्र या नगर से दूर देश के एक कोने में। 'ब्रह्मपुत्र', 'सागर, लहरें और मनुष्य', 'अलग-अलग वैतरणी', मैला-आँचल' अथवा 'परती-परिकथा' की कथाएँ ऐसे ही अंचलों व्यथा कहती हैं। दूसरी बात इन अंचलों की कुछ परिवेशगत समस्याएँ होती हैं। यातायात की असुविधा, मार्ग दुर्गमता, आधुनिक जीवन की सुविधाओं का अभाव, शिक्षण संस्थाओं की कमी, बाढ़-सूखे व जमीन के कटाव की आपदा इत्यादि ऐसी परिवेश गत समस्याएँ हैं, जो क्षेत्र विशेष में पाई जाती हैं। यही कारण है कि ये सारी स्थितियाँ यहाँ की जिन्दगी को नरक बना देती हैं। 'पानी के प्राचीर', 'जल टूटता हुआ' में आर्थिक एवं सामाजिक पिछड़ेपन का कारण नदियों के कटाव को ही बताया गया है। 'वरुण के बेटे' व 'जंगल के फूल' में भी सामाजिक एवं आर्थिक पिछड़ेपन को ही दर्शाया गया है। यातायात की कमी तथा शिक्षा के अभाव के कारण रोग को वे भगवान का अभिशाप मानकर जादू-टोने तथा झाड़-फूँक के पीछे समय व शक्ति लगाते हैं। शिक्षितों व वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखने वालों को ये पागल समझते हैं। इन क्षेत्रों में आज भी सिनेमा, रेडियो व टेलीविजन अजनबी से हैं। यहाँ अब भी मनोरंजन के नाम पर लोकगीत, लोकनाट्य, रामलीला, कृष्ण लीला, खेल-तमाशे एवं नाच-गाने ही हैं। इन अंचलों की विविधता को सम्पूर्णता के साथ चित्रित करने के लिए अच्छा-बुरा सभी का उल्लेख साहित्यकारों ने किया है।

तीसरी बात है इन अंचलों की मुख्य समस्या घोर गरीबी और अशिक्षा, जो वस्तुतः इनके परिवेशगत व्यवस्था की ही देन होती है और इन्हीं का परिणाम है पिछड़ापन। यह अभिशप्त जीलन की आंचलिक जीवन की विशिष्टता है। बिडम्बना यह है कि सभ्य, शिक्षित और सम्पन्न नगरवासी भले ही इन अंचलवासियों के जीवन को अभिशप्त और पिछड़ा हुआ समझें, पर स्वयं ये अंचलवासी सदियों से इसी तरह की जिन्दगी जीने के लिए विवश होकर इसी को अपनी विशिष्ट जीवन-पद्धति और सांस्कृतिक परम्परा मान बैठे हैं।

चौथी बात इन आंचलिक लोगों की विशिष्ट जीवन-पद्धति से है। इनके रहन-

सहन एवं जीवन का एक विशेष ढंग है। इनके विशिष्ट जीवन-शैली का निर्माण वहाँ के लोगों के रीति-रिवाज, सामाजिक, नैतिक और धार्मिक विश्वासों, अन्धविश्वासों तथा सांस्कृतिक परम्पराओं से होता है। यही यहाँ की लोकसंस्कृति है। यह विशिष्ट लोकसंस्कृति किसी अंचल विशेष की विशिष्टता की परिचायक होती है और आंचलिक उपन्यासकार व कहानीकार इसी विशिष्ट आंचलिक संस्कृति के उपन्यासकार व कहानीकार इसी विशिष्ट आंचलिक संस्कृति के माध्यम से आंचलिक जीवन की नब्ज़ परखने का प्रयास करता है। ये अपनी विशिष्ट जीवन-शैली के कारण ही एक दूसरे से अलग दिखाई पड़ते हैं। इसलिए आंचलिक कथाकार का यह विश्वास होता है कि वह अपने को अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से तभी व्यक्त कर सकता है, जब उसका वातावरण, उसकी जनता और स्थान उसके माध्यम से, उसके भीतर से अपने को व्यक्त कर सके।

अंचल के जटिल जीवन-चित्र को अंकित करने के लिए आंचलिक कथाकार विभिन्न तरह की रेखायें खींचता है, कहीं सीधी, कहीं टेढ़ी, पतली-मोटी और आड़ी-तिरछी और इनमें आंचलिक रंग भरता है। ओलक संस्कृति को व्यक्त करने के लिए एक नये माध्यम की खोज करता है, जिसे विशिष्ट आंचलिक शिल्प कहते हैं। इस शिल्प की मुख्य विशेषता है–

कथानक में बिखराव-शिथिलता आंचलिक शिल्प की पहली विशेषता है। सम्पूर्ण अंचल की विविधताओं का अंकन एकधारा में रहकर नहीं किया जा सकता। इसीलिए वह पूरे अंचल की बहुमुखी यात्रा कर स्थान विशेष को आंचलिकता प्रदान करने वाले सारे उपादानों–लोकगीत, लोकनृत्य, अन्धविश्वास, परम्पराएँ, रूढ़ियाँ, रीति-रिवाज, उत्सव-त्योहार आदि को चुनकर अपने कथानक में गूँथता है। चूँकि विविध पात्रों की मनःस्थितियों का अध्ययन करना होता है, इसलिए स्वाभाविक रूप से कथानक में भटकाव आ जाता है। यद्यपि की इसकी आलोचना इस आधार पर की जाती है कि कथानक का विखराव रचना-पक्ष को कमजोर बनाता है।

आंचलिक कथा-साहित्य के शिल्प की दूसरी विशेषता है--नायकत्व का सर्वथा अभाव। वस्तुतः कथाकारों का उद्देश्य होता है सम्पूर्ण अंचल की अभिव्यक्ति। अंचल ही नायकत्व धारण कर लेता है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि यहाँ अंचल विशेष ही अपनी सम्पूर्ण विविधता व बिखराव के साथ उपन्यास या कहानी का नायक होता है और शेषपात्र उसकी सामूहिकता के अंग हैं--मानो अनगिनत पात्र स्वयं नहीं हैं, किसी के लिए हैं। आंचलिक कथा-साहित्य में सारा कथानक, बोली-भाषा, संवाद, चरित्र-चित्रण उस महान नायक-अंचल विशेष को ही समर्पित होता है, कि बहुना अंचल एवं नायक बन जाता है।

आंचलिक शिल्प की तीसरी विशेषता है-- खण्ड-चित्र और बिम्ब चित्र। अलग-अलग तरह के व्यक्तियों की मानसिक सोच निश्चयतः वातावरणीय एवं भौगोलिक विशिष्टता है। आंचलिक कथाकार को एक पूरे अंचल को उसकी सम्पूर्ण भौगोलिक और सामाजिक-सांस्कृतिक विशिष्टताओं के साथ अपने पाठकों के सामने चित्र के समान फैलाकर रखना पड़ता है। उसे कहीं अछूते ग्राम-प्रदेश, तलहटी, वन-प्रदेश लहलहाते खेत, वन्ध्या परती जमीन का चित्र खींचना होता है तो कहीं सुख-दुःख में डूबे मनुष्यों के राग-विराग सम्बन्धी भावों को भी कलमबद्ध करना पड़ता है, कहीं लोकनृत्य, लोकोत्सव, खेल-तमाशे एवं गाने-बजाने दिखाने पड़ते हैं तो कहीं अंधविश्वास, गरीबी एवं ज़हालत की ज़िन्दगी जीने वाले लोगों के चित्र को उकेरना पड़ता है। इसलिए आंचलिक कथाकार वातावरण-निर्माण के एक नये शिल्प का आविष्कार करता है। खण्ड-चित्र और बिम्ब-चित्र का सबसे सफल प्रयोग रेणु ने अपने उपन्यासों–'मैला आँचल' तथा 'परती-परिकथा' और शिव प्रसाद सिंह ने अपने उपन्यासों–'अलग-अलग वैतरणी' एवं 'गली आगे मुड़ती है' में किया है। वस्तुतः इन दोनों साहित्यकारों ने अंचल की सही धड़कन को पहचाना है।

आंचलिक कथा-साहित्य की विशिष्टता का एक महत्वपूर्ण कारण उनमें प्रयुक्त आंचलिक या जनपदीय भाषा और शैली भी है। वस्तुतः यथार्थ-वर्णन का दावा तो तभी

प्रस्तुत किया जा सकता है जब घटना के आस-पास की संवाद-शैली और वातावरणीय सच्चाई सामने हो। पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग तो एक सामान्य सी बात है, परन्तु स्थान-विशेष की सम्पूर्ण विविधता को उसी रूप में प्रस्तुत करना एक विशेष प्रयास है। यह प्रयास आंचलिक कथाकारों ने किया है। वस्तुतः आंचलिक कथाकार एक साथ टेपरिकार्डर और कैमरा लेकर चलते हैं। कथाकारों का प्रयास रहता है कि वस्तु-चित्र का यथार्थ-वर्णन उन्हीं की भाषा-शैली में हो। इस सम्बन्ध में राम दरश मिश्र ने उचित ही कहा है–'विशेष प्रकार की अनुभूति को कहने के लिए जब हमारी भाषा में ठीक-ठीक शब्द नहीं मिलते, तब स्थानीय शब्दों का प्रयोग लेखक की अनिवार्य विवशता हो जाती है।''[28] किन्तु स्थानीय बोली के प्रयोग की इस विशिष्टता के अलावा भी आंचलिक कथाओं के कथोपकथन-शिल्प में एक विशिष्ट विधि का प्रयोग किया गया है और वह विधि है–सामूहिक संवाद शैली। इन नई विधि से लेखक पाठक को भूत-वर्तमान-भविष्य के वातावरण में बार-बार ले चलता है। प्रतीत होता है कि बात किसी व्यक्ति से नहीं सम्पूर्ण अंचल से हो रही है।

इस प्रकार आंचलिकता के विधायक तत्वों–वस्तुगत और शिल्पगत के विश्लेषण, विवेचन तथा अन्वेषण के माध्यम से आंचलिक कथा-साहित्य के व्यक्तित्व को सहजता से रेखांकित किया जा सकता है और स्थानीय रंग, आंचलिक संस्पर्श, प्रादेशिकता आदि को आलोचनाओं से इस कथाकारों को मुक्त किया जा सकता है। वस्तुतः यह आलोचना एकदम बेमानी है कि आंचलिक कथाकारों में आधुनिकता के साथ चलने की ललक नहीं है। वस्तुतः अपनी मिट्टी से प्रेम यदि पिछड़ापन है तो आंचलिक कथाकारों को पिछड़ा मानने में हमें आपत्ति नहीं है। परन्तु मूल से कटकर वृक्ष को कब तक हम हरा देख सकते हैं। हमारे आंचलिक कथाकारों ने इन अंचलों की मूल समस्या को पहचान कर आधुनिक रूप-शिल्पका जामा पहनाया, यह महान उपलब्धि है। आंचलिकता को साहित्य में स्थान देने के पीछे प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं–

---

28. हिन्दी उपन्यास; एक अन्तर्यात्रा – डॉ० रामदरश मिश्र।

(1) भौगोलिक स्थिति का अंकन और अँकन और अँचल की प्रकृति का यथार्थ चित्रण।

(2) भौगोलिक या प्राकृतिक स्थिति के फलस्वरूप उत्पन्न समस्याओं का चित्रण।

(3) इन समस्याओं का स्वाभाविक परिणाम 'पिछड़ापन' के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण तथा चित्रण।

(4) इन विभिन्न पहलुओं से निर्मित लोकसंस्कृति के विविध उपादानों का रंगारंग चित्र।

(5) लोक चेतना पर युगीन प्रभावों से उत्पन्न प्रतिक्रिया का सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा नैतिकता आदि के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण तथा वर्णन।

इस प्रकार आँचलिकता के विधायक तत्वों–शिल्पगत तथा लोकतत्वीय–के विश्लेषण के द्वारा आंचलिक कथाओं के व्यक्तित्व को आसानी से रेखांकित किया जा सकता है और स्थानीय रंग, आंचलिक संस्पर्श, प्रादेशिकता आदि के छद्म-जाल में समेट कर आंचलिक उपन्यासों को विकृत करने वाले प्रयासों को अलग किया जा सकता है। वस्तुतः आञ्चलिक कहा जा सकता है। उधारके उपादानों से आंचलिकता का श्रम उत्पन्न करना अपने आप में लेखकीय अभद्रता का प्रमाण ही माना जा सकता है।

●

अध्याय – तीन

फणीश्वर नाथ रेणु का कथा-साहित्य आंचलिक सन्दर्भ में

क. संक्षिप्त जीवन परिचय

ख. कृतित्व

ग. आञ्चलिक सन्दर्भ

1. लोकतत्व के रूप में

2. शिल्पगत रूप में

अध्याय – 3

फनीश्वर नाथ रेणु का कथा-साहित्य आञ्चलिक सन्दर्भ में

इस अध्याय में फणीश्वर नाथ रेणु के कथा-साहित्य का सम्यक् अध्ययन करने के लिए दो भागों में बाँटते हैं– (1) संक्षिप्त जीवन परिचय, (2) आञ्चलिकता के सन्दर्भ में रेणु का कथा-साहित्य।

आंचलिक कथा-साहित्य के जनक फणीश्वरनाथ रेणु का जन्न पूर्णिया जिले के औराही हिंगना नामक गाँव में 4 मार्च 1921ई० को एक साधारण किसान परिवार में हुआ था। रेणु जी के पिता का नाम शीलानाथ मण्डल था, जो आर्य समाजी थे। रेणु का जन्म स्थान बंगाल के निकट था, स्वाभाविक रूप से उनके पिता जी का सम्पर्क बंगाल से था। गाँधी जी का असहयोग आन्दोलन अपनी पृष्ठभूमि तैयार कर चुका था तथा किसान आन्दोलन का प्रभाव बिहार की मानसिकता को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा था। इन्हीं परिस्थितियों में जन्में रेणु पर सामान्य किसान बालक से भिन्न हो जाना बिल्कुल सहज था। रेणु ने मैट्रीकुलेशन परीक्षा फारबिसगंज से पूरी की। आगे की पढ़ाई के लिए वे बनारस आ गये। पर समाजवादी वामपंथी आन्दोलन के कारण आगे की पढ़ाई न पूरी हो सकी। बनारस से बिहार लौटकर उन्होंने टी०एन०जे० कालेज में दाखिला लिया। इस समय तक सन् 42 का आन्दोलन उग्र रूप धारण कर चुका था। इस आन्दोलन से युवा रेणु का मन पूरी तरह से प्रभावित था। इसी दौरान उनका सम्बन्ध नेपाल के कोईराला परिवार से हो गया। वहाँ के मुक्ति आन्दोलन में रेणु ने काफी काम किया। नेपाली क्रान्ति कथा वहीं के प्रवास के दौरान का अनुभव है। जगह-जगह रहने के कारण रेणु का स्वास्थ्य सन् 50 में काफी गिर गया और यक्ष्मा से पीड़ित होकर वे पटना के टीबी सेन्टर में भर्ती हुए। श्रीमती लतिका के अथक प्रयासों से अच्छे होकर वे उन्हीं से वैवाहिक सूत्र में बँध गये और पटना में ही रहने लगे। उसी

समय रेणु जी मैला आँचल की रचना में तल्लीन थे। यहीं से रेणु के जीवन में घटनाक्रम तेजी से बदलता है। सातवें दशक तक आते-आते रेणु के जीवन में बड़ी घटनाओं ने रूप धारण किया। वे गम्भीर रूप से बीमार पड़ गये। आपातकाल वे जेल गये तथा पारिवारिक व मानसिक रूप से वे बराबर टूटते गये। इसी बीच उन्हें अपनी कहानी मारे गये गुलफाम पर फिल्म बनाने हेतु शैलेन्द्र की ओर से आमन्त्रण मिला, जहाँ जाकर उन्होंने काफी जद्दोजहद के बाद फिल्म 'तीसरी कसम' के निर्माण की अनुमति दी। इसके बाद मैला आँचल पर फिल्म निर्माण के दौर में चली तब तक वे पूरी तरह बीमार पड़ गये थे। सन् 77 के मार्च में पूरी तरह शारीरिक रुप से टू गये और 14 अप्रैल 77 को इनका पटना के राजेन्द्र नगर निवास पर असामयिक निधन हो गया। इस प्रकार एक अमर कथाकार रूपी चमकता सितारा साहित्यकाश में विलुप्त हो गया। रेणु जी के साहित्य का विवरण इस प्रकार है–

उपन्यास–

(1) मैला आँचल

(2) परती परिकथा

(3) जुलूस

(4) दीर्घतपा

(5) पल्टू बाबू रोड

(6) कितने चौराहे।

कहानी संग्रह–

(1) ठुमरी

(2) आदिम पात्रि की महक

(3) अगिनखोर

(4) एक श्रावणी दो पहरी की धूप

(5) अच्छे आदमी

(6) मेरी प्रिय कहानियाँ

(7) भित्ति चित्र की मयूरी।

इसके अतिरिक्त रेणु जी ने ऋण जल, धन जल, नेपाली क्रान्ति कथा एवं वन तुलसीगन्ध आदि रिपोर्ताज भी लिखे हैं।

रेणु के कथा साहित्य में आंचलिकता की परिकल्पना के रूप हम दो भागों में बाँटकर कर सकते हैं– (1) लोकतत्वगत जिसमें परम्परा, रीति-रिवाज, बोली, अन्धविश्वास, जादू-टोने, अशिक्षा, पर्व, त्योहार, धारमइक मान्यतायें, लोकोक्तियाँ, संस्कार, खान-पान, वेश-भूषा, मनोरञ्जन इत्यादि।

दूसरे शिल्पगत स्तर पर कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, भाषा शैली, संवाद, देशकाल तथा उद्देश्य।

रेणु ने अपने कथा साहित्य की रचना की आधारभूमि बिहार प्रान्त की पूर्णिया जनपद के आसपास बिखरे उपमानों से तैयार किया है। पात्रों के इर्द-गिर्द का वातावरण उस भूमि से निर्मित है, जहाँ रेणु ने जीवन भर संघर्षों को झेला है। अपने सम्पूर्ण साहित्य की रचना रेणु द्वारा लिखा गया प्रथम उपन्यास 'मैला आँचल' 1954 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास और अपने कथा-साहित्य के सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं घोषित किया कि ''मैं पूर्णिया जिले के साथ-साथ इससे जुड़े अनेक गाँवों को अपने कथा का आधार बनाया है, जिसमें अंचल की समस्त धड़कनें कैद हैं।''[1] सहज रूप से रेणु के कथा- साहित्य मे लोकतात्विक व शैलीगत विशेषतायें उन्हीं अंचलों से सम्बन्धित हैं। कथा-साहित्य में

1. मैला आँचल की भूमिका – रेणु प्रथम संस्करण 1954

उल्लिखित नामकरण से लेकर विविध सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विद्रूपताओं एवं विशिष्टताओं को विवेचिक किया गया है। इनके पात्र जहाँ एक ओर सम्पूर्ण देश की संस्कृति से हटकर अपनी आंचलिक प्रवृत्तियों के कारण संत्रास का जीवन व्यतीत कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर स्वतंत्रता की लड़ाई के प्रति भी कम गम्भीर नहीं हैं। इनके कथा साहित्य की कथा आजादी के लिए तड़प रहे उन ग्रामांचलों की पीड़ा है, जिन्हें मुख्य धारा में शामिल होना है।

मैला आँचल में लोकतत्व के रूप में परम्परागत ढंग से स्वार्थ का बोलबाला है। ऐसे हजारों जमींदारों की एक पंक्ति ही दिखाई देती है जो स्वार्थ सिद्धि के लिए गरीबों का खून चूस रहे हैं। उनकी कोठियाँ ऊँची हो रही हैं तथा गरीब और गरीबी झेल रहा है। वोटें वटोरना तथा एक-दूसरे को लडाना अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए किस प्रकार नीच से नीच कार्य कर रहे हैं।

मैला आंचल में **अन्धविश्वास** की कमी नहीं है। लोग भूत-प्रेत,जंगली देवी-देवता पर विश्वास करते हैं तथा डाक्टर को रोग बढ़ाने वाला बताते हैं। पितरों को मिलाने के लिए ऊपर पूड़ी फेंक देते हैं। दवाइयाँ कुआँ में डाल देते हैं। इनका विश्वास है कि दवा से गाँव वाले मर जायेंगे। आपरेशन कराने से मर जाना श्रेष्ठ मानते हैं। इतना ही नहीं "अपशब्द कह देने मात्र से तुरन्त सराप मिल जाता है तथा दुहाई बाबा पीर भूल-चूक माफ करो। मेरे बच्चे की मति फेर दो महातिमा"।[2] इत्यादि वाक्यांश अन्धविश्वासों से भरे पड़े हैं जो आंचलिकता की सोंध से ओत-प्रोत है।

'जादू टोना' तो इनके जीवन का मूल मंत्र है, जिससे बड़े-बड़े डाक्टर फेल हैं। गाँव में पार्वती की माँ को जादू टोने में माहिर माना जाता है। विश्वनाथ प्रसाद कहते हैं–"जोतखी जी के एक बार जन्तर बनवा के देखा झाड़-फूँक करा के भी देखा परन्तु कुछ अन्तर नही आया।" जोतखी जी कम नहीं हैं– "समझे ही हा शुक्रवार को

---

2. मैला आंचल – रेणु पृष्ठ 193

अमावस्या है। जिस पर तुझे सन्देह हो उसके पिछवाड़े में बैठ जाना। ठीक दो पहर रात को वह निकलेगी उसका पीक्षा करना वह तुम्हारे बच्चे को जिला कर तेल फुलेल लगाकर गोदी मे लेकर जब नाचने लगेगी, उस समय अपना बच्चा छीन लो।[3]

इस प्रकार पूरे उपन्यास में जगह-जगह जादू-टोने का प्रभाव दिखाई देता है, जिससे प्रतीत होता है कि आँचलिक कथाओं में इनके चित्रण का व्यापक प्रभाव है।

गन्दगी का वर्णन आंचलिक कथा साहित्य की प्रमुख विशेषता है। निश्चयतः गन्दगी के कारण यहाँ के लोगों में जड़ता का प्रभाव भी देखा जा सकता है। क्योंकि बीमारी में 'सूई' लगवाना वे अशुभ मानते हैं तथा कहते हैं कि इससे और बीमारी बढ़ेगी।

जॉति-पाति बड़े गहरे रूप में यहाँ के लोग मानते हैं। जातियों के आधार पर टोले, मुहल्ले तथा साकिनान बना रखे हैं। दुसाध टोला, ठाकुर टोला, कायस्थ टोला, बाभन टोला, मलिकार टोला, गुआर टोला, कोमरा टोला अर्थात् जितनी जातियाँ, उपजातियाँ इन अंचलों में विद्यमान हैं, उन सबके टोले बन गये हैं इनके अपने स्वार्थ में तथा इन्हीं में संघर्ष भी होते रहते हैं। पिछड़ी जातियाँ उठ रही हैं तथा ब्राह्मण लोग उन्हें लड़ा रहे हैं। साधारण सी बात पर भी लाठी उठा लेना बड़ा सहज है। स्पष्ट है कि मैला आँचल व अन्य उपन्यासों में जातिगत, वर्गजात व टोलागत, स्वार्थ भरे पड़े हैं, जिनमें संघर्ष बड़े सहज रूप में दिखाई देता है। इस गाँव का समूह जातीयता के आधार परप है, यद्यपि कि आर्थिक आधार पर कुछ वर्ग भी बने हैं। पुराने तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद, नये तहसीलदार हर गौरी के पिता सिंह जी, रामखेलावन यादव तथा जोदखी जी गाँव के जातीय नेता हैं, जो अपने स्वार्थों में पड़कर गाँव को परेशान किये रहते हैं। भोज आदि में एक साथ न बैठना भी जाति का सूचक है।

ज्योतिष पर अटूट विश्वास है। जोतखी जी गाँव में पंडित माने जाते हैं वे कहते

3. मैला आँचल – रेणु

हैं–''हाथ की उर्ध्व रेखा ते सीधे तर्जनी में चलीगई है लेकिन कुंडली के दशम घर में शनि है।[4] इसलिए अशुभ है। अर्थात् यहाँ के लोगों के ज्यादातर कार्य जोतिखी जी की कहनी पर ही चलते हैं। बच्चे पैदा होने से मरने तक सब जोतिखी जी शुभ-अशुभ बताते हैं।

काम भावना– गाँव में प्रत्येक आदमी इस बुखार से पीड़ित है। लक्ष्मी कोठारिन और सेवादास के सम्बन्ध खूब चर्चित हैं। रामदास मठ का दूसरा महन्थ लक्ष्मी पर आशक्त है और बाद में रामपिरिया से शादी कर लेता है। बालदेव लक्ष्मी की देह के गनध से, प्रशान्त कमला से, कालीचरण मंगला से तथा जोतिखी जी चार स्त्रियों से घिरे हैं, जिनमें कामुकता जोर मारती रहती है। बालदेव 'लक्ष्मी के शरीर से विशेष खुशबू काअनुभव करता है। अर्थात् मैला आँचल के कुछेक को छोड़कर लगभग सभी पात्रों में स्थानीय रंगत के कारण कामुकता का जोर दिखाई देता है। पुरुष ही नहीं स्त्रियाँ भी इस ज्वर से बची नहीं हैं। इसी कामाचार के अधीन होकर ''गाँव का ब्राह्मण चमारिन कंगन को कुए से पानी तो नहीं लेने देता, पर उसके साथ रात काटने में बुरा नहीं मानता।[5] माँ बाप की जानकारी में लड़कियों के अवैध सम्बन्ध गाँव के छोकरों के साथ हैं, उच्च जाति के लोग विद्यापति' नाच में भाग लेते हैं। मठों, मन्दिरों, टोलों, मुहल्लों में कामुकता का चरम है। निश्चय स्थानीय रंगत का पृरभाव देखा जा सकता है।

गाँव के लोग व्यवसायों द्वारा अपना जीवन निर्वाह कर रहे हैं। ''खेलापन यादव की दूध-घी की बिक्री से कमाये हुए पैसे की बात चारों ओर बुरी तरह फैली हुई है।'' लोगबाग मेले, त्योहार, बाजार, हाट से तो पैसा कमाते ही हैं कोरिया गवाही कर के भी पैसा लेते हैं। ''पकरिया घाट पर मछुआ लोग मछली पकड़ते हैं।''

खान-पान–आम, अंडा, केला, कोवी, कद्द खट्ट मिट्ठी, खीरा खैनी, खजूर,

---

4. मैला आँचल – रेणु पृष्ठ–86

5. मैला-आँचल आलोचना – उपेन्द्रनाथ अश्क

सकरकन्द, सवाचिनिया, मालपुआ, मूढ़ी, भात् बिस्कुट, दूध, जांगली जामुन, दालचीनी, महुआ की दारू, भाग, बेदाना आदि अनेक खान-पान के पदार्थ उपन्यास में बिखरे हैं। स्थानीय खाद्य पदार्थ हैं, जो बेहिचक इसमें प्रयुक्त हैं। घोड़ा चूहा, खस्सी, गुलेर, करैत साँप, तिलकट्टे, बैल, खेकसियारी आदि **जानवरों** का प्रयोग किया गया है। मालूम हो कि ये सब देश के अन्य भागों में भी मिलते हैं पर रेणु जी ने मैला आंचल में इनका प्रयोग बड़ी स्थानीय रंगत के साथ किया है। **अस्त्र-शस्त्र** के रूप में हंसेरी हलफाल, लाठा, भाला, सुतली, पिस्तौल, तीर, गुलैरा आदि। अभूषण इयरिंग, कनपासा, सिकड़ी, बुलाकी, बाजू, झंझनी, कनफूल, चूर कंगना, आदि उपन्यास में आये हैं। **उत्सव** अनन्त पर्व, जाट जट्टिन पर्व, लाल बाग मेला, रोहतर मेला, सतुआनी पर्व, रामनगर का मेला, बंधवा पर्व। **वस्त्र** गमछा, टोपी, गंजी, मोजा, पैजामा, पैंट, फर्दी, जूता, गुलबन इत्यादि। **वाद्य यन्त्र** हारमोनियम, सितार, मृदंग, खजड़ी, झांझ, ढाक, मादल इत्यादि। **स्थानीय सभा** संघ लालझंडा सेन्टर, सत्संग, महन्थ मठ, मलेरिया सेन्टर, चरखा सेन्टर, काली टोपी, सेन्टर इत्यादि।

हँसी ठठ्ठा–जाट जट्टिन वेश बदल कर डाक्टर बन जाती हैं तथा रोगिनी को कहती हैं– ''तुम्हारा नेवज देखें, तुम नहीं बचेगा। तुम्हारी बेकारी को कीड़ा हो गया है... जक्सन लगेगा।''[6] इस प्रकार के हास्य व्यंग्य की चहुँओर बहार है। पूरे उपन्यास मे कालीचरन, डाक्टर, बालदेव आदि पात्र हास्य व्यंग्य की गुदगुदी पैदा करते हैं जो आंचलिकता की रंगत से युक्त है।

व्यंग्य–''यले दोनों भसम ल आने...हा-हा...देश को भसम देंगे ये लोग।[7] इसी प्रकार के बहुतेरे व्यंग्य के उदाहरण है।

लोकगीत तो पूरे उपन्यास में ऐसे बिखरे हैं जैसे पूरा उपन्यास लोकगीत युक्त

6. मैला आँचल – रेणु

7. मैला आँचल – रेणु

हो गया है। स्थानीय रंगत में डूबे ये लोक गीत बड़े मनोहारि बन पड़े हैं। यहाँ के हाव-भाव, खुशी गम व्यक्त करने के लिए ये लोकगीत पर्याप्त हैं। गंगा रे जमुना का मास असाढ़ चढ़ल बरसाती, धरती फारे मेघ जल, चढ़ली जवानी मोरा अंग अंग फड़के रे गड़ आंगन बन गये पराये, थारी बेंच परवारी दे लिये, आज से बिराजू श्याम कदला के छैंया इत्यादि लोकगीत, मैला आंचल के विभिन्न 268, 244, 381, 90, 328, 108 तथा 260 पृष्ठों पर बिखरे पड़े हैं, जो हर्ष व विषाद को बखूबी व्यक्त करते हैं।

फिल्मी गीतों पर आधृत लोकगीत भी अच्छे बन पड़े हैं। खादी के मुनरिया रंग दे छापेदार[8] तथा जिन्दगी है कि रान्ती की किरान्ती[9] लुटाये जा इत्यादि।

लोकनृत्य बिहला नाच, संथाली नाच, ठेठर कम्पनी नाच, जम्बिक सिंह नाच, बलचाही नाच, विदेशिया नाच इत्यादि। इसके अलावा बहुत से लोकनृत्य यहाँ दिखाई देते हैं। इसके अलावा स्थानीय तुकबन्दी, किस्से कहानियाँ, उक्तियाँ, मुहावरे तथा अन्य चीजें इस उपन्यास में लोकतत्व के रूप में बिखरे पड़े हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि रेणु जी ने मैला आँचल में लोक तत्व के रूप में उपरोक्त तथ्यों का बखूली चित्रण किया है।

शिल्पगत तत्व के रूप में कथावस्तु का वर्णन करते समय यह विचारणीय है कि रेणुजी जिस कथावस्तु का चयन किया है, वह मेरीगंज गांव के जीवन पर आधृत है। इस गाँव को कथा का केन्द्र बनाकर बंगाल, संथाल परगना, मिथिला व नेपाल आदि की सांस्कृतिक विशेषताओं की पृष्ठभूमि में इस अंचल के चित्रों को उभारा गया है। सन् 1942 के बाद सन् 1948 तक उस गाँव की स्थिति संगठन, बोलचाल, रहन-सहन व्यक्ति के मनोविकास, भारव्यापी, सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक आन्दोलनों को ग्रहण करने की उस अंचल की प्रक्रियाओं के संकलित शब्द चित्रों का नाम मैला आंचल

---

8. मैला आंचल - रेणु - 297
9. मैला आंचल - रेणु - 112

है।''[10] कथावस्तु का चयन पूर्णिया जिले के अति पिछड़े गाँव से किया गया है। उपन्यासकार रेणु जी की आत्मस्वीकृति है–''मैने इसके एक ही गाँव को पिछड़े गाँव का प्रतीक मानकर इस उपन्यास का कथा क्षेत्र बनाया है।''[11] इस उपन्यास में रेणु जी ने यहाँ की मनोवृत्तियों को स्थानीय रंगत से सराबोर कर पात्रों की रचना की है, जो यहीं के हैं तथा यहीं के होकर रह जाते हैं।

चरित्र-चित्रण के रूप में ऐसे पात्रों का सृजन किया गया है जो गाँव में रहकर स्वार्थ, अन्ध विश्वास, जादू-टोना, गन्दगी, मूर्खता, जाति-पाँति, कामुकता और विविध कुंठाओं से ग्रसित होकर जीवन व्यतीत कर रहे हैं। स्वार्थसिद्धि के लिए कुछ भी करने को तैयार पात्र कभी-कभी हँसी के पात्र बन जाते हैं। इसके स्पष्ट उदाहरण हैं– जोतखी जी व सुचरित दास। पात्रों के चरित्र युगानुरूप सहज हैं। इनमें युग चेतना का भी प्रभाव है। एक तरफ जहाँ स्वार्थ में लिप्त हैं, वहीं दूसरी ओर बालदेव, कालीचरन ज्ञान की बातें भी बताते हैं। डॉ० प्रशान्त आधुनिक युगके प्रतिनिधि के रूप में दिखाई देते हैं। इसी प्रकार बावनदास, सुन्दर लाल, वासुदेव, कर्मकार चलचित्तर नये युग के साथ चलने को बेताब हैं।

भाषा-शैली– मैला आंचल की भाषा शैली स्थानीय रंगत के प्रभाव से परिपूर्ण है। वस्तुतः मोरीगंज गाँव मिथिला तथा बंगाल के बीच का गाँव है यहाँ के लोग मैथिली या भोजपुरी बोलते हैं। पात्र जब साधारण परिस्थिति में बात करते हैं तो हिन्दी खिचड़ी मैथिली भोजपुरी तथा कुछ-कुछ बंगला प्रभावित बिहारी भाषा बोलते हैं। सुनने में अटपटी लगती है। भावों की आकुलता के कारण रेणुजी ने पात्रों के मुंह से कभी कभी गाली, गाना, मुहावरे, ठेठ हिन्दी, उक्तियाँ तथा लोकगीत कहला दिया है, जो नया प्रयोग है। वास्तव में–आंचलिक शैली की अपनी सीमायें हैं, उसकी अपनी निजता है।

---

10. आलोचना-35 पृष्ठ–84

11. मैला आँचल - भूमिका – रेणु

कथाकार ने लोकभाषा का प्रयोग दो प्रकार से किया है, एक तो उपन्यास के वातावरण के हू-ब-हू चित्रण में और दूसरे पात्रों के संवाद के रूप में। ''कब होइहैं गवना हमार रे भउजिया'' चढ़ली जवानी मोरा अंग-अंग फड़के'' इत्यादि में भोजपुरी का असर है। **स्थानीय शब्द** हिड़िस, रमना, रेड्डी, आंगन वाली, गमकौआ, कलपना, दुखा, टीक, डोलडाल, धुधका इत्यादि हजारों शब्द मूल हिन्दी शब्दों से इतर हैं। **उर्दू** शब्द भी आये हैं जो समयानुसार प्रयुक्त हैं। इन्तकाल, जहालत, फहरिस्त मजलूमों, खुद, दरख्वास्त इत्यादि उर्दू शब्द हैं। **अंग्रेजी शब्द** इस पारामीन, कानफारम, प्लेज, लेट हैंडसप, स्टाक, फारहम, रिचरब, फिनिस, ब्रीन्च, फेलि इत्यादि। बिगड़े शब्द–अरब, स्टेट, सरवन, जैहिन्न, डागडर, तख्ती, तिब्र, रच्छा इत्यादि। कुछ शब्द बड़े प्रिय हैं–अनाप शनाप, बाभना, छिनाल, भूलगैन, खलास। **गालियाँ** तो पूरे उपन्यास में भरी पड़ी हैं– हिजड़ा, हरामजादी, भकुआ, खिली, कुर्ता, खिंखर, छिनाल, साला, सुअर, मुंहझौसा इत्यादि।

संवाद ही मैला आँचल की वह विशेषता है जिससे आंचलिक कथा साहित्य की परिकल्पना की गई है। संवादों में सीधी सी बात को कहने के लिए भी गालियों का प्रयोग किया गया है कम पढ़े-लिखे, अशिक्षित, गंवार जनता की अपनी लोकल संवाद शैली होती है जिसमें वे उन्हीं गालियों तथा तुकबन्दियों में अपनी सारी बात कह जाते हैं।

मैला आँचल में प्रयुक्त संवाद शैली अत्यन्त रोचक है। कहीं-कहीं लोक हास्य, व्यंग्य शैली, लोकगीत शैली है तो कहीं-कहीं मुहावरे, उक्तियाँ, फिल्मी गीतों पर आधारित गीत, व तुकबन्दियों के आधार पर अपनीब आतें कहते हैं। डाक्टर का यह कहना, ''कुछ भी हो ख्याली पुलाव से तो मटर की घुघली का पुलाव अच्छा है'',[12] तीखे व्यंग्य का प्रतीक है। इसी प्रकार पूरे उपन्यास में रेणु जी ने आंचलिक शैली में पात्रों से संवाद कराया है, जो रोचक बन पड़ा है।

---

12. मैला आंचल - रेणु - 315

देशकाल सन् 1942 के बाद सन् 1948 तक गाँव की स्थिति संगठन, बोलचाल, रहन-सहन, सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक, ढाँचे पर परिवर्तित हो रही थी। जैसा कि बताया गया है कि सन् 1954 में मैला आँचल का प्रकाशन हुआ था। निश्चयतः आजादी के आस-पास इस उपन्यास का ताना-बाना बुना गया होगा, जहाँ एक ओर आजाद हिन्द अपने नवजागरण द्वारा उन्नति के शिखर पर पाँव रखने जा रहा था, वहीं अछूते ग्रामांचलों की जनता की पीड़ा को भी उभारने की कोशिश कुछ साहित्यकारों द्वारा की जा रही थी, जिनमें रेणु, शिव प्रसाद सिंह, केशव प्रसाद मिश्र, नागार्जुन, रामदरश मिश्र, राही मासूम रजा इत्यादि रचनाकार देश काल के अनुसार अपरिचितों की साहित्य में स्थान दे रहे थे। रेणु जी का विश्वास है– कि कम से कम मिट्टी को पहचानना, मिट्टी और मनुष्य से गहरी मुहब्बत, कोरी बात नहीं। अछूते ग्रामांचलों की पीड़ा को मुख्य धारा में लाने की छटपटाहट इन लेखकों में देखी जा सकती है। रेणुजी ने इस उपन्यास में बिहार प्रान्त के पूर्णिया जिले के अति पिछड़े गाँव मेरीगंज को कथाधार बनाया। आंचलिकता की विशिष्टता इसी प्रकार के देशकाल से सम्बन्धित है।

उद्देश्य–फणीश्वरनाथ ने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद अपनाया है। रेणुजी ने प्रत्येक बुराई का समाधान प्रस्तुत करने का ध्येय बनाया है। रेणुजी के इस उपन्यास की रचना व उद्देश्य है–अछूते ग्रामांचलों की धड़कनों को मुख्य धारा में लाने की कोशिश किस तरह कामयाब रही, यही देखते थे। उन्होंने कालान्तर सुदूर मेंबसे हजारों लाखों के चेहरों पर हँसी लाने की कोशिश की है। उनके जीवन को साहित्य में स्थान देकर मुख्य धारा में लाने का प्रयास किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मैला आँचल के लोक तत्व व शिल्पगत तत्व का मूल उद्देश्य ही आँचलिकता की परिधि में साहित्य का सृजन रहा है। सम्पूर्ण उपन्यास में लोकतत्व व शिल्पगत तत्व भरे पड़े हैं, जिनसे मैला आँचल आंचलिक उपन्यास बन पड़ा है।

परती परिकथा - फणीश्वरनाथ रेणु का दूसरा आंचलिक उपन्यास 'परती परिकथा' का प्रकाशन 1957ई० में हुआ। परती का अर्थात् बंजर भूमि तथा परिकथा का तात्पर्य है कि इसके इर्द-गिर्द के ताने बाने से बुनी कथा से युक्त रचना, जिसमें सभी पात्र अंचल के घटक के रूप में वर्णित हैं। परिकथा का तात्पर्य है कि तमाम उपकथाओं, सहकथाओं एवं सहायक कथाओं से निर्मित रचना। अर्थात् 'परती परिकथा' में परती की सम्पूर्ण कथा है। जहाँ उसके सर्वकालीन सामाजिक यथार्थ का सूक्ष्म चित्रण है। इसमें पौराणिक कथायें भी हैं। जितेन्द्र के पिता की डायरी में ऐसे ढेर सारे चित्र हैं। कथा के भीतर कथा तथा अन्दर तक ढेर कथायें अलग उपन्यास होते होते बच गई। यह परिकथा उस परती की है, जो कि 'धूसर, वीरान, अन्तहीन प्रान्तर पतिता भूमि परती जमीन, बन्धया धरती। धरती नहीं धरती की लाश, जिस पर कफन की तरह फैली हुई है लाखों एकड़ भूमि, जिस पर सिर्फ बरसात में ही क्षणिक आशा की दूब का वर्णन है जिसका केन्द्र परानपुर गाँव में है।[13]

बिहार प्रान्त के परानपुर गाँव की परिकथा का वर्णन किया गया है, जहाँ जड़ता रूपी धन्ती को ज्ञान रूपी हल से जोतकर नई फसल के होने की कल्पना हेणु जी ने किया था। वास्तव में परती परिकथा में वह कथाभूमि है जो मैला आँचल की है अर्थात् ''बन्धया धरती का विशाल आँचल। इसमें दूब भी नहीं पनपती है और बीच-बीच में बालूचर और बेर की झाड़ियाँ।[14] पर्ती परिकथा के नामकरण की सार्थकता के साथ ही ऐसा लगता है कि कोसी के अंचल की समग्र जीवन गति ही उपन्यास में समाप्ति कर दी गई है। उपन्यास के कथांचल का वर्णन करते हुए रेणु जी ने लिखा है– ''ग्राम परानपुर, यानी रानीगंज। परानपुर की प्रतिष्ठा सारे जिले में है सबसे उन्नत समझा जाता है किन्तु बाँस जिस तरह बढ़ते बढ़ते अन्त में झुक जाता है उसी तरह यह गाँव भी झुका

---

13. परती परिकथा – रेणु, द्वितीय आवृत्ति पृष्ठ 14

14. मैला आंचल – रेणु - भूमिका

हुआ है।''[15] परानपुर की ढेर सारी आंचलिक विशेश,तायें पूरे उपन्यास में बिखरी पड़ी हैं। संक्षेप में लोकतत्वीय रूप का वर्णन इस प्रकार है।–

परम्परागत रूप में यहाँ **जाति पाँति** का बोलबाला है। पिछले आठ दस वर्षों से जातिवाद ने काफी जोर पकड़ा है। राजनीतिक पार्टियाँ भी जातिवाद की सहायता से संगठन करना जायज समझती हैं।'' ''आठ वर्षो से जातिवाद के दीमकों का मुख्य आहार है मनुष्य का हृदय''।[16] इस प्रकार देखा जा रहा है कि परम्परा के रूपमें जाति पाँति ऊँच-नीच का भेद विद्यमान है। **जादू-टोना** में लोग बड़ माहिर हैं। जादू के बल पर ही जबधारी लाल 'ब्रह्म पिशाच से भेंट करा सकता है। पंचहरिया मूर्छावान डिवियों के खोलने से *अमावस्या* की पात होना तथा अंगूठे के नगीने से आंधी-पानी को छोड़ना[17] इत्यादि सैकड़ों उदाहरण इस उपन्यास में जादू टोने के प्रभाव को दिखाते हैं। अन्ध विश्वास के तमाम प्रसंग उपन्यास में बिखरे हैं। ग्रामीणों के अनुसार ''डेढ़ सौ एकड़ की पाँच परिधियों में ब्रह्म पिशाच का राज्यथा।''

उनका विश्वास है कि ''हँसी ठिठोली भला देवता बरदाश्त करें।'' ठिठोली करने से ही ''देख लो सभी बेजात हो गये।'' निरसू भगतदेखो दही खा रहा है ''अपने इन्हीं अन्धविश्वासों के कारण ही'' दूसरे कुंड में दन्ता के टूअर बेटे को नाम खीर चढ़ाते हैं।[18] इस प्रकार पूरे उपन्यास में लेखक ने अन्धविश्वासों के गहरे चित्रण द्वारा आंचलिकता की रंगत को उभारा है।

अशिक्षा का तो व्यापक असर है। अपनी अशिक्षा के कारण ही 'जीवन बीमा'

---

15. परती परिकथा – रेणु –17
16. परती परिकथा – रेणु – 27
17. परती परिकथा – रेणु – 14
18. परती परिकथा – रेणु

को इन शब्दो में व्यक्त करते हैं– ''इतनी बात भी नहीं समझेंगे साफ-साफ कह रही हैं कि सुवंश लाल ने जीवन बीमा उठा लिया है। परजात से जीवन बीमा करवाई है।'' ब्राह्मण छतरी वाले की पूजा करते हैं। ''बी०ए०, एम०ए०, को तो लुतो बाबू गाय भैंसे समझते हैं गोशाला की।[19] दिल बहादुर की ''आँखें मालगाड़ी के इंजन को देखकर आश्चर्य से चित्ती भौड़ी जैसे हो गईं। इतना बड़ा जानवर और इसकी बोली कूं कूं''। **मूर्खता** भी इसी अशिक्षा के कारण है।'' तजमनियां देखने में सुन्दर लगती है समझते हैं कि जरूर कोई दवा खाती होगी।[20] ''गाँव के आबाल वृद्ध मूर्खता के जाल में फंसे सत्यता से परे हैं। **ईर्ष्याभाव** भी अशिक्षा के कारण चरम पर है। जित्तन और ताजमनी के बारे में औरतें कहती हैं-सुन्नरि नैका का पाट अन्दर हो रहा है...पैर पुजाई कर रही है। सुन्नरि नैका।''[21] हजारों हजार उदाहरण अशिक्षा के कारण तमाम बुराइयों के सम्बन्ध में हैं। स्वार्थतत्व तो आंचलिकता के भावों में उभारने में पूरी तरह सक्षम हुआ है। गाँव के लोग अपने स्वार्थ के लिए ''नट्टिन टोली में किसी एक की नंगी फोटो भी अखबार वालों को देने से इंकार नहीं करते। जमीन के लिए भरी कचेहरी में कह देता है कि ''लालमन मेरा कोई नहीं। इसके भाव का कोई ठिकाना नहीं है।''

परानुपुर गाँव के लोग धार्मिक मान्यताओं में विश्वास करते हैं। खाद्यपदार्थ में दाल, तिलहन, धान, बीड़ी सिगरेट, तेल, तम्बाकू, मछली, आलू का भर्ता, अरब की शराब, केला, दूध, पनीर मिसिरी भूसी, मुरब्बा, इमली, सिंघाड़े इत्यादि।

यातायात के साधन–घोड़ागाड़ी, बैलगाड़ी, टरेन गाड़ी, हवाई जहाज, ट्राली, घोड़ा पाड़ा, मोटर गाड़ी इत्यादि। पशु पक्षी शामचकेवा, गिलहरी, खंजन पक्षी, पनकौआ, खरहा, चाट्टा, लालमुनिया चिड़िया, घोड़ा इत्यादि बहुत से पशु-पक्षी

19. परती परिकथा – रेणु – 203-204

20. परती परिकथा – रेणु – 153

21. परती परिकथा – रेणु – 183

यथास्थान आये हैं। वृक्ष, फूल इत्यादि भी अपने-अपने रूप में वर्णित हैं।

उत्सव त्योहार– श्यामचकेवा पर्व, वार्षिक पर भोज, परानपुर पार्क समारोह, पूर्णिया डे समारोह, पशुपति मेला, सोनपुर का मेला, गार्डन पार्टी, बदरि या घाट का मेला तमाम उत्सव व त्योहार व मेलों का वर्णन है। **गहने व आभूषण** विशेप रूप से स्थानीय गंध लिए हुए होते हैं–शाल, दुशाला, स्कार्फ, करधनी,, गले का हार, सोने की चूड़ियां, बुलाकी। धोती कुर्त्ता, साड़ी, चादर, ढकाई झीनी चादर, लुंगी, जैकेट इत्यादि। **लोकनृत्य** विदेशिया नाच, सावित्री नाच तथा अन्य लोकनृत्य भी दिखाई देता है। टोलों का नाम भी जातियों पर है–कायस्थ डोला, बाभन टोला, गहलोत टोली इत्यादि। **लोकहास्य** भी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। कुछ उदाहरण– चार आने की अक्किल मंगा ले परिसल करा के। अरे... दो रुपया खर्च करो तुमको भी देश विदेश से पांतियाँ पर पाँतियों लिख लिख कर आयेंगी।''[22] इत्यादि लोक हास्य व व्यंग्य के चित्र सर्वत्र देखने को मिल जाते हैं।

लोकगीत तो परती परिकथा में स्थान स्थान पर विखरे पड़े हैं–''न छुओ न छुओ मेरो गंगा जमुनवा की कोई चुनरी'', ''लोटवा ले जालि कारि मोहरि'' गाँव में ढोल, हन हन कर बोल इत्यादि हजारों गीत उपन्यास में स्थानीय चाहत के केन्द्र में हैं।

फिल्मी गीतों पर आधृत इन पात्रों के स्वयं के गीत बड़े ही रोचक बन पड़े हैं। ''आजा मोरे बालमा तोरा इन्तजार है।''

तुकबन्दियाँ तो जैसे इनके जीवन में रच बस गई हैं–

''आम कटाये बबुल लगाये फल जे फलय मंहकार उचित कहत सो चितनाहि भावे चुगलन के दरबार''[23]

---

22. परती परिकथा – रेणु - पृष्ठ 95

23. परती परिकथा – रेणु - पृष्ठ 470

''हरजगह हजूर हैं, सब जगह मजूर है।''[24]

किस्से कहानियाँ तो बीच-बीच में ऐसे चलती हैं जैसे भोजन के बीच चटनी तथा अचार। किस्से कहकर अपनी बातें जोरदार बनाने की कला कोई इन पात्रों से तो सीखो इस प्रकार हजार हजार लोकतात्विक विशेषतायें, इस उपन्यास की परिधि में समाई हैं।

परती परिकथा का शिल्पगत वैशिष्ट्य अपने आप में बेजोड़ है। हाँ लाँकि आंचलिक कथाकार रेणु में मैला आंचल की ही शिल्प का इसमें भी प्रयोग किया है, पर भाषा थोड़ी सी और भिन्न सी है। विद्वानों ने लिखा है कि रेणु की भाषा में अपार क्षमता है कि अनेक वर्णन चित्र बनकर आये हैं। स्थानीय शब्द अपने 'लेकल कल्चर के कारण बड़े अच्छे बन पड़े हैं। रेणु द्वारा रचित इन्हीं कथाओं में यदि इन शब्दों के स्थान पर हिन्दी भाषा के मानक शब्द रख दिये जाते तो शायद उतना वर्णन अच्छा न होता न ही रेणु अमर कथाकार बन पाते। रेणु के परती परिकथा की यह शिल्पीय शैली महाकाव्यात्मक बन पड़ी है। कथावस्तु का चयन परानुपुर ग्राम को केन्द्र मानकर किया गया है। परानुपुर गाँव पुरातन है इसमें परिस्थितियों ने यहाँ के निवासियों को आंचलिक बना दिया है। जो मुख्य धारा से कटे हुए हैं। कथावस्तु में बंजर धरती बांझपन अर्थात् विचारों की जड़ता पर कर्मठता का ट्रैक्टर चलाता हुआ दिखाई देता है और उपन्यास का अन्त होते होते बाँझ धरती हरी भरी हो जाती है। रूढ़ विचार प्रगतिशील हो उठते हैं। इन्हीं बातों को रेणु जी ने प्रतिकात्मक कथा के माध्यम से व्यक्त किया है।

चरित्र-चित्रण के माध्यम से रेणु ने पात्रों की मूर्खता, अज्ञानता, अन्धविश्वास, कामुकता, स्वार्थ, ईर्ष्या भाव को व्यक्त करने के साथ-साथ नवीन युगीन चेतना को भी रूपायित किया है। इनके पात्र युग बोध के प्रति सचेत हैं। हरिजन अध्यापिका मलारी तथा भूमिहार युवक सुवंश लाल का सामाजिक विद्रोह युगबोध का स्टीक उदाहरण है। इरावती गाँवका उद्धार करना चाहती है। लुत्तो, विश्वकर्मा, डॉ० चौधरी, भिम्मल मामा,

---

24. परती परिकथा – रेणु - पृष्ठ 311

सुरपति राय, भवेश नाथ इत्यादि युगबोध के प्रति गम्भीर हैं।

भाषा-शैली अत्यन्त चटख रंग लिये हैं। **स्थानीय शब्द** व बिगड़े शब्द उभरकर सामने आये हैं। झोटा, टैंग, सिक्के, कम ते कम अक्किल तोहर दिहिस, दुरदुराना इत्यादि स्थानीय शब्द तथा बिगड़े शब्द हजारों की संख्या में हैं। सुन्नर, आखर, इलाम, करोध, बन्नूक, मिलिट, टेलीफौक शब्द हैं। कुछ नये शब्द गढ़े गये हैं–अरजंटी, कॉलेजिया, बतियाना, फुलपावर, पगलवा इत्यादि। कुछ प्रिय शब्द का भी रेणु जी ने प्रयोग किया है उर्दू तथा अंग्रेजी के शब्दों का यथा स्थान प्रयोग किया है। **गालियाँ** कोखजला, काली कुतिया, गिरगिट, खबास, राक्स, बाँझ इत्यादि। **मुहावरे**, लोकोक्तियाँ, उद्धरण तथा तुकबन्दियाँ तो हजारों हजार हैं। संवाद शैली तो बड़ी रोचक बन पड़ी है। **संवादों** में एक ओर हास्य व्यंग्य है तो युग चेतना का भी प्रभाव देखा जा सकता है। **संवादों** में तुबन्दियां, गालियाँ, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, फिल्मी गीत, लोकगीत तथा किस्से कहानियाँ सर्वत्रदेखी जा सकती हैं। कथा के भीतर सैकड़ों कथायें इस उपन्यास की संवाद शैली की विशेषतायें हैं। संवाद की प्रमुख विशेषताए–बिना लाग लपेट के बात को कह जाना। कोई भूमिका नहीं, कोई औपचारिकता नहीं। संवाद में जहाँ इन उपरोक्त का प्रयोग है वहीं युग चेतना के साथ अन्य भावों का प्रयोग है। देशकाल सन् 1957 में प्रकाशित उपन्यास की रचना भूमि इसी के आसपास बनी होगी तो निश्चयतः आजादी के बाद तड़प रहे हाशिये पर पड़े उन लोगों को बाहर मुख्यधारा में लाने का उद्देश्य रहा है। एक ओर जहाँ देश में डाक-तार, रेलगाड़ी के रूप में विज्ञान करवटें ले रहा था, वहीं **अंचल** विशेष में पड़े आजादी के तुरन्त बाद के हालातों का वर्णन किया गया है। **उद्देश्य** परती परिकथा का ध्येय ही रहा है कि आजादी के बाद तड़प रहे उन हजारों लोगों को मुख्यधारा में शामिल करना था, जो आज भी संत्रास की जिन्दगी जी रहे हैं। बंध्या धरती की कोख में छिपी अनन्त सम्भावनाओं को उभारना इसकथा का ध्येय रहा है। इसी कारण अन्त में रेणु जी ने घोषित किया– ''आसन्न प्रसवा परती हँस कर करवट

लेती है।''[25] इस प्रकार सम्पूर्ण उपन्यास में लोकतत्वीय व शिल्पगत सौन्दर्य रेणु को आंचलिक कथाकार घोषित करते हैं अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण यह उपन्यास मैला आंचल से विशिष्ट उपन्यास बन पड़ा है। तथा आंचलिक कथा-साहित्य की यात्रा में मील का पत्थर साबित हो सका है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि परती परिकथा में उपन्यासकार ने हास्य व्यंग्य के माध्यम से जहाँ विनोद वृत्ति का परिचय दिया है, वहीं कलात्मक अभिव्यंजना के माध्यम से विशिष्ट ग्रामीण भूभाग के वातावरण, जीवन की घटनायें, प्राकृतिक सैन्दर्य चित्र, लोकगीत, आंचलिक बोली, पर्व, उत्सव, तथा स्थानीय रंगत को उभार कर राष्ट्रीय जीवन की मुख्य धारा में लाने की कोशिश की है। यह बड़े महत्व की बात है, जिसमें लेखक ने इन संत्रासों को व्यक्त करने के लिए इसके यथार्थ को खुद भोगा है।

जुलूस - रेणु जी का तीसरा उपन्यास है, जो 1965ई० में प्रकाशित हुआ। कथाकार की आत्मस्वीकृति भूमिका में लिखे शब्दों से मिलती है–''पिछले कुछ वर्षों से मैं एक अद्भुत भ्रम में पड़ा हुआ हूँ। दिन-रात, सोते-बैठते, खाते-पीते मुझे लगता है कि एक विशाल जूलुस के साथ चल रहा हूँ। अविराम! यह जुलूस कहाँ जा रहा है लोग कौन हैं कहाँ जा रहे हैं, क्या चाहते हैं, मैं कुछ नहीं जानता।''[26] रेणुजी ने इस उपन्यास के कथ्य के बारे में कहते हैं–''इस भीड़ से निकल कर राजपथ के किनारे सुसज्जित बालकनी में खड़ा होकर जुलूस को देखने की चेष्टी की है और उन्होंने पाया है कि इस भीड़ से अलगाव बनाये रखने की क्षमता उनमें नहीं है।[27] अर्थात् उस भीड़, समुदाय तथा जनता से ही उनके जुलूस की सार्थकता है। उस भीड़ में ढेर सारे नाना विधि व्यक्तित्व चल रहे हैं, किन्तु इनके लक्ष्य का पता नहीं है, चले जा रहे हैं, निरुद्देश्य।

---

25. परती परिकथा – रेणु – 528
26. जुलूस – भूमिका – रेणु
27. जुलूस – भूमिका – रेणु

इसके पात्रों विश्टू, नागेन बागची, कृष्णा जी गोढ़ी, खुदों बाबू, ठाकुर की पाँच पतोहुएँ, गोढ़ी की भैरवियाँ गुणन्ती, कनकबाला, सिंगारों, रेशमी, गौरी, नानामांही, मोतिया जोगिया थारू, ललमा, पुरैनी तथा बिरनी का इसी जूलुस में शामिल होना पाया जाता है, जो विविध चरित्रों के परिचायक हैं। जुलूस उपन्यास में रेणु ने एक पड़े समुदाय के उच्छेदन और शरणार्थी बनकर पुनर्वास का चित्रण किया है, जिसमें 'पाकिस्तान टोला' की समस्त धड़कनें कैद हैं। उपन्यास का कथानक बिहार के पूर्णिया जिले के एक नये बसे हुए गाँव नवीनगर और गोड़ियर गाँव के इर्द-गिर्द घूमता रहता है। उपन्यास की नायिका पवित्रा। पूर्वी बंगाल के जुमापुर गाँव की रहने वाली है। यहाँ की विशेषता को उकेरते हुए पवित्रा ने कहा "जुमापुरी शरणार्थियों को ऐसी जगह भेजो, जहाँ वे मछली भात पेट भरकर खा सकें, धान उपजा सकें, पाट की खेती कर सकें।" इन कथांचलों की लोकसंस्कृति के तत्व इस प्रकार हैं– पपरम्परा चूँकि यह आंचलिक क्षेत्र पूर्णिया जिले के अति पिछड़े स्थान से सम्बन्धित हैं। लगभग वे ही सारी परम्परायें व रीति-रिवाज यहाँ भी थोड़े बहुत परिवर्तनों के साथ यहाँ भी हैं, जो पूर्व वर्ती उपन्यासों में पायी जाती हैं, किन्तु यहाँ की समस्या उजड़ने व बसने से सम्बन्धित है, जो पुनर्वास की सारी विविधताओं से परिपूर्ण है। रीति-रिवाज अलग किस्म के हैं तथा जातीय समस्यायें भी अलग हैं। जाति की उतनी गम्भीर समस्या यहाँ नहीं है न ही टोलागत स्वार्थगत राजनीति ही यहाँ पर है। पूरब से आने वाले ये गरीब व्यक्ति अपढ़, पिछड़े, कुपोषित, संत्रस्त तथा अमानवीय यातना से पीड़ित हैं। सबसे बड़ी समस्या इनके साथ भाषागत थी, जो एक-दूसरे को मिलने में बाधक बनी रही थी। जुलूस इन्हीं पूर्वी शरणार्थियों के बिहार में पुनर्वास की समस्या को लेकर लिखा गया है। स्वभावतः यहाँ की परम्परा पूर्वीबंगाल की धारा से मेल खाती है। यह क्षेत्र मिथिला व बंगाल के बीच का होने के कारण थोड़ा बहुत दोनों संस्कृतियों से प्रभावित है।

पूर्णिया के उस आवास कैंप को स्थानीय लोगों ने "पाकिस्तानी टोला" कहा था। **जाति पाँति** का बहुत कम असर है फिर भी अंचल विशेष की धरती होने के कारण

अगल-बगल के प्रभाव से वह इस मायने में अछूता न रहा। दोनों पालवेत (मित्र) नवीनगर कालोनी से दुतकारे जाने के बाद जब लौटते हैं तो कहते हैं–''इन लोगों में भी ऊँच जाति और नीच जाति का विचार है। जयराम सिंघ और सुबकी बेलाही के बाबू लोगों की ही पैठ यहाँ हो सकती है।''[28] **अन्ध विश्वास** के मामले में यहाँ के लोग अत्यन्त पुरातन पंथी हैं। मंत्रों, जादू-टोने तथा श्राप को महत्व ये हमेशा देते हैं। कहते हैएं कि ''यदि मन्त्रों की शक्ति न होती तो बाँध उद्घाटन के समय काशी और परनाले पंडित एक साथ कलश सजाकर आरती क्यों उतारते?[29] मंत्रों के बल पर ही मंत्री जी मंत्री हुए हैं।[30] रीत छोड़कर अनरीत करने का फल सारे गाँव वालों को भोगना पड़ रहा है। इसी लिए तो काली कलकत्ते वाली क्रोध प्रकट कर रही हैं। इत्यादि उद्धरण अन्धविश्वास की ओर संकेत करते हैं।

जादू टोना भी कम नहीं है। तालेश्वर गोढ़ी जयराम सिंह को मन्तराई मिट्टी देता है ताकि वह जाकर पवित्रा के चरण तले डाल आये। उनका विश्वास है कि ऐसा करने से पवित्रा उनके वश में हो जाएगी। मिडिल स्कूल की मंजूरी की सूचना पर गाँव वाले मंत्र के कारण इसे सफल होना मानते हैं। ग्रामवासी एक दूसरे को कहते हैं– ''हाथ जोड़ती है, देखते नहीं।[31]

स्वार्थ का तो व्यापक जोर है। छोटे-छोटे सहज कार्यों में स्वार्थ का निम्न रूप देखने को मिलता है, जो अशिक्षित, गंवार व कुंठाग्रस्त व्यक्ति की मनोदशा है। बिस्कुट में गोमांस का प्रभाव दिखाई देता है तथा एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए स्वार्थपरक

---

28. जुलूस – रेणु – पृष्ठ 89

29. जुलूस – रेणु – पृष्ठ 180

30. जुलूस – रेणु – पृष्ठ 55

31. जुलूस – रेणु – पृष्ठ 100

घटनायें प्रायः होती रहती हैं। जड़ता ने तो जैसे इनमें घर कर लिया है। पवित्रा का कहना है–''बुद्धि का जहाज है यहाँ का आदमी।''[32] पवित्रा कुमारी है पर गाँव वाले उसे श्रीमती कहकर पुकारते हैं। डिप्टी मिनिस्टर के शेर कहने पर बिना समझे तालियाँ पीटने लगते हैं। वस्तुतः **अज्ञानता व जड़ता** यहाँ की स्थलगत विशेषता है। **पर्व त्योहार** में ईद, काली मेला, दुर्गा पूजा, मुहर्रम, होली, दीपावली इत्यादि। **हास्य व्यंग्य–** बात-बात में बोली बोलना, ताने मारना तथा मनोविनोद करना इनका मुख्य काम है। जयराम सिंध काला अक्षर भैंस बराबर लोकोक्तिय में ''चढ़ि के पढ़े सुजान'' जोड़कर इसका अर्थ लगाता है– काला अक्षर उस भैंस के समान है, जिस पर चढ़कर सुजान लोक ज्ञान की बात पढ़ते हैं और हँसकर कहता है– ''और यहाँ भैंस की पीठ पर ही मेरी सारी पढ़ाई हुई है हे..हे...हे...एमे,....एफे....मेले... सब पास भैंस की पीठ पर है.... है.... है.... ।[33] सभी पात्र कुछ-न-कुछ हास्य की फुलझड़ी छोड़ते हैं। सब से अधिक तो हास्य प्रसंग है–''द हरखचन्द तातव्य दवाखाना'' चालू होने पर। वहाँ का पहला रोगी पारस प्रसाद अपनी आत्महत्या व पुनर्जीवन के कारण खासा चर्चित हो जाता है और पाठक हँसते हँसते लोट-पोट हो जाता है। **लोकगीत** तो भाषाई रंग में ऐसे रंग गये हैं कि सारा अंचल ही जीवन्त हो उठता है। 'चान्दो बनिया साज लो बारात' ''जगरनथिया रौ भाव, बाब रौ बिराजै उड़िया देश में ऐं...ऐं...ऐं'' ''बहि गैला गोकुल नगरे...ए...ए...डूबि गैला माल जाल'' 'माई बाप कूल परिवारे' 'बारात लागिलो डुआर' ए...ए... फिल्मी गीत की धुन पर भी लोकगीत अच्छे खासे बन पड़े हैं।

तुकबन्दियाँ भी कम नहीं हैं। बात कहने में तुकबन्दी पीछे नहीं है। ''यदि न भेला खई भाजि, रातेर बेला रानी साजि''। **किस्से कहानी** तो रेणु के कथा साहित्य की मूल पहचान ही कथा के भीतर कथा फिर कहानियाँ...छोटी कहानियाँ... अनन्त धारा में

32. जुलूस – रेणु – 113

33. जुलूस – रेणु – 102

मिलकर फिर एक कथा का निर्माण करती हैं। अपनी बात को प्रभावशाली बनाने के लिए पात्र कबीर, सूर, तुलसी, रहीम आदि के तमाम कवितायें कहते हैं अर्थात् उद्धरण देने में पीछे नहीं हैं।

मुहावरे व **लोकोक्तियाँ** पग-पग पर बिखरी हैं। पात्र की परिकल्पना जिन भावों पर हुई है, उनसे वे ही बातें कहलवाना रेणु के कथांचल की विशिष्टता है। समग्रतः रेणु ने इस जुलूस उपन्यास में लोकतत्व के रूप में उपरोक्त जिन तथ्यों का समावेश किया है वे इन अंचलों की धड़कनों को सुनते हैं। जुलूस में वर्णित शिल्पीय तत्व का वर्णन करते समय हम इस बात का ध्यान रखते हैं कि वे कौन-सी लाक्षणिक विधियाँ रेणु ने इस उपन्यास में रची हैं, जिनसे जुलूस एक विशिष्ट स्थान, समुदाय की भावना व संस्कृति को उभारा है। रेणु चुपचाप भीड़ से अलग हटकर दृश्य देखना चाहते हैं, पर दृश्य के व्यामोह ने उन्हें ऐसा नहीं करने दिया। रेणु जी ने यहाँ भाषा शैली में थोड़ा परिवर्तन किया है। कारण यह है कि शरणार्थी समस्या से जूझता उपन्यास अपनी मौलिक पहचान से बिल्कुल अछूता रह जाता यदि शब्दों पर ध्यान न दिया जाता।

भाषा शैली - नबीनगर एक कल्पित गांव जहाँ पूर्वी बंगाल के जुमापुर गाँव से आये हुए शरणार्थी रहते हैं। आकर बसे इन लोगों की भाषा में बांग्ला शब्दों की अधिकता है। वस्तुतः भाषा का संक्रमण यहाँ देखने को मिलता है। पूर्वी बंगाल की बाग्ला तथा मैथली की मिली-जुली बोली गोड़ियर वासी बोलते हैं। बाहरी आदमी यह समझते हैं कि यहाँ की भाषा अलग है, पर ऐसा नहीं है। अपने यहाँ कुछ अंग्रेजी-हिन्दी का जैसा मिश्रण है, वैसा ही बांग्ला व मैथिली का प्रयोग जुलूस में है। **स्थानीय शब्द** की बहुलता है। जैसे–धमक, जस, उड़नछौड़ी, खिलान पिलान, खाँटी, पढ़वा पंडित, धर्मास्ती, मंहगुए, संसार, लीडरानी, तलहथी, चलन्ती, चुहाड़, इत्यादि। पग-पग पर स्थानीय बोली के उदाहरण हैं। जुलूस अन्य उपन्यासों की ही तरह स्थानीय बोली से ओत-प्रोत हैं। शब्दों का **बिगाड़** भी खूब हुआ है, आशीख, परतीत, परनाम, डिल्ली, चर्म, पुन्य, दोख, जादोब, जोतिस, परीक्खा, दुअच्छर इत्यादि शब्द ठहाका, लड़की

मुंहाग्वाला, दंतटुट्टे लड़के, गोबर, घिंचोड़ काम ऐसा हजारों शब्द हैं। **अंग्रेजी शब्दों** का कुछ तो शुद्ध तथा कुछ अशुभ प्रयोग किया गया है कुछ शब्द तो लगते ही नहीं हैं कि ये अंग्रेजी के शब्द हैं पर स्थानीय बोली व प्रभाव के कारण ऐसा प्रयुक्त डानस, डिस्टीट, गौरंटी, कोलनी, कौमनिस्ट, जमनिष्ट इत्यादि उर्दू शब्द काफी हैं। जगह-जगह भावानुसार **उर्दू शब्द** का प्रयोग है। दिमाग, बगैर, वाजिब, सरगना, हुकुम माफिक इत्यादि। बांगला शब्द प्रचुर मात्रा में हैं। असब्बो, आगुन, आमि, आसिबे, टाका, जास, जामिन, खाजना, कोर्बो इत्यादि। बहुत से शब्द हैं जो हिन्दी बंगला के मिले-जुले शब्द नये बन पड़े हैं। औधड़दानी, भुगैनी, मिले मिछे तगादा, मानुस, खेप, निमोछिया इत्यादि। **गालियों** का भरपूर प्रयोग है छिनाल, जोंगली, खच्चड़, खोट्टा, मुड़क्खे, रखेलनिन राड़, रोहिया इत्यादि। मुहावरे, लोकोक्तियाँ प्रचुर हैं।

कथावस्तु का चयन पूर्वी शरणार्थियों के बिहार में पुनर्वास का कथानक लेकर किया गया है। यह उपन्यास गोड़ियर तथा नबीनगर दो कथांचलों को लेकर लिखा गया है। इस उपन्यास में उक्त दो गाँवों में भी गोड़ियर, कुपारी, परमानपुर, सिमराही, नमनपुर, सुक्की, बेलाही, ढोलबाजा, परवाहा, काला बुलुआ गाँव तथा महिचन्दा कालोनी आदि छोटे-छोटे उपगाँव, जिले टोला कहा जा सकता है, पाये जाते हैं। इस उपन्यास की नायिका पवित्रा ने यहाँ के निवासियों के बारे में बताया–''जुमापुरी शरमार्थियों को ऐसी जगह भेजो, जहाँ वे मछली भात पेट भरकर खा सकें, धान उपजा सकें, पाट की खेती कर सकें।''[34] इस उपन्यास की कथावस्तु यहाँ की मूल समस्या शरणार्थी परिवार से सम्बन्धित है, जिसमें युगचेतना के साथ राजनीतिक, चुनावनीति, भाई भतीजावाद, तानाशाही, पूंजीवाद, आर्थिक समस्या, सामाजिक समस्या तथा भौगोलिक समस्या भी है। उपन्यास की कथावस्तु एक विशेष स्थान की है, जो एक ही तरह की समस्या से नहीं बल्कि उपरोक्त समस्याओं से घिरी है जो स्थानीयता की रंगत लिए हुए है।

---

34. जुलूस – रेणु – 120

पात्रों का **चरित्र-चित्रण** जुलूस में चल रहे नानाविध व्यक्तियों के चरित्र से तुलना की जा सकती है। जिस प्रकार एक जुलूस में एक साथ चलते हुए भी बहुत सी बातों में एक दूसरे का वैविध्य स्वाभाविक है। यहां के पात्रों में मूर्खता के साथ युगचेतना का भी प्रभाव देखा जा सकता है।

गन्दगी –''एक ही बोखरा था जो कब का सूख चुका था। पोखरे के किनारे चारों ओर दस रस्सी तक जमीन नरक की धरती है।'' अर्थात् गन्दगी शरणार्थी समुदाय की एक मुख्य समस्या है। **मूर्खता** बात-बात में झलकती है। पत्रिता कुमारी होने के बावजूद श्रीमती कह कर बुलाई जाती है। बिस्कुट में जहर मिले होने का प्रचार किया जाता है, जिससे पड़ोसी की दुकान का व्यापार अच्छा हो सके। **ईर्ष्याभाव** पात्रों में सर्वत्र है। दीपा की माँ सरस्वती देवी को यही बात साल रही है कि उसके रहते हुए एक बंगालन पवित्रा उस गाँव की लीडरानी बनी हुई है। **स्वार्थ** में ये सबसे आगे हैं तो अन्धविश्वास के कारण अरसिया कोट की सभा में मन्त्री जी लाल मूंगों वाले कोट, चपटे, चौड़े ताबीज लटका कर क्यों आते। अवश्य ही मंत्रों के बल पर ही मंत्री हुए हैं। ''**जाँति पाँति** तथा जादू टोना तो पात्रों में पग-पग पर पाया जाता है। ऊँची-जातियाँ नीची जातियाँ आपस में लड़ पड़ती हैं। **कुंठा** ग्रस्त पात्र सर्वथा कामुकता की परिधि में ही सोचते रहते हैं। गोड़ियर गाँव के मुखिया तालेश्वर गोढ़ी की **कामुकता** देखते बनती है। तालेश्वर कहता है– ''हम जो साधन करते हैं उसके लिए औरत बहुत जरूरी है। तन्त्र सिद्ध करने के लिए भैरवी का होना बहुत जरूरी है।[35] ''ज्योतिष पर भी इन्हें अटूट विश्वास है। रेणु जी लिखते हैं– ''ज्योतिषों ने अष्टग्रह योग के बड़े भयावह भविष्य की गणना की है। बड़े और पुराने नेताओं की अकाल मृत्यु से देश हर महीने अनाथ होता है। रोशनी बुझ रही है– एक-एक कर.... एक अज्ञात भय से सारा देश भयभीत है।''[36] पात्रों में **युगबोध** कम नहीं है। गोपाल पाइन, जयराम सिंध, छोटन बाबू, हरिप्रसाद यादव, नरेश वर्मा तथा

---

35. जुलूस – रेणु – पृष्ठ 50

36. वही – 101, 102

पवित्रा युगचेतना के पहरेदार हैं। रेणु जी के ये स्वप्नजीवी पात्र केवल कुंठाग्रस्त ही नहीं हैं, बल्कि जरूरत पड़ने पर सीना ठोंक देश की रक्षा के लिए आगे आते हैं। नायिका पवित्रा का प्रेमी नरेश वर्मा अपने को इन्कलाबी घोषित करता है। युग बोध में समसामयिक समस्या से जूझने व पुरातन पन्थ को पुराने कपड़े की तरह फेंक देने की क्षमता इन पात्रों में सर्वत्र दिखाई देती है।

भाषा शैली जुलूस उपन्यास के पात्रों में कथापकथन के बीच जिस भाषा शैली का चलन है, वह मैथिली व बांगला से प्रभावित है। चूंकि शरणार्थी बंगाल से आये थे और अपना जीवन मिथिला में बड़े पिछले अंचल में बिना रहे थे, स्वभावतः उनमें मिला-जुला प्रभाव है, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, लोकगीत, तुकबन्दियाँ, फिल्मी गीत, किस्से, कहानियाँ व अन्य शाब्दिक चमत्कार पाया जाता है। पात्र सर्वथा लोकल रंग से प्रभावित बोली बोलते हों, ऐसा नहीं है। अंग्रेजी, उर्दू, हिन्दी, बिहारी, बांगला, खिचड़ी बोली बोलते रहते हैं। बिगड़े शब्दों का प्रयोग भी करते हैं तो नये शब्द भी बना लेते हैं। स्थानीय शब्द हथियां सूड़, भतार, अगाड़ी, उचकानी, मुख्य महाफिस खाना, सपनीती, लन्द फन्द, लंगोटाबन्न, मछलोकनी, खेप खिलाना पिलाना, चुहाड़ और थूथना इत्यादि हजारों स्थानीय शब्द उपन्यास में प्रयुक्त हैं। शब्द को भावानुसार बिगाड़ भी लिया गया है। दिष्टान्त, कम्मोचारी, उत्तिम, छापीखाना, परछाद तथा परमारथ, बहुत से शब्दों को अपने आप पात्रों ने कम पढ़े होने के कारण अनपे अनुसार प्रयोग कर लिया। कहीं-कहीं तो शब्द मूल से हट गये हैं– खप्सूरती, धिरकार, परीक्खा, बेअवस्था, भाखन तथा विश्टी। लोकल कलर देने के लिए इस बिन्दु पर रेणु जी की कड़ी आलोचना भी हुई है। कहा गया था कि रेणु ने आंचलिकता को गहरा बनाने के लिए अपने आप से शब्दों को बिगाड़ा है, जो भाषा के साथ भद्दा मजाक है। पर यहाँ पर विनीत ढंग से उत्तर देना है कि रेणु जी ने आंचलिक कथा साहित्य, जो आज आलोचना का एक फलक बन कर रह गया है, की रचना अलग खेमा बनाने के लिए नहीं किया था, बल्कि पिछड़े, हाशिये पर पड़े उन अनगिनत अबूझ चेहरों को राष्ट्रीय स्वरूप देने का भगीरथ

प्रयत्न किया था, जिन्हें आजादी के राजपथ से ढकेल दिया गया था। रेणु इस अर्थ में आधुनिक पुरोधा कहे जा सकते हैं, जिन्होंने अपने को गर्त में डालकर ऐसे पिछड़ों के साथ होने का संकल्प लिया था। सहज है कि उन्हें बताने के लिए उनकी बोली, भाषा, संस्कार तथा विद्रूपताओं को व्यक्त करने के लिए प्रस्तुत भाषा को अपनाया। आलोचक ध्यान दें कि रेणु जी ने लोकल कलर आज के फिल्मकारों की तरह व्यवसाय को ध्यान में रखकर नहीं किया था। नये शब्द अंग्रेजी शब्द उर्दू शब्द, बांग्ला शब्द, प्रिय शब्द तथा गालियों का प्रयोग इन्हें व्यक्त करने के लिए किया गया था। संवाद तो उपन्यासों में भावानुसार प्रयुक्त हैं। संवादों मे लोकोक्तियाँ, मुहावरे, किस्से कहानियाँ तथा तुकबन्दियों की भरमार है। देशकाल आंचलिक कथा साहित्य की वह मूल विशेषता है, जिसमे लेखक का भोगा यथार्थ काम आया है। लेखक ने इस उपन्यास में पूर्णिया जिले के जिन गाँवों का वर्णन किया है, दूर-दूर तर अपनी स्थानीय विशेषता के लिए पूरे हिन्दुस्तान में फैली है। जुमापुर तथा नवीननगर दो स्थानों की विशेषताओं व कथाओं को इसमें शामिल किया है। जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है कि बंगाल से आये शरणार्थियों के कुछ टोलों को आधार बनाकर यह कथा बुनी गई है, जो आजादी के बाद और नई आजादी के लिए आस लगाये बैठे हैं। उनके भीतर जहाँ तरह-तरह की कुंठाये, गन्दगी, मूर्खता, जॉति पाँति तथा कामुकता ने घर कर रखा है, नई युग चेतना से प्रभावित पात्र नये उगते सूरज की ओर संकेत कर रहे हैं। नई मशीनें, पूँजीवाद तथा विज्ञान ने अपना जाल फैलाना शुरू कर दिया है। वहीं कुछ समस्यायें–आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक करवटें बदल रही हैं। रेणु जी गाँव के राजनीतिज्ञों पर कटाक्ष करते हैं–एक झूठ को दूसरे झूठ से, दूसरे को दूसरे से, तीसरे को चौथे से ढाँकते-ढाँकते मूल झूठ की जड़ मजबूत हो जाती है।'' इस कथा का उद्देश्य वास्तव में शरणार्थी समस्या को उजागर करना रहा है। वास्तव में यह उपन्यास एक ज्वलन्त समस्या से प्रारम्भ होकर छोटे-छोटे कथानकों में समाप्त हो जाता है। यह पता नहीं चल पाता कि आखिर रेणु जी क्या चाहते थे। 'जुलूस' के नामकरण पर तो उन्होंने कहा था कि मैं इस जुलूस

को देख रहा हूँ और चल भी रहा हूँ। यह जुलूस कहाँ जा रहा है, कुछ पता नहीं। वास्तव में यही उद्घोष रेणुजी की आलोचना का केन्द्र बन गया है। विद्वत्जन ने इस बात की कड़ी आलोचना किया है कि जुलूस उपन्यास का प्रारम्भ तो बड़ी आशा से किया गया था, परन्तु अन्त तक कथानक व उद्देश्य बिखर कर रह गया है। इसका कमजोर पक्ष रहा है–अन्तर्कथाओं का अनावश्यक विस्तार। लेखकों को उद्देश्य से भटकना बताया गया है। कुछ अंशों तक यह आलोचना सही हो सकती है। परन्तु विचारणीय प्रश्न यह है कि रेणु ने लगभग सभी उपन्यासों में अन्तर्कथायें विद्यमान हैं तथा सभी का कुछ न कुछ उद्देश्य रहा है। कथांचल को बारीकी से उभारने के लिए इन लघु कथाओं का सृजन किया गया है। मैला आँचल व परती परिकथा का भी उद्देश्य अन्तर्कथाओं से विश्रृंखलिकत होता नहीं दिखाई देता है। जुलूस में वर्णित छोटी छोटी कथाओं का केन्द्र भी उन बारीकियों को उभारना ही है। भटकाव न तो शिल्पगत है, न ही लोक तत्वीय ही। अतः उक्त आलोचना निराधार है। जुलूस का मूल उद्देश्य शरणार्थी समस्या के अन्तर्विन्दुओं का उल्लेख मात्र रहा है। अतएव शिल्पगत व लोक तत्वीय दृष्टि से जुलूस उपन्यास आंचलिक कथा बन गया है। महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि रेणु जी अपने शैलीगत प्रयोग से जरा भी नहीं हटे हैं, भले ही कथा के सूत्र कुछ खिसक गये हों।, समग्रतः जुलूस आंचलिक महक से रचा-बसा सार्थक उपन्यास कहा जा सकता है।

दीर्घतपा - दीर्घतपा फणीश्वर नाथ रेणु का यह चौथा उपन्यास है, जो सन् 1963 में प्रकाशित हुआ था। 'दीर्घतपा' नाम से ही ज्ञात है कि इस उपन्यास का कोई पात्र संघर्षों से भरा कोई ऐसा प्रासंगिक लक्ष्य वाला रहा होगा, जिसने लेखक के इस कथा को बुनने को प्रेरित किया होगा। जीवन भर, संघर्षों की मार सहकर नाचिका बेला ने ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया कि ''पृथ्वी का भोग जीवन भर का योग'' कहावत सिद्ध हो गयी। 'यह एक ऐसी नारी की कहानी है जो दीर्घकाल से ही तपस्या को अपना लक्ष्य समझ कर अपने को समर्पित करती रही है।'' बेला, बाँके बिहारी के दोस्तों के पाकेट क्रान्तिकारी दल के आवर्त्त से उभरकर लहरों पर तैरती, बनारस की गलियों और काल

कोठरियों से निकल कर गंगा में पाल धोकर जीवन पर जिस का विश्वास जमा था।'' ''जो सब कुछ सह गई, देशकी आजादी के नाम पर किन्तु बाँके की कायरता का फल बहुत दिनों तक भोगती रही।'' बेला सारे जिन्दगी दुःख, अपमान, आरोप झेलती रही। जेल में जाकर वह सारे आरोपों को स्वीकार कर लेती है तथा अन्त में मात्र पन्द्रह रुपये पास बुक में जमा की गई सच्चाई से भी वह लोगों को नहीं अवगत करा पाती। अपने दुखों को वह स्वयं भोगती है और प्राण विसर्जित कर देती है। कथानक है– बाँकेपुर वीमेन्स हास्टल का, जिसकी केयर टेकर हैं बेला, जिनके कड़े शासन से इस हास्टल की प्रतिष्ठा पूरे क्षेत्र में सर्वोपरि है। ''समाज सेवी संस्थाओं में इसकी बड़ी प्रतिष्ठा है।'' इसके अध्यक्ष मुख्यमंत्री जी हैं। 'वीमन्स वेलफेयर बोर्ड' के साथ ही वर्किंग वीमेन्स हास्टल भी संचालित किया जा रहा है। मिल्के सेन्टर, मेटरनिटी सेन्टर तथा शिल्प केन्द्र आदि कई और सेन्टर हैं। हास्टल के बड़े कड़े नियम हैं, जिनका पालन बेला गुप्ता द्वारा कराया जाता है। वे नियम में छूट नहीं देती हैं। भले ही किसी का कोई सम्बन्धी ही क्यों न हो। वीमेन्स हास्टल का वर्णन इस प्रकार किया गया है–जिधर ट्रेनी लड़कियाँ रहती हैं, उसे यहाँ पिछवाड़ा कहा जाता है। इधर होस्टल की महिलाओं ने इस हिस्से का नाम 'दाई किता' चला दिया है। दाई किता के बाद दीवार है। दीवार के उस पार है, मेटरनिटी सेन्टर शिल्प केन्द्र। यहाँ उस हिस्से को सिर्फ सेन्टर कहते हैं।[37] ''इस सेन्टर के महिलाओं की रज्जत गली के बच्चे तक करते थे।''

रेणु जी का यह उपन्यास आंचलिक दुनिया से हटकर एक सहकारी संस्थान में कार्यरत महिलाओं की उस आन्तरिक दुनिया से है, जिसकी अलग समस्यायें हैं। इन समस्याओं की अलग दुनिया है। शहरों में कुकुरमुत्तों की तरह उग रहे हजारों सहकारी संस्थाओं में से यह हास्टल की एक है, जिसके पात्रों मिस बेला गुप्ता तथा मिसेज आनन्द में नाटकीय संघर्ष हर क्षण चलता रहता है। इस दुनिया की अपनी विशेषतायें अलग किस्म की हैं। दोनों महिलाओं का कार्य क्षेत्र एक है, परन्तु अत्यन्त जटिल व दुरूह

---

37. दीर्घसपा – रेणु – 34

अधिकारों की स्पर्धायुक्त लड़ाई में दोनों के स्वार्थ टकराते हैं। मिसेज आनन्द अपने को स्वयंभू शासिका घोषित करती हैं जिनकी जड़ें नाना विधि स्रोतों से हैं तो बेला गुप्ता इस तंत्र के विरुद्ध एक न्यायशील आधिकारिता के लिए जीवन भर संघर्ष करती हैं। इस विवश चरित्र का अवसान अत्यन्त ही कारुणिक है। यद्यपि कि एक स्थान विशेष में कार्यरत महिलाओं की वातावरणगत विशेषताओं को इसमें उभार कर रेणु जी ने आंचलिकता के 'लेबुल' को छुड़ाने की कोशिश की है, पर पूर्ववर्ती उपन्यासों व कहानियों की शिल्पगत व लोकतत्वीय सैन्दर्य से वे बच नहीं पाये हैं। अनायास ही वे तत्व उभर कर आ गये हैं। संक्षेप में, रेणु जी द्वारा लिखित इस उपन्यास की लोकतत्वीय विशेषताओं का अनुशीलन हम इस प्रकार कर सकते हैं– परम्परागत ढंग से यह उपन्यास अन्य से भिन्न नहीं हैं। परम्परा से चले आ रहे मेले त्योहार, तीज, उत्सव व नाच गाने इसमें भी पाये जाते हैं। फ्लावर शो आडिट पार्टी, मछुआरिन नाच, वाइफ एंड हसबैण्ड नाच, चैरिटी शो, पान का आयोजन, महिला शिल्प मेला तथा बहुविधि सहायता कोष से सम्बन्धित आयोजन होते रहते हैं। पात्रों का इन मेलों, उत्सवों, आयोजनों में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेना परम्परागत रूप से है। कोई नया आयोजन होने पर भीड़ का इकट्ठा होना तथा मांगलिक कार्य के समय नाच गाना होना सर्वत्र पाया जाता है। यद्यपि कि रेणु के अन्य उपन्यासों की तरह इसमें भूतप्रेत या अन्ध विश्वास का जोर नहीं है परन्तु अपशकुन, मनौती, डायन का प्रकोप यहाँ पर विचारणीय है। गली में रहने वाली बूढ़ी औरतें भी परिवार नियोजन को अपने अन्धविश्वास के कारण ही अपशकुन समझती हैं। इसलिए उनका कहना है–''खूब कोख खाती फिरो घूम घूम कर डायन सब कहती फिरती है... बच्चे कम पैदा[38] करो। जाँति-पाँति का प्रभाव इस उपन्यास से कम है। जाँति-पाँति को पात्र समझते हैं तथा मौका आने पर इसे प्रकट जरूर करते हैं। इस होस्टल का क्लर्क जाँति-पाँति को मानने के कारण ही अंजू मंजू से हँसने में तो कोई बुराई नहीं समझता परन्तु श्रीमती आनन्द जब उससे शादी करने को कहती है तो कहता है–''उससे

---

38. दीर्घतपा – रेणु – 72

कैसे शादी करेगी। ऊ हिन्दुस्तानी है।[39] श्रीमती आनन्द कहती हैं–जो असली बिहारी है, उन्हें भी लाज नहीं है। बंगालिन माई की चरणधूलि पाकर पवित्र होते हैं।'' स्वार्थ का बोलबाला है। गन्दगी व ईर्ष्या तो हास्टल में चरम पर है। श्रीमती आनन्द के प्रभाव को कम करने के लिए'' कुछ दिनों तक और कोई काम नहीं करना चाहती। बस, रमला बैनर्जी के विषैले प्रभाव को दूर करेगी। एक-एक व्यक्ति के दिल दिमाग से उस चुड़ैल की छाया को पीछे फेंकना[40] है। ''यद्यपि कि होस्टल में काम करने वाली महिलाओं की मूल समस्या को इस उपन्यास में उभारा गया है पर आञ्चलिक समस्या जगह-जगह उभर कर आई है। कामुकता की गहरी जड़ें इस उपन्यास में परिलक्षित होती हैं। होस्टल की लड़कियों के प्रति तमाम तरह के कामुक विचार रखे जाते हैं। कुण्ठाओं से पीड़ित बागे श्रीमती आनन्द को इसत रह लुभाता है, ''भाभी बंगालिनों में सब कगुछ हो... आपको देखकर मुझे दक्षिण भारत के मन्दिरों की याद आती है।''[41] बेला की इन कामुक निगाहों से बच नहीं पाती।'' गाँव की इन भोली भाली दीखने वाली लड़कियों को देखकर पुराने पापियों के मुँह में जरूर राल भर आती है। ''कामुकता की ये बाढ़ केवल पुरुषों में ही नहीं महिलाओं में भी तीव्र है। रेवा वर्मा–''डेढ़ साल से सभी के अपनी प्रेम कहानी और अपने प्रेमी की बात चाय पिलाकर सुना रही है।'' अंजू, मंजू मिसेज आनन्द, मिस बेला गुप्ता, रुक्मिणी देवी, कुन्ती देवी, विभावती कुल मिलाकर होस्टल में रहने वाली ''हर एक लड़की छेड़ी जा रही है'' की कहावत पर उतर रही हैं। सभी के बारे में कुछ न कुछ किस्से है, कोई स्वेच्छा से इन पंक में आकण्ठ डूबी है तो कोई परिस्थिति जन्य संवेदना से। एक समय था सेन्टर की महिलाओं की इज्जत गली के बच्चे तक करते थे। बहुलांश में पात्र कुंठाग्रस्त हैं, जिनकी कहीं न कहीं जड़ें इसी

---

39. वही – 22

40. वही – 18

41. दीर्घतपा – रेणु – 12

स्थान के आसपास फैली हैं। श्यामा, तारा देवी, बागे श्रीमती आनन्द जीवन भर कुण्ठाओं से पीड़ित रहे हैं।

यहाँ पर विचारणीय प्रश्न यह उठता है कि सहकारी संस्था के इस होस्टल का आंचलिक होना किन अर्थों में सार्थक है? रेणु जी ने अपने पूर्वके उपन्यासों में घोषित किया था– हजारों बीघे सीवान में फैले अनुर्वर खेत में आशा रूपी ट्रैक्टर चलता हुआ देखकर मेरे जेहन में यह बात आ गई है कि मैला आँचल अपनी नग्नता के साथ सौन्दर्य का प्रतीत है।''[42] पर रेणु जी का यह संत्रास आजादी के पन्द्रह सालों बाद कुछ शिथिल सा होता दिख रहा है। कारण कि उन्होंने बाद के जुलूस उपन्यास में एक विशेष समस्या को तथा दीर्घतपता उपन्यास में एक वीमेन्स हास्टल की जिन्दगी पर काम करना शुरू कर दिया था। यहीं से नवीन चेतना का उदय भी होता है। इस उपन्यास में यथार्थ का नग्न चित्रण किया गया है। उपन्यास के आखीर में नारी जीवन की समग्र वेदना बेला गुप्ता के कारुणिक अवसान में प्रकट होती है और घोषित होता है–सच्चे प्राणी को बुरे परिणामों का सामना करना होता है और यही बेला के साथ हुआ।

युग चेतना के विकास के साथ राजनीतिक, सामाजिक, आर्तिक व चुनावी दलगत की समस्या का सम्यक् चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। भ्रष्टाचार चरम सीमा पर है। होस्टल के प्रबन्धक अंजू मंजू को घर पर मनोरंजन के लिए बुलाकर एकाध हफ्ते रख भी सकते हैं। दीर्घतपा में पूंजीवाद का बोलबाला है। शासक वर्ग साधारणजन को चूस रहे हैं। नारी प्रधान इस उपन्यास में नारी पात्रों की दुर्दशा व संघर्ष का यथार्थ चित्रण है। रेणु ने नारी को 'पुरुष का चमड़े का पोर्टफोलियो बैग' कहा है। आगे लिखा है–''तेरी दुर्गति अभी बाकी है। कुमार घोष तुम्हारे साथ सोयेगा... आनन्द सोयेगा... डाइरेक्टर सोयेगा...डाइरेकटर का किरानी सोयेयेगा... सभी सोयेगा... तुम उसकी सेवा करोगी... कुछ बोल नहीं सकती।[43] बावजूद इसके कि नारी अपने स्थान से गिरती नहीं

42. दीर्घतपा – रेणु – भूमिका

43. दीर्घतपा – रेणु – 47

है। वह गिर गिर कर उठती है और फिर मंजिल प्राप्त करती है। रेणु ने घोषित किया– ''बेला युग की ठुकराई हुई नारी के रूप में पाठकों के समक्ष उपस्थित होती है। परन्तु समाज से हारती नहीं है अपितु जो बेला मर गई थी पेशावर के होटल में,.. सब कुछ भूलकर नई जिन्दगी शुरू करती है।''[44] विभावती, गौरी श्यामा, बेला, तारा देवी प्रगतिशील नारी पात्रों की सशक्त उदाहरण हैं।

लोक तात्विक रूप से इस उपन्यास का चित्रण बड़ी ही मार्मिक बन पड़ा है। एक अंचल का रूप सामने आकर एक बड़े ही छोटे दायरे में सिमटा होस्टल है जहाँ सहकारी संस्थाओं में जुड़ी कुछ महिलायें हैं तथा ब आहर से इन्हें खाद पानी देने वाले कुछ पुरुष पात्र हैं, जो इन महिला पात्रों के सामने बौने नजर आते हैं।

कथानक कार्यकारी महिलाओं के हास्टल के आस-पास घूमता है। मगर उसकी जड़ें पूरे समाज में फैली हैं। पुरैनिया, मेरीगंज से भिन्न पटना शहर के कोने में बसा यह छोटा सा द्वीप 'हास्टल' अपने आप ही एक महागाथा का पर्यायवाची बन कर रह गया है। द्वीप इस अर्थ में कि हर आदमी, हर पात्र एक द्वीप है, जहाँ से खड़े होकर पूरे समाज को निहारा जा सकता है। इस होस्टल में किशनगंज व बॉकीपुर शहर की महिलायें ही रहती हैं। वर्किंग वीमेन्स हास्टल की छोटी मेम साहब मिस बेला गुप्ता तथा बड़ी मेम साहब मिसेज आनन्द के बीच चल रहे आन्तरिक संघर्ष, आधिकारिता की स्पर्धा तथा मानवीय मूल्यों के परति सजग रहने की कथा इसके इर्द-गिर्द घूमती रहती है। पात्र सर्वथा इन्हीं के इशारों पर नाचते हैं और पात्रों के बीच अत्यन्त जटिल व संश्लिष्ट उलझनें पनपती रहती हैं जो समज में कहीं न कहीं से शक्ति प्राप्त करती है। उस उपन्यास में पात्रों की संस्था जरूरत से ज्यादा हैं। ये पात्र सर्वथा सच्चाई से दूर रहकर एक नये अन्तर्विरोध में जी रहे हैं। जुलूस जैसी पुनर्वास सम्बन्धी समस्या तो इसमें नहीं है, पर एक नये किस्म की नारी समस्या जो स्वयं से झेल रही है, प्रधान रूप से उभर कर आई है। बेला गुप्ता इस परिधि के केन्द्र में है। जहाँ अंजू मंजू, रमला, गौली, चन्द्रमोहिनी,

44. वही – 8

विभावती, रुक्मिणी, कुन्ती देवी, तारा देवी, देवा वर्मा, रमा निगम, आदि पात्र स्वप्नजीवी तो हैं, पर सच्चाई का सामना करने पर रोने लगते हैं। पुरुष पात्रों में सुखमय घोष, पी० साहब, डी० साहब, बाँके बिहारी, बागे, डॉ० सिंध आदि हैं, जो इसी होस्टल के इर्द-गिर्द घूमते रहते हैं।

चरित्र-चित्रण–सबसे बड़ी समस्या इस उपन्यास में चरित्रों को लेकर है। परिस्थितियों से उभरते चरित्र इस उपन्यास में उभर नहीं पाये हैं। वास्तव में रेणु जी जिस तरह चरित्रों से आत्मीय सम्बन्ध बनाते हैं, उसमें उन्हें खींचने में सफल नहीं हो पाते हैं। इस उपन्यास को लिखने के पीछे उनका मन्तव्य था– कि शहरों में पनप रहे स्वयं सेवी संस्थाओं, सहकारी समितियों के आवासों में पल रहे अन्तर्द्वन्द व वैचारिक खींचतान तथा मानवता के लिए जूझ रहे पात्रों को सामने लाकर एक समस्या को राष्ट्रीय परिदृश्य के समक्ष प्रस्तुत किया जाय, किन्तु अफसोस है कि यह उपन्यास कार्यकारी महिलाओं अथवा कुमारियों के जीवन पर एक रिपोर्ट भर बन कर रह गया है। चरित्रों का विकास नहीं हो पाया है। 'दीर्घतपा' में पात्र नाटकीय नहीं है, अपितु परिस्थिति ही नाटकीय बन पड़ी हैं। वातावरण में हलचल का नामोनिशा नहीं, मात्र तनाव व कुण्ठा ही भरा है। पात्रों में स्वार्थ, कामुकता, गन्दगी, ईर्ष्या, मूर्खता एवं अन्धविश्वास की प्रचुर भावना भरी है। कुंठाग्रस्त पात्र आपसी लड़ाई में संस्था की दुर्गति कर देते है। संस्था की अध्यक्ष मिसेज आनन्द का चरित्र अपने आप में विवादास्पद है, जो कानाफूसी से लेकर पेपर में छपने तक फैला है। उपन्यास की नायिका मिसेज बेला गुप्ता के चरित्र को जरूर उठाया गया है, पर उसका कारुणिक अवसान भारतीय परम्परा के सर्वथा विरुद्ध है। हमारे यहाँ सुखान्त कथा-साहित्य को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। दुःख जीवन का भाग हो सकता है, पर यह मान्यता है कि ''सत्यमेवजयते''। सुखमय घोष कलाकार की अतृप्त आत्मा लिए घूमता है, जिस पर दया कर मिसेज आनन्द बेला के विरुद्ध उसे एक अस्त्र बनाना चाहती है। दुष्चक्रों से बजबजाते इस कीचड़ में रेणु जी ने अवश्य कमल खिला दिया है। कथा नीरस इसलिए हो जाती है कि चरित्र जड़वत

है। रमा निगम व रेवा वर्मा की स्थिति विचित्र है। जो इस कीचड़ को माथे लगाती है। वस्तुतः इस उपन्यास में चरित्रों का सृजन नारी की रोजमर्रा की जिन्दगी की समस्याओं को उभारने के लिए किया गया है, पर यह समस्या एक विचलन बनकर सभी पात्रों पर छा जाती है, मिसेज बेला गुप्ता इससे अछूती नहीं हैं। लेखक ने स्वयं स्वीकार किया है–''यह हीन मनोवृत्तियों का कोहरा है, जो पूरे समाज पर छा गया है। मिस बेला गुप्ता गिरफ्तार हो जाती हैं, इसी हीन मनोवृत्ति वाले तंत्र का शिकार बन जाती हैं।'' ऐसे ही ढेर सारे पुरुष व महिला पात्र इस तंत्र के शिकार होते हैं। **भाषा शैली** रेणु की भाषा की अपनी निजी शैली है, जो स्थानीय शब्दों से सुसज्जित है। उपन्यास में जगह-जगह **स्थानीय शब्द** बिगड़े शब्द, प्रिय शब्द, नये शब्द, अंग्रेजी शब्द, उर्दू शब्द, गालियाँ, उक्तियाँ तथा भदेस शब्द, भावानुसार आये हैं। लिखने में भावों की अकुलाहट से वे कुछ भी लिख देने में गुरेज नहीं करते हैं। **स्थानीय शब्दों** में धुकधुकी, जोगाड़, छागली, अगाड़ी, एत्ती बेर, बोन, सिगड़िया, भुभुक्का आदि बिगड़े शब्दों में अपगोई बदगोई, अकलंग, कुछो काट, रोब्बार, पर्वाह, वाभिन, समापत, सलिमा, फौकी, संटिग, उसखुस आदि, **नये शब्दों** में अरजंटी, बुलाहट, मनुस पीटना, उड़नचंडी, केत्तिनटुथ, गुस्साती आदि, प्रिय शब्दों चेलाइन, बतियाना, तुरत, खलास, गुस्साइन आदि, उर्दू के दर्म्यान, हलक, लबेजान आदि, **अंग्रेजी** के शब्दों हेल्थ, सर्विसेज, रिसिपांसिबिलिटी, इन्नोसेन्ट, नाइट पास, पंकुच्यूअर, डुब्लीकेट कापी, टिप्स, इफेक्ट तथा चियर्स आदि तथा फिल्मी गीत पर आधारित गीत लोकगीतों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया है। गॉवो के शब्द औरतों द्वारा बोले जाने पर भावतो समझ में आ जाता है पर अर्थ नहीं पता चलता निश्चयतः भाषा शैली में रेणुजी अन्य उपन्यासों की तरह स्थानीय रंगत का मोह नहीं छोड़ पाये हैं।

संवाद में गालियाँ, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, फिल्मी गीत, लोकगीतों के मुखड़े आदि का प्रयोग बराबर होता रहता है। हास्य व्यंग्य की प्रधानता संवादों में प्रायः पाई जाती है। उदाहरणार्थ–''देखने मे तो बम भोलानाथ है, मंत्रीजी, लेकिन नजर रस गुल्ला

पर ही लगी रहती है।'' ''छोटी मेम.... न कुमारी हैं न बेवा, सदा सुहागिन।'' दूसरी गली का कुत्ता इस गली में आवे और इस गली के कुत्ते भौं भौं नहीं करें, यह कैसे मुमकिन है?''

''यह बाँकेपुर है, गाँव नहीं, यहाँ एक से एक इरेबाज बाँके रहते हैं।'' **संवाद** बड़े रोचक व चुटीले बन पड़े हैं। होस्टल की महिलायें आपस में जब व्यवहार करती हैं तो वे बिलकुल स्थानीय बोली में संवाद बोलती हैं। **देश काल तथा उद्देश्य** के सन्दर्भ में अवगत कराना है कि यह उपन्यास आजादी के दस पन्द्रह वर्षों बाद शहरों में पनप रही स्वयं सेवी संस्थाओं में कार्यरत महिला पात्रों तथा पुरुष पात्रों की जीवन गाथा को रूपायित करने के लिए लिखा गया था। रेणु जी ने स्वयं लिखाया कि एक कोहरा का रहा है, जो सभी को अपने आगोश में ले रहा है। यह कुहासा और कुछ नहीं मानसिक यंत्रणा में जी रहे हजारों उन लोगों का दस्तावेज है, जहाँ जिन्दगी ठहर सी गई है। मिसेज आनन्द तथा मिस बेला गुप्ता एवं सुखमय घोष के चरित्र का विश्लेषण करने पर यह सिद्ध होता है कि उपन्यास की नायिका के इर्द-गिर्द घूमने वाले सारे पात्रों की लगभग एक ही व्यथा है–अन्तर्द्वन्द। देशकाल की सीमा मे कैद एक उपन्यास की सच्चाई यह है कि यह उन कार्यकारी महिलाओं की मात्र रिपोर्टिंग भर है जो शहरी घुटन भरे वातावरण में नई जिन्दगी की तलाश कर रही है, जहाँ संभावनाओं के द्वार बन्द नहीं हैं। **लोकतत्वीय** रूप में इस उपन्यास में जहाँ भोज्य पदार्थ, वाद्य यंत्र, अस्त्र-शस्त्र, पशु-पक्षी, वस्त्र, परिवहन, नाच, उत्सव, त्योहार, मेले, परम्परा आदि का पूर्व की भाँति वर्णन किया गया है, वहीं **शिल्पगत** रूप में उपन्यास की सारी विधियाँ इस उपन्यास में भी मौजूद है। यद्यपि कि मैला आँचल व परती परिकथा का विस्तृत फलक रेणु जी को आंचलिक कथाकार सिद्ध करता है, फिर भी बाद के उपन्यासों में आंचलिक तत्व कथा से दूर नहीं है। आंचलिक गंध से यह उपन्यास भी परिपूर्ण है। अन्य उपन्यासों की तरह इस उपन्यास में भी लोकतत्व का उतना ही गहरा रंग है। यद्यपि कि 'दीर्घतया' में एक तप्त नारी की कथा को ही आधार बनाया गया है तथा फलक भी बहुत सूक्ष्म है, परन्तु उसी सूक्ष्म

वातावरण व फलक पर रेणुजी के कौशल ने इसे आंचलिक बना दिया है। मर्मान्तक पीड़ा से छटपटाती नारी बेला उद्घोष करती है–अब बन्द करो अपना तमाशा। बहुत नाच चुकी। ''वह मन में एक युग से चल रहे पाप बोध को समाप्त कर नये परिवेश में साँस लेना चाहती है। रेणुजी ने शहर को भले ही कथा केन्द्र बनाया है, पर शहर में बस रहे गाँवों की जिन्दगी को बड़ी कुशलता से स्पर्श किया है। यह बड़े महत्व की बात है कि मुंशी प्रेमचन्द द्वारा लिखित गोदान की कथा विभक्तता का समूचा मोहभंग इस उपन्यास में दिखाई देता है, जहाँ एक पूरा गाँव ही शहरों में बस गया है। वहाँ की धड़कनों को सुनना महज रेणु के ही बस की बात है। दीर्घतपा उपन्यास का मूल उद्देश्य रेणुजी के शब्दों में–''यह हीन मनोवृत्तियों का कोहरा है, जो पूरे समाज पर छाया है। इस कुहरे के बीच से रास्ता बनाना होगा। अर्तात् बेला के मानसिक टूटन को वे एक सहज प्रक्रिया मानकर उसे अजेय बनाते थे।

कितने चौराहे - फणीश्वरनाथ रेणुका पाँचवा उपन्यास है–'कितने चौराहे'। यह सन् 1966 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास हेणु की वह कृति है, जिसमें पूर्वांचल की वे समस्त धड़कने कैद हैं, जहाँ स्वतन्त्रता के बाद नवसृजित राष्ट्र में परिवार की मान्यता बदल रही है। रेणु जी ने इस कृति के माध्यम से यह दर्शाया है कि किसी भी व्यक्ति, परिवार, समाज या राष्ट्र को अपने को प्रगतिशील सिद्ध करने के लिए कितने संघर्षो का सामना करना पड़ता है अर्थात् विकास के मार्ग में कितने चौराहों से गुजरना पड़ेगा। इस मार्ग में दुःख-सुख, हर्ष विषाद, उत्थान-पतन एवं हारजीत से एकाकार होना पड़ता है। 'कितने चौराहे' वह महागाथा है, जिसमें परिवार की कथा बड़े नियोजित ढंग से प्रस्तुत की गई है। पात्रों के माध्यम से रेणु जी ने कहलवाया है–''अभी सीधे चलो। राह में छाँव में कहीं बैठना नहीं है। कितने चौराहे आयेंगे। न दायें मुड़ना है, न बाँयें सीधे[45] चलते जाना।'' उद्देश्य स्पष्ट है। इस उपन्यास का नायक मनमोहन सीधे चलता

---

45. कितने चौराहे – रेणु – 99

है। क्योंकि वह जानता है कि ''चालाकी से कोई बड़ा काम नहीं होता।''[46]

'कितने चौराहे' उपन्यास में अरसिया कोर्ट की जीवन्त झाँकी प्रस्तुत की गई है। नायक मनमोहन देहात सिमरबनी से शिक्षा ग्रहण करने आता है और उसकी इच्छा है कि ''देहाती भुच्च'' से अलग हट कर कुछ बने और अन्य लोगों की तरह 'कचराही बोली' में बातें करे। स्कूल में, संन्यासी आश्रम तथा 'स्टूडेन्ट होम', में आने पर वह नई दुनिया का दर्शन करता है, यहीं से वह 'शहराती' भाषा, वेशभूषा धारण व व्यवहार करने की कोशिश करने लगता है। वस्तुतः रेणुजी ने कहानी लिखते-लिखते इसे उपन्यास बना दिया है क्योंकि हमारी समझ में यह रेणु के उपन्यास लेखन में या कथा लेखन में अजीब तरह के व्यतिक्रम को जन्म देता है। रेणुजी ने जहाँ विस्तृत फलक पर उपन्यासों की रचना कर एक बजर धरती को उर्वर बनाने की कल्पना की है, मैला आँचल को उजले आँचल में बदलने की कोशिश की है, वहीं इस लघु उपन्यास के माध्यम से किस कथ्य को कहने की कोशिश की है, यह बहुत साधारण सी बात प्रतीत होती है। इस उपन्यास की कथावस्तु के देश काल पर विचार करें तो स्पष्ट होता है कि यह स्वतन्त्रता संग्राम के किसी बिन्दु को जोड़ने में सक्षम सिद्ध नहीं होती है। चौथे दशक में उपज रहे व्यापक आन्दोलनों से शुरू होकर सन् 42 के घटनाक्रम तक यह कथा को बुनता है। कथा को बुनकर भी उतनी कसी नहीं है। इसमें आत्मकथात्मक शैली का ही प्रयोग किया गया है। इस प्रकार रेणुजी इन लघु उपन्यासों में समस्याओं से जूझते तो हैं, परन्तु उसे अपनी भव्यता प्रदान नहीं कर पाते। शहरी कथा साहित्य में भी ग्रामीण परिवेश को वे नहीं पा सके हैं। फिर भी अध्ययन की दृष्टि से प्रस्तुत उपन्यास 'कितने चौराहे' का लोकतात्विक व शिल्पगत विश्लेषण किया गया है। यद्यपि कि कथा में वह कसाब तथा शिल्पगत बुनावट नहीं आ पाई है, परन्तु रेणुजी की मूल संवेदना, पात्रों के साथ भावानुसार प्रकट हो ही जाती है। आंचलिक परिदृश्य में यह उपन्यास कहाँ तक 'फिट' बैठता है, यही विश्लेषण का मुख्य उद्देश्य है। वस्तुतः रेणु जी अपने कतानक, देशकाल,

46. वही – 110

भाषा, संवाद, लोकहास्य व चुटीली व्यंग्य शैली से कहीं भी हटते नजर नहीं आते हैं। उन्होंने अपना कथा-साहित्य में दर्जनों कहानियों, उपन्यासों, रिपोटार्जों व संस्मरणों सृजन किया है, पर रेणु अपनी वर्णन शैली से कहीं दूर नहीं गये हैं। यही कारण है कि रेणु जी ने बम्बई जैसी महानगरी में जाकर फिल्म 'तीसरी कसम' के भावांचल से अलग नहीं हट पाये। अपनी कथा-शैली, संवाद से समझौता न करने में वे सफल रहे और भारी मन से माया नगरी को अलविदा कह दिया। रेणु के शब्दों में–"कितने चौराहे आयेंगे। न दाँयें मुड़ना न बाँयें सीधे चलते जाना।" अर्थात् नो कम्प्रोमाइज[47]...एकला चलो रे। अन्य उपन्यासों की भाँति इसमें भी लोकतत्व भरपूर मात्रा में है। अन्धविश्वास गाँव में ही नहीं शहर में फैला है। मोहरिल भाभी भी कहती हैं–"रोज सुबह छींकने से मुवक्किल कैसे आयेगा।" वह यह भी मानती हैं "जिस लड़की का कपाल चौड़ा होता है, वह जवानी में ही बेवा हो जाती है। तभी तो गाँव की मैना, दयावती, महावती। सभी बहनों के कपाल चौड़े है। और सभी बेवा।" भूत पिशाच पर अटूट विश्वास गाँव वालों का तो है ही शहर में रहने वाले भी पोस्टमार्टम हाउस पर प्रेतों की छाया मानते हैं। यह अजीब संयोग है कि देहात शहर इस मामले में भेद नहीं रखते।

गन्दगी का आलम यह है कि मनमोहन के मामा का घर ऐसे स्थान पर है, जिसके सामने "सामने वाले घर में एक बीमार घोड़ा मनों लीद की ढेरी पर बंधा था। राख की टेरी के पास कुत्ते और सुअर आपस में लड़ रहे थे।"[48] गन्दगी में रहने को अपनी नियति मान चुके ये लोग इसके आदी हो गये हैं। **ईर्ष्या** समवयस्कों की स्वाभाविक क्रिया है, परन्तु इस उपन्यास के पात्रों में गहरे रूप में हैं। मोहरिल मामा का लड़का मटरू मनमोहन से ईर्ष्या करता है। उसके जी में आता है कि मनमोहन की किताबें चुराकर नदी में फेंक आये, बांगड़ को उसके बिछावन पर बाँध दे और शरबतिया मनमोहन के

---

47. कितने चौराहे - रेणु – 110

48. कितने चौराहे – रेणु – 17

बाल सँवारने लगती है तो उसका जी जलने लगता है। "शरबतिया के बारे में उसकी भी यही शिकायत रहती है कि दीदी मुझ पर हमेशा गुस्सा करती है तथा मनमोहन भैय्या से हँस हँस कर बोलती हैं।"[49] **अशिक्षा** का प्रस्तर गाँव में पूरी तरह है। मनमोहन की हार्दिक इच्छा रहती है कि वह 'कचराही' बोली में बात करें, जिससे उसे लोग शहरी समझें। अशिक्षित रहने के कारण गाँव के लोग बहुत सी बातों का सही अर्थ नहीं समझ पाते। जादू-टोना पर मनमोहन के गाँव वालों का अटूट विश्वास है। उसके बाबा मनमोहन को चेताते हैं–"साधु संन्यासी लोगों से तनिक दूर ही रहना। उन लोगों का क्या, कोई ऐसा मंतर फूँक दें कि हम लोगों को पहचानेंगे ही नहीं।"[50] इसी प्रकार उपन्यास में कई स्थानों पर जादू-टोना, अन्धविश्वास व अपढता भरी बातें सामने आती है, जिससे इस उपन्यास का परिवेश शहर होते हुए भी इसे 'सिमरबनी' से अलग नहीं किया जा सकता। मनमोहन का पूर्व का वातावरण गाँव का है, गाँव की परिपाटी है गाँवके लोग हैं, जो शहरों में भी आते-जाते हैं। मनमोहन की भाभी घोर पुरातनपंथी, अंधविश्वासी, जादू-टोने वाली तथा ढोंगी हैं, जो आंचलिक रंगत को हर स्थान पर प्रस्तुत करती हैं। **जाँति-पाँति** जैसे मनमोहन के आस-पास के गाँवों में है। कमोबेश स्टूडेण्ट होस्टल में भी वैसी ही दिखाई देती है। "स्टूडेन्टस होम" में बिहारी लड़कों का ज्यादा ख्याल नहीं किया जाता है... महाराज लोग भी बंगाली बिहारी का भेदभाव रखते हैं।"

यौन भावना का बड़ा गहरा प्रभाव अन्य उपन्यासों की तरह है। यह यौन आकर्षण माँ के प्रति हो, प्रेमिका के प्रति या अन्यकिसी महिला के प्रति। सर्वत्र यौन गन्ध बेकल हवा की तरह बह रही है। "मनमोहन को शरबतिया के आँचल की गन्ध लगी। माँ के आँचल से भी ऐसी ही गन्ध आती है, नमकीन गंध।"[51] जगह-जगह शरबतिया का

---

49. वही – 36

50. वही – 57

51. कितने चौराहे – रेणु – 31

भोला चेहरा मनमोहन को याद आता है और शरबतिया भी उसके प्रति गहन आसक्ति रखती है। **कुंठाग्रस्त** भावना प्रायः अतृप्त भावनाओं के पूर्ण न होने पर बार-बार बढ़ आना इस उपन्यास की मौलिक पहचान है। इस उपन्यास के कुछ पात्र इस कुंठा से ग्रस्त हैं। शरबतिया, पुष्पी, मनमोहन आदि पात्र कुंठा से ग्रस्त दिखाई देते हैं। मनमोहन का शरबतिया से माँ का प्यार, शरबतिया का मनमोहन से पति-प्रेम की भीख माँगना इसके सर्वोच्च उदाहरण हैं।

पर्व-त्योहार होली पर्व, मुंडन उत्सव, किशोर क्लब का सालाना जलसा, प्रीतिभोज, शाम की आरती, श्यामा संकीर्तन, बच्चों का मेला, सरस्वती पूजा, तथा गृह पूजा इत्यादि पर्व व त्योहार हैं।

लोक कथाओं में लकड़सुंघवा तथा बकरा चरवाहा आदि लोककथा में उपन्यास में अन्तर्कथाओं के रूप में आई हैं। सभा सोसायटी सिमबनी स्कूल, शहीद बालिका विद्यालय तथा किशोर क्लब आदि। **भोज्य पदार्थ** लगभग पटना शहर के आसपास के ही हैं। आमतौर पर भोज्य पदार्थों में वही चीजें हैं, जो सामान्य तौर पर प्रयोग किये जाते हैं। वस्त्र, भेषभूषा, परिवहन, फलफूल आदि लगभग वे ही हैं। आंचलिक गंधयुक्त कोई ऐसा पदार्थ नहीं है। इस उपन्यास में अन्य की भाँति स्थानीय नामों को प्रतीक नाम दिया गया है। मनमोहन-मुनिजी, सूर्यनारायण-सूरज पहलवान, पूरन विश्वास-पूर्ण विश्वास, नीलिमा-लालिमा, मोहरिल मामा-धोखालाल तथा मोती महाजन-तरकारी महाजन के नाम से पुकारा जाता है। रेणु जी ने **स्थानीय रंगत** देने के लिए इन नामों का प्रयोग किया है। गाँव का आदमी गुणानुसार आज भी गाँव में असली नाम बिगाड़ कर नया नाम रख देता है। यह एक सहज सामाजिक प्रक्रिया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'कितने चौराहे' उपन्यास में लोकतत्व का उतना ही गहरा रंग है, जितना कि अन्य उपन्यासों का रहा है। यद्यपि कि अन्य उपन्यासों में वर्णन का फलक विस्तृत रहा है परन्तु मूल लोकतात्विक रंग कहीं भी हटकर नहीं है। इस

उपन्यास के लोकतात्विक स्वरूप का वर्णन करने के पश्चात अब हम शिल्पगत तत्व पर विचार करेंगे। ''कितने चौराहे'' की कथावस्तु में अररिया कोर्ट का जीवन्त चित्रण है। जहाँ मनमोहन शिक्षा ग्रहण करने के लिए सिमरबनी से आता है। अपने मामा मोहरिल के घर ठहरता है तथा यहीं से उसके शहराती जीवन का प्रारम्भ होता है। शहर की विशेपताओं को वह स्टूडेन्ट होम मामा के घर तथा संन्यासी आश्रम के माध्यम से ही व्याप्त करता है। यह कथा 'चौथे दशक के व्यापक जनान्दोलन से प्रारम्भ होकर सन् 42 तक के घटनाक्रम को अपने में समेटे रहता है। इस कथा में जहाँ लोकतात्विक रूप से विविध स्थानीय रंगत की चर्चा की गई है, वहीं युग चेतना का भी व्यापक प्रभाव देखा जा सकता है। युवकों में युगबोध तीव्र है। गाँधी जी की गिरफ्तारी का व्यापक विरोध दिखाई देता है। पूरे उपन्यास में सन् 42 के आस-पास घटी घटनाओं को लेकर पात्रों की रचना की गई है। परन्तु आश्चर्य है कि किसी बड़े आन्दोलन का इसमें जिक्र तक नहीं है। किसी जटिल समस्या को लेकर भी यह उपन्यास नहीं लिखा गया था। **कथावस्तु** के रूप में यह आंचलिक तो नहीं है, पर उस विशेष अंचल की मौलिक विशेषताओं का दामन नहीं छोड़ा गया है। **भाषा-शैली** के कारण ही इस उपन्यास में आंचलिक गंध की महक आती है। रेणुजी की भाषा-शैली लगभग सभी उपन्यासों में एक जैसी है। **देशज शब्दों** का प्रयोग, बोली.... तुकबन्दियाँ.... गाली-गलौज.... उक्तियाँ आदि ने इसे स्थानीय भावभूमि प्रदान की है। **स्थानीय शब्दों** में कचराही बोली, किकियाना, हुंत्था, सदाबरत, परजात परमिन, मधुकरी काहे कुहे इत्यादि। शब्दों के बिगाड़ने की क्रिया यथावत् चलती रही है। इंतिहान, दतुअन, गन्ही बाबा, परतीत, सरबभच्छी, बिलैत, मोटिया, खधड़, लामनगर तथा बिरासनगर। **अंग्रेजी शब्द** भी कुछ विकारों के साथ यथावत् प्रयोग किया गया है। ड्रिल, पाट, प्रमोशन, प्रेजीडेंट, सिकस्थ, स्टैच्च योर हैण्ड, लोकल, ब्लडप्रेसर, माई नेम इज। उर्दू शब्दों का भी प्रयोग है। तामील, मुलाकाती, मुदई, माफिक, मुल्तवी तथा दर्खास्त आदि। **मुहावरे, लोकोक्तियाँ** तथा किस्से कहानियाँ तो पग-पग पर हैं। प्रिय शब्दों का प्रयोग भी रेणु जी ने किया है–बालूचर, बांगड़,

बतियाना, रेंकना आदि। नये शब्दों को रेणु ने गढ़ा भी है। ये मूल शब्दों को बिगाड़ कर बनाये गये हैं। फिल्मी गीतों पर आधारित गीत, लोकगीत, बंजाबी, बांग्ला, संस्कृत तथा उर्दू की शायरी भी प्रयुक्त है। लोकगीतों का अच्छा प्रयोग है। तुकबन्दियों से भाव अच्छे बन पड़े हैं। चरित्र-चित्रण के प्रसंग में इतना ही कहना है कि रेणु जी ने इसमें जिन पात्रों का सृजन किया है, उनमें मुख्य पात्र मनमोहन तथा शरबतिया ही है। चरित्रों में स्वार्थ, गन्दगी, कामुकता, कुंठाग्रस्तता, ईर्ष्या, अन्धविश्वास, अशिक्षा को जहाँ दर्शाया है, वहीं युग चेतना को भी व्यक्त किया है। पात्र सर्वथा मूर्ख या अज्ञानी ही नहींहै, अपितु वे नये युग बोध के प्रति सर्वथा सचेत हैं। सन् 42 के आन्दोलन के मोर्चे पर यहाँ भी 'किशोर क्लब' का गठन दिखाया गया है। तमाम पात्र विविध चौराहों से गुजरते हुए दिखाई देते हैं। **चरित्र-चित्रण** सर्वथा आंचलिक बन पड़े हैं। यद्यपि कि यह कथा गाँव से हटकर है, पर मूल जड़ें पात्रों की गाँव ही हैं, जहाँ से इन्हें खाद पानी मिलता है। स्त्री पात्र हों या पुरुष पात्र सब में चरित्र की प्रधानता है। कुछ निहित स्वार्थवश दूसरों का गला घोटने में नहीं हिचकते, वहीं मनमोहन जैसे पात्रों की गरिमा देखने लायक है। जो संवाद पात्रों द्वारा बोले जाते हैं, उसमें भाषा की प्रधानता देखते बनती है। **उक्तियाँ, मुहावरे**, लोक हास्य तथा लोक साहित्य, किस्से तथा लोकगीतों के टुकड़े फिल्मी गीत देखते बनते हैं। संवाद बड़े चटपटे हैं। भावानुसार पात्रों द्वारा संवाद स्थानीय बोली में बोले जाते हैं। ''अपनी उरदुल पुलदुल अगड़म बगड़म चीजें[52] छोटी पेटी में बाँध लो। काका **व्यंग्य** करते हैं-''ब्राह्मी रस पीने से[53] बुद्धि तेज होती है। प्रियोदा ने कहा है।'' ''आप लोग वानर सेना में क्यों नहीं भरती हो[54] जाते।'' इतने तरह के पात्र हैं कि संवादों से वैभिन्न होना स्वाभाविक है। इस प्रकार सम्पूर्ण उपन्यास

---

52. कितने चौराहे – 10

53. वही – 57

54. वही – 84

में संवाद स्थानीय रंगत से ओत-प्रोत हैं। मुहावरों में भी रेणु जी ने शब्दों को स्थानीय रंग देकर आंचलिक बना दिया है। टका धरमी-टका करमी, दाँती लगना, बाप न मारी मेढ़की, बेटा तीरंदाज। सैकड़ों उक्तियाँ, मुहावरे, लोकगीत संवादों में भरे पड़े हैं।

देशकाल जैसा कि पूर्व में वर्णित बै कि प्रस्तुत उपन्यास कितने चौराहे की कथावस्तु का सृजन सन् 42 के आन्दोलनों से जुड़ी है। एक जनान्दोलन जो चालीस के दशक के घटनाक्रम को अपने में समेटे है, रेणु जी ने इस उपन्यास को रचा है। रेणु जी ने गॉव की दिन्दगी को शहरी परिवेश में किस प्रकार प्रस्तुत किया है यह देखने लायक है। मनमोहन का बाबा शहर में जाकर अपने परिवेश को किस प्रकार न भूलने की सलाह मनमोहन को देता है। गुलाब देश क्रान्तिकारियों के आन्दोलन को रेणु जी ने बखूबी चित्रित किया है। रेणु जी ने इस देशकालके भीतर राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक समस्याओं को प्रस्तुत किया है तथा इसका समाधान भी प्रस्तुत किया है। नारी की गिरी हुई दशा को सुधारने के लिए शरबतिया के लिए खोजे गये दूनी उम्र वाले मरद को नकार देती है और शरबतिया की माँ दुतकारती है–"मैं परमान में डूब मरूँगी मगर यह कुकर्म अपनी आँखों से नहीं देख सकती।" देशकाल में घटित घटना चक्रों को स्वयं प्रस्तुत किया है तथा समाधान भी प्रस्तुत किया है। उद्देश्य निश्चयतः इस कथा का उद्देश्य रहा है, ग्रामीण जीवन को शहरी परिवेश में प्रस्तुत करना। इस लघु उपन्यास में रेणु जी ने कथा के माध्यम से सन् 42 के व्यापक आन्दोलन को व्यक्त करने का असफल प्रयास किया है। इसमें तो वे सफल नहीं हो सके पर इसी के बहाने यहा के अंचल को व्यक्त कर सके हैं। सिमरबनी मनमोहन का गाँव है। जहाँ से वह शहर आकर कुछ करना चाहता है, जिससे लोग उसे देहाती 'भुच्च' न समझें। एक ग्रामीण परिवेश से आकर शहरी परिवेश में रहकर समस्याओं के बीच पढ़कर कुछ करने की तमन्ना मनमोहन शुरू से ही करता है। यद्यपि कि वह एक पिछड़े परिवेश से निकलता है, फिर भी शहर में आकर कमोबेश उन्हीं गन्दगियों में पुनः फँस जाता है। मोहरिल मामा की समस्याग्रस्त घरेलू जिन्दगी अत्यन्त खराब है। वह एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत

नहीं करती है। इसी के बीच मनमोहन की जिन्दगी चलने लगती है। स्कूल के होस्टल, मामा के घर तथा स्कूल की इन्हीं गलियों में वह घूमता रहता है। मनमोहन को देश में चल रहे राजनीतिक सरोकारों से भी दो चार होना पड़ता है। तभी तो 'किशोर क्लब' में वह शामिल होता है, जहाँ उसके साथी सूरज नारायण, असर्फीलाल, भोला, इब्राहिम, कृत्यानन्द तथा प्रियोदा से वह आन्दोलन के कार्यक्रम तय करता है। कुछ भी बलिदान करने को ये लोग तैयार हैं। रेणु जी ने प्रस्तुत उपन्यास में एक ओर जहाँ अररिया कोर्ट का जीवन्त चित्रण किया है, वहीं आजादी के दस साल पूर्व से चल रहे आन्दोलन की एक झलक भी प्रस्तुत किया है, किन्तु कोई बड़ी बात इससे वे नहीं कह पाये। वे आंचलिक रंग से सर्वथा मुक्त नहीं हो पाते हैं। रेणुजी इस आंचलिक उपन्यास 'कितने चौराहे' के जिस छोर को पकड़ कर अपने उद्देश्य व्यक्त करना चाहते हैं, उसमें वे सफल नहीं रहे हैं, परन्तु अररिया कोर्ट व सिमरबनी के बीच चलकर अपनी विशेष रचना शैली से इसे आंचलिक उपन्यास सिद्ध करने में सफल रहे हैं। दूसरे शब्दों में प्रस्तुत उपन्यास अपनी लोकतात्विक एवं शिल्पगत शैली के कारण आंचलिक उपन्यास पूर्णरूप से सिद्ध है।

पल्टू बाबू रोड - पल्टू बाबू रोड फणीश्वरनाथ रेणु का आखिरी उपन्यास है, जिसका प्रकाशन सन् 1979 में हुआ। यद्यपि कि इसके बाद भी रेणु जी 'रामरतन राय' नाम का एक उपन्यास लिख र हे थे, पर वह उपन्यास अधूरा रह गया। रेणु रचनावली खण्ड-3 में भारत यायावर द्वारा संकलित इस अधूरे उपन्यास पर कोई विशेष काम नहीं हुआ था, न ही इसकी कोई प्रवृत्ति आगे बढ़ सकी थी, इस लिए इसे विश्लेषण का आधार नहीं बनाया जा सका। 'पल्टू बाबू रोड' को ही आखिरी उपन्यास मानकर हम इसके विविध पहलुओं पर विचार करते हैं। बल्टू बाबू रोड यद्यपि कि पुस्तकाकार रूप में सन् 1979 में प्रकाशित हुआ, पर यह उपन्यास पटना से प्रकाशित मासिक पत्रिका 'ज्योत्सना' के दिसम्बर 1959 से दिसम्बर 1960 के अंकों में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हो चुका था। रेणु जी के निधन के बाद यह पुस्तकाकार रूप में सामने आया।

यह उपन्यास एक कस्बे की कथा से सम्बन्धित है। रेणु पर आंचलिक कथाकार का ठप्पा लग चुका था, जिससे वे मुक्ति बराबर चाह रहे थे, इसीलिए बाद के उपन्यासों में उन्होंने कथा का आधार ग्रामीण पृष्ठिभूमि से हटकर शहरी पृष्ठभूमि को अपनाया, पर वे इसमें सफल नहीं हो पाये। वस्तुतः रेणु जी की रचना शैली, कथ्य शैली, लोकतात्विक विमर्श तथा शिल्पगत बैरीबाबू इस प्रकार का है कि वे इस मोहभंग से छुटकारा नहीं पाते। शहर में भी मनमोहन बेला, शरबतिया, तारा व अन्य पात्र कहाँ शहरी हो पाते हैं। उनसे उनका गाँव हटकर अलग नहीं हो पाता। पल्टू बाबू रोड में रेणु ने एक कठोर विकृत और ह्रासोन्मुख समाज को रेणु अपने गाँव का परित्याग करते हैं और बैरगाद्दी कस्बे को कथा-भूमि बनाते हैं। बैरगाद्दी कस्बा पल्टू बाबू जैसे धूर्त, चालाक, शोषक व बूढ़े के इशारे पर चलता है। पल्टू बाबू ने इस कस्बे के लिए ऐसे मार्ग का निर्माण किया है, जिस पर समाज का हर वर्ग चलकर इनके शतरंज के मोहरे बनता है। उनके इशारे पर वह अपनी गतिविधि संचालित करता है। पल्टू बाबू इन मोहरों को चलाने में माहिर हैं।

इस उपन्यास की कथा आजादी के तत्काल बाद की घटनाक्रम से जुड़ी है। इस उपन्यास में राय परिवार की चार पीढ़ियों की कथा समाहित है। बिजली इस उपन्यास की नायिका है और खलनायक के स्थान पल्टू बाबू पूरे घटनाक्रम को प्रभावित करता है। राय परिवार के साथ भोला सहाय के परिवार की कहानी जुड़ी हुई है। दोनों के सूत्रधार पल्टू बाबू हैं, जो अपनी अंगुली से तमाम पुललियाँ नाचती रहती हैं। मगर एक दिन यह हाथ सदैव के लिए रुक जाता है और अब तक तमाम जिन्दगियाँ बदल गई होती हैं। इस पूरे उपन्यास में एक पतनशील समाज की मर्मान्तक गाथा बिखरी पड़ी है। जिसके केन्द्र में पल्टू बाबू हैं और परिधि पर बिजली जैसी अनेकशः किशोरियाँ अपने प्राणों की भीख मांगती विवशता प्रकट करती हैं। समग्रतः एक कस्बे में रह रहे उच्च वर्ग के अन्तर्विरोधों, उनके पतन, पग-पग पर फैले यौनाचार आदि का चित्रण इस उपन्यास में है। निम्न वर्ग का प्रवेश न के बराबर है। आदर्शवादी पात्र एक दो हैं पर

वे दूर खड़े रहकर केवल देखते हैं, कुछ कर नहीं पाते हैं। रेणुजी ने उपन्यासों की कड़ी में इसे गॉंव से निकाल कर शहर में ले जाकर कुछ नया करने की कोशिश की है। इस पूरे उपन्यास में रेणु की पुरानी शैली बहुत कम देखने को मिलती है। उपन्यास का शहरीकरण हो गया है। आंचलिक तत्व की दृष्टि से यह उपन्यास कमजोर बन पड़ा है, पर रेणु ने जिस पतनशीलता का परिचय देना चाहा है उसमें सफल रहे हैं।

पल्टू बाबू रोड उपन्यास में लोकतात्विक स्वरूप का वर्ण करते समय हम उसमें वर्णित बिन्दुओं पर विचार करेंगे। **स्वार्थ** का बोलबाला इस पूरे उपन्यास में दिखाई देता है। बिजली और लट्टू बाबू इस परिधि से बाहर रहते हैं। मध्य वर्ग के ह्रासोन्मुख प्रवृत्ति को रूपायित करता यह उपन्यास लोकतात्विक रूप में अन्य उपन्यासों से थोड़ा हटकर है। शहरों में पनप रहे कस्बे अपनी समस्याओं व विशेषताओं के साथ इसमें उभर कर आये हैं। वे ही राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व नारीगत समस्यायें बार-बार आती हैं। पत्थर के बाड़े ने बिजली की ताल जैसी जिन्दगी को अपनी उदासी से बार-बार तोड़ा है। राय परिवार के साथ भोला सराय की कहानी भी जुड़ी है, जिसके कर्णधार हैं–पल्टू बाबू। ये अपने आस-पास पात्रों को घुमाते रहते हैं। **गन्दगी** यहाँ भी विद्यमान हैं–''ठाकुर समय पर खाना नहीं देता है। गंदी बातें बोलता है। भांग पीकर धुत रहता है। अन्य उपन्यासों की भाँति यहाँ उतनी गन्दगी नहीं है। परन्तु मूर्खता, कामुकता, कुंठाग्रस्तता तथा यौन आकर्षण पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है, जो स्थानी परंगत से भरपूर है। **परम्परा, लोकगीत, मुहावरे, लोकोक्तियाँ** तथा **किस्से** यथास्थान प्रयुक्त हुए हैं। **कामुकता** के पर्याय पल्टू बाबू हर उस लड़की के साथ व्यभिचार करने की योजना बनाता रहता है जो उसके सम्पर्क में आती हैं। बिजली, छोटा, फेला, घंटा, छवि, कंतला आदि जिन्दगियों को बर्बाद करने में उसकी मुख्य भूमिका है। इस अवसादपूर्ण स्थिति पर रेणु की तीखी निगाह रही है। इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में जगह-जगह कामुकता के दर्शन होते हैं। इस उपन्यास में पूर्व की भाँति **जाँति-पाँति, अन्धविश्वास, जादू-टोना, मूर्खता** व **अशिक्षा** पर बहुत कम प्रकाश डाला गया है, कारण कि यह उच्च वर्ग के बीच की है,

जो शहरों में रहकर जीवन जी रहे हैं। शहरों के विशेष कस्बे में चल रहे नारी शोषण व देह व्यापार के बल पर मायावी दुनिया बसाने वाले पल्टू बाबू की हकीकतों से पाठक अन्ततः परिचित हो ही जाता है। पल्टू बाबू के इशारे पर तमाम पात्र नाचते रहते हैं, और एक दिन यह इशारा अपने आप में थम जाता है, जब वह धुरी टूट जाती है और पल्टू बाबू नवोढ़ा कुंतला को छोड़कर इस दुनिया से चला जाता है। इस उपन्यास में आंचलिक तत्व मात्र शिल्पगत तत्व के कारण परिलक्षित होते हैं, लोकतत्व लगभग इसमें प्रवेश तक नहीं कर पाया है। इस कस्बे की कुछ परिस्थितिजन्य विशेषता हो सकती है, परन्तु ऐसे कस्बाई व्यापार लगभग हिन्दुस्तान के हर छोटे-बड़े कस्बे में पनप रहे हैं और हजारों मासूम जिन्दगियाँ उद्धार के लिए तड़प रही हैं।

भ्रष्टाचार के पर्याय हैं पल्टू बाबू। तभी तो हाकिम हुक्कामों के घर चोर दरवाजों से बहुत पहले ही परिचित रहे हैं पल्टू बाबू। बदले की भावना भी पात्रों में भरी पड़ी है। 'कुंतला बदला लेगी। सभी से। अपने भाई बाप से, समाज से, गोधन से, बिजली से, छबि से। ''अर्थात् पात्रों से रेणु जी ने बहुत कुछ कहलवा दिया है। लोकतत्वीय रूप से यह उपन्यास आंचलिकता से दूर ही दिखाई पड़ता है। शिल्पगत तत्व रेणु जी की अपनी शैली के कारण इनके सभी कथा साहित्य में जगह-जगह पाये जाते हैं। कथावस्तु, भाषा-शैली, संवाद, चरित्र-चित्रण, देशकाल तथा उद्देश्य के साँचे में यदि इस उपन्यास को कसा जाय तथा सम्यक परीक्षण किया जाय तो स्पष्ट होता है कि रेणु द्वारा लिखे इस उपन्यास में वे सारे तत्व मौजूद हैं।

कथावस्तु - पल्टू बाबू रोड उपन्यास एक परिवार के केन्द्र में परिवर्तित होते हुए कस्बे की बहुत मनोरंजक कथा है, जिसमें छोटे-छोटे पात्रों द्वारा बड़ा ही नाटकीय दृश्य प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास में राय साहब के परिवार की आन्तरिक खराबी को लेते हुए एक ऐसा मिथक प्रस्तुत किया गया है, जिसमें सब ओर से विपत्तियाँ हैं और पात्र मानसिक यंत्रणा के बीच जी रहे हैं। लट्टू बाबू और बिजली की कथा कुछ अलग है। बिजली इस कथा की नायिका है और खलनायक के रूप में पल्टू बाबू का चरित्र

पाठकों को घृणा करने पर मजबूर करता है। अमलेन्द्र राय का परिवार कभी अभिजात्य की श्रेणी में गिना जाता था। आज उसके भग्नावशेष हैं और बिजली उसके केन्द्र में है। वस्तुतः उपन्यास की कथावस्तु ऐसे कस्बे की कहानी है, जहाँ मानसिक यंत्रणा का कारोबार है। स्थानीयता की रंगत से सराबोर यह उपन्यास कथावस्तु को विशेष बनाती है। **भाषा-शैली** उस उपन्यास में भी स्थानीय शब्दों का प्रयोग किया गया है। स्थानीय शब्द तो जगह-जगह प्रयोग किये गये हैं। जहाँ जैसे भाव आया है वैसे ही स्थानीय शब्दों का प्रयोग किया गया है। रेणु जी की भाषा-बोली-बानी-युक्तियाँ, मुहावरे या कहावतें कहीं भी उनसे छूटती नजर नहीं आती हैं। इस उपन्यास में भी उन्हीं का बाहुल्य है।

बिगड़े शब्द–छन, फोटू, क्रिस्तान, हनीबूल, स्क्वायरो, नोमिनेट, टड़ंग, कुकरम, आदि जगह-जगह आये हैं। पूरे उपन्यास में ये शब्द यथास्थान भावों को व्यक्त करने के लिये दर्शाये गये हैं। रेणु जी ने **नये शब्दों** में–खखारे, बतियाना, फुलवना, गरियाना या आदि का यथास्तान प्रयोग किया है। उपन्यास में **अंग्रेजी शब्दों** को आई टेक टू टाक, स्टैथ स्कोप, इस्तीफा आदि को भी लाया गया है। इस उपन्यास में अंग्रेजी शब्द आवश्यकता से अधिक प्रयुक्त है। इसके अतिरिक्त पूर्व की भाँति **उर्दू शब्दों** जिरह, गजब, अखबार आदि शब्दों का प्रयोग है। का प्रयोग ही उर्दू तथा अंग्रेजी के अलावा **बांगला**–मोछल भानेर, बियो, तोमरा, गोल्लाय, आभार, किछुई, भालो, लागछे इत्यादि का प्रयोग है। **पहनावा**–रेशमी पगड़ी, कुर्त्ता, पैण्ट, बुशर्ट आदि बहुत से पहनावे हैं, जो इस उपन्यास में प्रयुक्त हुए हैं। **सवारी**–फिटम गाड़ी, टमटम, किश्ती, मोर, साइकिल, कार इत्यादि का प्रयोग किया गया है। **गालियाँ**–साले, हरामजादे, कुत्ता, मूर्ख, हाड़बज्जात एवं नीच जाति आदि के द्वारा गाली दी जाती है। **वाद्य यन्त्र**– ढोल, ढाक, शहनाई, बाजा में प्रमुख रूप से प्रयुक्त है। संवादों में बड़ी सहजता है।

इस उपन्यास में पात्रों द्वारा कहे गये **संवाद** पूरी तरह से स्थानीय रंगत लिये हुये हैं। संवादों में नाटकीयता, वाक्पटुता एवं शैलीगत आंचलिकता परिलक्षित होती है। चूँकि यह मध्यम वर्ग की कथा से जुड़ा है तथा कस्बे की अभिजात्य शैली का पुट इसमें सर्वत्र

है, इसलिए संवादों में अंग्रेजियत का प्रभाव है। संवादों में लोकोक्तियाँ मुहारवे, किस्से कहानियाँ व लोक हास्य का भाव पूरी तरह से छाया हुआ है। **लोकगीत** भी इसमें प्रयुक्त हैं–

उर्ध गगने बाजे का दल

निम्न उतला धरणी तल

अरुण प्रान्तेर तरुण दल

चल रे चल रे चल।।[55]

सनातनी भावों को व्यक्त करने के लिए ताल के साथ गाना प्रारम्भ किया– अरे, की कैछी काचुर माचुर

कि ये बो लै छो टारी।

x x x

अजी कोटलिया में जाकर बदल जाइये... जी... ई... मुरली बाबू की हास्य शैली - वाह! खूब हिसाब लगाया। आधा घर कांग्रेसी और आधा घर सोशलिस्ट.....।

पात्रों में पल्टू बाबू, मुरली, लट्टू बाबू, हरनाम सिंध, सहाय फेला तथा रमा छवि, बिजली, कना तथा गृहस्वामिनी और बहुत से पात्र **संवादों** में बड़ी नाटकीयता रखते हैं। भावानुसार वे स्थानीय शब्दों के साथ गालियों, मुहावरों, उक्तियों, किस्सों एवं लोकहास्य द्वारा अपनी बात कहते हैं। पात्र कभी-कभी लोकगीत गाते हैं तथा नृत्य का भी आनन्द संवादों में पेश करते हैं। कुल मिलाकर संवाद स्थानीय रंग में डूबे रहते हैं, जिससे पल्टू बाबू रोड उपन्यास में बैठ ही ढेर सारी विशेषतायें प्रकट करते हैं, जो पहले से रेणु जी के उपन्यासों ये हैं। **चरित्र-चित्रण** मध्यवर्गीय परिवार का है, जहाँ घुटन

55. पल्टू बाबू रोड – रेणु – 74

व संत्रास छाया है। निरीह से दिखने वाले पात्र चरित्रों की सूचना बड़ी गम्भीरता से देते हुए दिखाई देते हैं। भारतीय नारी की नियति से जुड़ा कथानक 'पल्टू बाबू रोड' एक अव्यक्त ऊर्जा को निःसृत करता दिखाई देता है। पल्टू बाबू लट्टू, जयराम सिंघ, मुरली, गोछमल, केला रामटहल, घंटा तथा बिजली, छबि, कना कुंतला के चरित्र पूरे उपन्यासों में घुमते रहते हैं तथा सभी के केन्द्र में है–पल्टू बाबू। फूल बागान की यह दुनिया बिटोरियन से ज्यादा 'पिकारेस्क' है। सामाजिक पतनशीलता व दहशत की जिन्दगी लिए इस उपन्यास के पात्र चरित्र में भले ही साधारण हैं, पर उनसे निकली सूचना पूरे समाज के लिए अत्यन्त विस्मयकारी है। इन समस्याओं के प्रति रेणु की दृष्टिपरकता निरर्थक नहीं हो सकती है। रेणु जी ने इस चरित्रों के माध्यम से नारी की अवसातपूर्ण स्थिति तथा पतनशील समज की त्रासद स्थिति का वर्णन किया है। वस्तुतः रेणु जी इस उपन्यास तक आते-आते यथार्थोन्मुख होते दिखाई देते हैं। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह उपन्यास लोकल रंगत लेते हुए दिखाई देता है। देश काल इस उपन्यास की कथा आजादी के तत्काल बाद के घटनाक्रम से जुड़ी है। किस प्रकार कस्बे का एक परिवार मानसिक यंत्रणा के बीच बदलती परिस्थिति का सामना करता है, जो अपने समकालीन वास्तविकता से एकदम दूर होता जा रहा है। तेजी से बदलते हुए कस्बे की कहानी में पूरी तरह आन्तरिक बिखराब है। राय परिवार का आन्तरिक यंत्र बिगड़ा हुआ है। परिवार का हर सदस्य इस बिगड़ी स्थिति से परेशान है। इसमें सिर्फ लट्टू बाबू और बिजली बचते हैं, जो इस स्थिति से परेशान नहीं है। इस प्रकार तमाम विरोधाभासों के बीच हम देखते हैं कि 'पल्टू बाबू रोड' उपन्यास का देशकाल की दृष्टि से वही महत्व है, जो आजादी के तुरन्त बाद लिखे गये इतिहास का। बैरगाद्दी कस्बा–जिसकी नियति पल्टू बाबू जैसे धूर्त व कामुक व्यक्ति के हाथ में है। आजादी के तुरन्त बाद के उच्च वरगीय अन्तर्विरोधों, उसके पतन तथा यौनाचार आदि का चित्रण इस उपन्यास में है। समग्रतः ''पल्टू बाबू रोड'' रेणु द्वारा लिखित वह उपन्यास है, जिसमें मध्यम वर्ग व उच्च वर्ग के अधःपतन की कहानी है। लोकतत्व के रूप में तो यह कम आंचलिक बन पड़ा है,

परन्तु शिलपगत रूप में यह उपन्यास आंचलिकता की पूर्ण गन्ध लिए हुए है। रेणु जी द्वारा लिखे गये उपन्यासों में मैला आंचल व परती परिकथा जैसी आंचलिकता का बोध अन्य मे नहीं मिलता पर वे इस गन्ध से बच नहीं पाये हैं। रेणु जी द्वारा लिखित मैला आंचल, परती परिकथा, जुलूस, दीर्घतपा, कितने चौराहे तथा पल्टू बाबू रोड उपन्यासों का लोकतत्वीय व शिल्पगत विश्लेषण किया, जिसमें यह पाया गया कि पहले के दो उपन्यास सर्वथा आंचलिक हुए हैं। इसे रेणु जी ने स्वीकार भी किया है। आंचलिक ठप्पा लगने के भय से रेणु जी ने अपने रवैये में बदलाव लाते हुए कस्बे से शहर की ओर कलम बढ़ाई पर आंचलिक मोह से वे पूरी तरह नहीं उबर पाये। भाषा शैली, संवाद, चरित्र चित्रण, देश काल, उद्देश्य की दृष्टि से सभी उपन्यास आंचलिक बन पड़े हैं। मैला आंचल व परती परिकथा जैसी आंचलिक विशेषता और उपन्यासों में नहीं है, पर आंचलिकता की गंध में सब में है। रेणु जी ने अपना उद्देश्य भी व्यक्त किया था–इसमें शूल भी हैं, फूल भी और काँटे भी। इस मोह से बचकर निकलना संभव नहीं। रेणु जी की मानसिक बनावट ऐसी थी और अंचल को इन्होंने इतना भोगा है कि इस रंग से उबरा नहीं जा सकता। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि उनके सारे उपन्यासों में आंचलिकता की गन्ध रची बसी है।

रेणु का कहानी संसार– आंचलिक कथाकार फणीश्वर नाथ रेणु जी ने उपन्यासों के साथ-साथ सैकड़ों प्रकाशित अप्रकाशित कहानियों की रचना की है। बहुत सी कहानियों की खोज मेरे द्वारा विविध विश्वविद्यालयों, पत्रिकाओं एवं समाचार पत्रों के रूप में प्राप्त हुई। अथक परिश्रम के बाद उनकी विविध रंगों में डूबी कहानियों का संकलन किया। इसमें भारत यायावर द्वारा सम्पादित रेणु रचनावली के भाग-1 से काफी सहायता मिली, जिसमें लगभग सभी कहानियाँ संकलित हैं। रेणु जी द्वारा लिखित व उपलब्ध कहानियों का विवरण इस प्रकार है–बटबाबा, कलाकार, पहलवान की ढोलक, न मिटने वाली भूख, टेबुल, कपड़धर, तवशुभ नामे, रेखायें : वृत्त चक्र अक्ल और भैंस नेपथ्य का अभिनेता, रखवाला, पार्टी का भूत, प्रजा सत्ता, जड़ाऊ भुखड़ा,

नित्यलीला, तीर्थोदक, सिरपंचमी का सगुन, पंचलाइट, तीन बिन्दिया, ठेस लाल पान की बेगम, तीसरी कसम, रसप्रिया, वण्डरफुल, स्टूडियो, टौन्टी नाइन का खेल, धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे, खंडहर, रेखा में वृत्तचक्र, इतिहास, मजहब और आदमी, बीमारों की दुनिया में, रसूल मिसतिरी प्राणों में घुले हुए रंग, कस्बे की लड़की अतिथि सत्कार, तँबे एकला चलो रे, एक लोकगीत के विद्यापति, अच्छे आदमी, संवदिया, हाथ का जस और बाक का तस, एक श्रावणी दोपहरी की धूप, रोमांस शून्य प्रेमकथा की भूमिका, काकचरित, एक आदिम रात्रि की महक, उच्चाटन, आत्मसाक्षी, आजाद परिन्दे, संकट नैना जोगिनि, निकट संकट, अभिनय, विघटन के क्षण, जलवा न जाने केहिवेश में मिथुन राशि, एक अकहानी का सुपात्र, दस गज्जा के इस पार और उस पार, एक रंगबाज गाँव की भूमिका, अग्नि संचारक, लफड़ा, मन का रंग, जैव, अग्निखोर तथा भित्ति चित्र की मयूरी आदि। इसके अलावा बहुत से संस्मरणात्मक कथा चित्र, रिपोर्ताज एवं कथा सामग्री है, जो बिखरी और अव्यवस्थित है, जिसे कोई नाम दिया जाना संभव नहीं है। वस्तुतः इस खोज में बहुत से विश्वविद्यालयों, संस्थानों, समाचार समूह के कार्यालयों एवं पत्रिकाओं के दफ्तरों का वर्षो चक्कर लगाना पड़ा है, जिससे यह सामग्री सम्यक् रूप से मिलने में सफलता प्राप्त हुई है। भारत यायावर जी का मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ कि उन्होंने रेणु रचनावली को पाँच खण्डों में प्रकाशित कर शोध को अवश्य ही सरल बना दिया है। रेणु जी की कहानियों को केन्द्र में रखकर आंचलिकता के परिप्रेक्ष्य में हम अन्वेषण करते हैं। रेणु द्वारा रची गई कहानियों के पीछे मूल मन्तव्य था 'आदमी' की खोज। रेणु प्रेमचन्द के बाद ग्रामीण जीवन के सबसे प्रमुख कथाकार हैं। हमने उनके द्वारा लिखित उपन्यासों का अध्ययन पिछले पृष्ठों में प्रस्तुत किया है। अब हम कहानी पर चर्चा करेंगे।

ग्रामीण जीवन को प्रस्तुत करते समय रेणु ने शिल्पगत व लोकतत्व की दृष्टि प्रेमचन्द से अपने को अलग किया। रेणु ने प्रेमचन्द की तरह निम्नवर्गीय पात्रों–हरिजन, बढ़ी, मुसहर, कर्मकार, सोनार, अहिर और बंजारों के जीवन-दशा पर कलम चलाई

है, पर वे प्रेमचन्द से बहुत अंशों में बिलकुल अलग हैं। रचना शिल्प एवं लोक तत्व मे दोनों महान लेखकों मे व्यापक भेद है। रेणु जी ने अपना कथा के केन्द्र में जिन्हें रखा है, उन्हीं के शब्दों में–मैने ज़मीन, भूमिहीनों और खेतिहर मजदूरों की समस्याओं को लेकर बातें कीं। 'हरिजन नाम देकर गरीबों को छला गया, लेकिन वे आजादी के बाद भी पिछड़े अछूत और आक्रान्त होते रहे। शोषण कभी बन्द नहीं हुआ।'' अर्थात् उनके लेखनी पर गरीब, शोषित व उपेक्षित मनुष्य ही छाया रहा। रेणु जी ढेर सारी आलोचनाओं के बावजूद 'आदमी' की खोज में लगे रहे। कहानियों के बारे में शमशेर बहादुर सिह को कविता दुहराते हैं– ''बात बोलेगी हम नहीं.... भेद खोलेगी बात ही।'' वस्तुतः रेणु जी मृत्यु पर्यन्त 'आदमी' की तलाश में लगे रहे। पंचकौड़ी मृदंगिया (रसप्रिया) जो नाच-गाना सिखाकर अपना पेट पालता है, बुढ़ापे में जिसकी बोली 'फटी भौंथी' की तरह हो गयी है। हिरामन (तीसरी कसम) काला कलूटा, चालीस साला गाड़ीवान प्रेमी, भोला-भाला; हीराबाई–मेले में नाचने वाली पतुरिया पर निश्छल कोमल; सिरचन (ठेस) खाने खाने को मोहताज पर अक्खड़ स्वाभिमानी कलाकार; बिरजू की माँ (लाल पान की बेगम) सर्वे सेटलमेंट से प्राप्त थोड़ी सी धनहर जमीन पर ही 'लाल पान की बेगम' की तरह दीखती, हरगोविन मानवीय संवेदना संवदिया से ओत-प्रोत भावुक प्राणी; रात्रि भर मिट्टी की गन्ध से मदमाता करमा (आदिम रात्रि की महक) गाँव की संकीर्ण वर्णवादिता व आपसी ईर्ष्या-द्वेष को रोकने की खातिर अपने को बलिदान कर देने वाला, 'एकला चलो रे' के दर्शन को मानने वाला किशन महाराज तथा साम्प्रदायिकता के खिलाफ संघर्षरत फातिमा आदि असंख्य पात्र हैं, जो 'आदमी' को खोज में कहानीकार रेणु द्वारा रचे गये हैं। रेणु के ये 'माटी के महादेव' कालान्तर में आंचलिक कथा के मील के पत्थर साबित हुए हैं, जिन पर समूचा अंचल माटी की महक से महमहाता है। यही वे 'आदमी' हैं, व्यवस्था द्वारा सताये गये उपेक्षित, दलित, पर बेहद मानवीय, जमीन से जुड़े हुए, सांस्कृतिक सम्पदा से सम्पन्न। प्रेम और राग में एक दम मस्त। रेणु द्वारा रचित तमाम कहानियों में हम लोक तात्विक व शिल्पगत सौन्दर्य

देखने की कोशिश करेंगे। आंचलिकता जिन दो तत्वों से तैयार होती है, उनमें लोकतात्विक दृष्टि से उस अंचल के पर्व-त्योहार, परम्परा, लोकगीत, रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा एवं पहनावा सम्बन्धी लोक संस्कृति तथा शिल्पगत रूप से कथावस्तु, भाषा शैली, चरित्र चित्रण, देशकाल संवाद तथा उद्देश्य को पहचाना जाता है, जिसमें मुख्य रूप से कथावस्तु का चयन, चरित्र-चित्रण एवं भाषा-शैली ही मुख्य हैं। डॉ० शिव प्रसाद सिंह कहते हैं–"आंचलिक वे ही कहानियाँ हैं, जो किसी जनपद के जीवन, रहन-सहन, भाषा, रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, पर्व, उत्सव, लोक जीवन, गीत, नृत्य आदि को चित्रित करना ही अपना मुख्य उद्देश्य माने। आंचलिक तत्व उनके साध्य होते हैं। रेणु की आंचलिकत्व कहानियों में 'रसप्रिया', लाल पान की बेगम, अच्छे आदमी, तीसरी कसम, पंचलाइट, तीर्थोदक, सिर पंचमी का सगुन, विकट संकट, हाथ का जस बाक का सत। इनमे ग्रामीण परिवेश को ही आधार बनाया गया है तथा पूरे अंचल के कहानी में रूपायित किया गया है।

रेणु की कहानियों में वातावरण की मुख्य भूमिका है। ये वातावरण प्रायः गाँव से सम्बन्धित है। शहर की भी कहानियाँ रेणु द्वारा लिखी गई है। परजिन तत्वों से रेणु को आंचलिक कथाकार कहा जाता है, वे तत्व गाँव से ही आते हैं। क्रिया-कलापों से भरी हुई जिन्दगी उनकी कहानी के वातावरण को तैयार करती है। **'तीसरी कसम'** का हीरामन पूर्णिया जिले का देहाती नौजवान है जो अपने बैलों के सिवा किसी अन्य बात में दिलचस्पी लेता है। हीरामन भाई से बढ़कर भाभी की इज्जत करता है, जहाँ परम्परा रीति रिवाज का हि आसर दिखाई देता है। हीरामन की शादी बचपन में हुई थी और दुलहिन भी भाहग गई दूसरी शादी?... दूसरी शादी न करने के अनेक कारण हैं–भाभी की जिद। कुमारी लड़की से हीरामन की शादी कैसे होगी। कुमारी का मतलब सात आठ साल की लड़की जहाँ रूढ़िवादिता, परम्परा तथा मूर्खता का बोलबाला है। कौन मानता है सरधा कानून। कोई लड़की वाला दो ब्याहू को अपनी लड़की देने को गरीबी के कारण ही तो राजी होगा। भाभी के आगे भइया की भी नहीं चलती। इस प्रकार हम देख

रहे हैं कि रेणु जी की कहानियों में परम्परा, रीति-रिवाज, गाँव से लगाव, **मेले-त्योहार, लोकनृत्य, उक्तियाँ, कामुकता** एवं **कुंठायें** अपने पूरे रूप में उभर कर आई हैं। एक-एक कहानी का विश्लेषण करने पर उनमें सारे आंचलिक तत्व उभर कर सामने आते हैं। सुविधा की दृष्टि से हम रेणु की प्रमुख कहानियों का आंचलिक तत्व की दृष्टि से विश्लेषण करेंगे। 'तीसरी कसम' का हिरामन गाँव में जाता है और नौटंकी की हीराबाई को देखते ही उससे मुहब्बत करने लगता है। और अन्ततः उसे बहुत चाहते हुए भी नहीं प्राप्त कर पाता। हीरा बाई एक रोज नौटंकी कम्पनी के साथ चली जाती है और पल प्लेटफार्म पर खड़े-खड़े सोचता है—प्लेटफार्म खाली... सब खाली... खोखले... मालगाड़ी के डिब्बे... दुनिया ही खाली हो गई मानो...।

हिरामन के लिए सब कुछ छोड़ देना आसान है, पर गाड़ीवानी नहीं है। उसे परम्परा से कितना मोह है। उसके मन में औरत के प्रति कितना लगाब है—परदा डालने पर भी पीठ में गुद्‌गुदी होती है।'' यह फूल सी मटक रही औरत उसकी गँवई बातों में इतनी गहरी रुचि लेती है। हीराबाई को लोकगीत और लोक कथायें बहुत पसन्द हैं। हीराबाई के बारे में वह सोचता है कि इतनी सुन्दर औरत डाकिन पिशाचिन हो सकती है उससे उसका अन्धविश्वास व रूढ़िवादिता ही झलकती है। हिरामन का कलेजा धड़क उठता है। वह हीराबाई को लेकर चलता है तो अपने अतीत में खो जाता है। जैसे वह अपनी दुलहिन को लेकर आया है और गाँव के बच्चे तालियाँ पीट रहे हैं। दिनों दिन वह हीराबाई की ओर खिंचा चला आता है। नौटंकी बनना उसके लिए एक समस्या बन जाता है और मन में सोचता है—''नहीं जी, एक रात नौटंकी देखकर जिन्दगी भर बोली वोली कौन सुने...'' ''देशी मुर्गी विलायती चाल।''[56] इस परकार हिरामन की यह सोच उसके चरित्र का एक अविभाज्य हिस्सा है। वह नौटंकी देखना भी चाहता है और पूरे गाँव में हँसी का पात्र भी नहीं बनना चाहता है। नगाड़े की आवाज सुनते ही हीराबाई की पुकार कानों के पास गूँजने लगती... भैया... भीता... हिरामन...

---

56. तीसरी कसम – रेणु।

गुरूजी...। हमेशा कोई न कोई बाजा उसके मन में बजता रहता है।''[57] वस्तुतः 'तीसरी कसम' कहानी रेणु की प्रतिनिधि कहाना है, जिसमें आंचलिक तत्व पूरी तरह उभर कर सामने आते हैं। हिरामन का परम्परा से जुड़े रहना, रीति रिवाज, मेले, नाटक-नौटंकी, त्योहार में पूरी तरह भाग लेना अपने पूरे उभार पर है।

''तीसरी कमस'' में आंचलिक तत्व के लोकतत्व पूरी तरह छाये हैं। **पहनावा, उत्सव, लोकगीत, संस्कार, रहन-सहन, ग्रामीण बोली, उक्तियाँ** तथा **रीति-रिवाज** सब इसमें हैं। लोकतात्विक दृष्टि से यह कहानी आंचलिकता से परिपूर्ण है। शिल्पगत तत्वों में कथावस्तु एक ग्रामीण अंचल से सम्बन्धित है। हिरामन गाँव का भोलाभाला चालोस साला हट्टा कट्टा नौजवान नौटंकी कम्पनी की हीराबाई से जुड़ता है और तमाम अन्तर्विरोधों के बावजूद वह उसे नहीं पाता है। और हीराबाई एक दिन उसे छोड़कर चली जाती है और वह प्लेटफार्म पर खाली खड़ा रह जाता है और गाड़ी को देखते रह जाता है। भाषा की दृष्टि से यह कहानी बिल्कुल आंचलिक बन पड़ी है। इसमें देशज शब्दों का प्रयोग, **मुहावरे, उक्तियाँ एवं बिगड़े, उर्दू नये शब्दों** का सहज प्रयोग मिलता है। भावानुसार रेणु जी ने इसमें सहज देशी शब्दों का प्रयोग किया है। अतः भाषाई व बोली की दृष्टि से भी यह आंचलिकता से भरपूर है। हिरामन का बुदबुदाना भाषा को कितना रोचक बना देता है–''नही जी! एक रात नौटंकी देखकर जिन्दगी भर बोली ठोली कौन सुने.... देसी मुर्गी बिलायती चाल।''[58] सथान विशेष की बोली का सर्वोत्तम उदाहरण है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भीयह कहानी आंचलिक मूल रागिनियों की ही प्रस्तुति है। तीन बिन्दिया कहानी की भूमिका में रेणु जी ने लिखा था–''मूल राग से आँख मिचौली खेलती ये छोटी-छोटी आंचलिक रागिनियाँ....।''[59] चरित्र-

57. तीसरी कसम – रेणु।

58. तीसरी कसम – रेणु।

59. तीन बिन्दिया – रेणु।

चित्रण में इस कहानी की कोई तुलना नहीं है। हिरामन अवसादपूर्ण स्थिति का हीरो है। हिरामन को यह कहानी आत्म निषेध के अवसादपूर्ण क्षणों के भीतर अत्यन्त उल्लसित जीवन्तता का एक ताना-बाना बुनती है। हीराबाई और हिरामन का अस्फुट प्रेम इस कहानी के इर्द-गिर्द घूमता रहता है। तीसरी कसम में हिरामत का कसम खाना

पूरी कहानी के चारित्रिक विकास का द्योतक है। हिरामन का दो बार धोखा खाना और तीसरी बार धोखा खाकर टूट जाना गहरे अवसाद का प्रतीक है। प्रथम कसम का सन्दर्भ खतरनाक है। दूसरी कसम बाँस की लछी वाली बैलगाड़ी का बेकाबू होने जाने पर तथा तीसरी कमस का रोमांस गहरे अर्थ की प्रतिति से हमें जोड़ता है पर हिरामन को तोड़ देता है। इस प्रकार **चरित्र** की दृष्टि से इसमें स्थानीय रंगत का खेल बड़ा ही गहरा है।

संवाद बड़े रोचक बन पड़े हैं– ''बेकार मेला बाजार में हुज्ज मत कीजिए।'' हिरामन का कहना है– चलो भैय्यन जान बचेगी तो ऐसी ऐसी सग्गड़ गाड़ी बहुत मिलेगी। एक....दो....तीन...नौ...दो ग्यारह[60] तीसरी कम एक साथ गद्यगीत, नाटक, ...कहानी....संस्मरण...सब है। मूलरात्र तो गहरा अवसाद ही है। संवाद स्थानों पर बोली से युक्त है, जिसमें मुहावरे, उक्तियाँ, देशज शब्द तथा गहरी जीवन्तता पैठी है। देश काल से भी यह कहानी आजादी के आस-पास के गहरे रंग को रूपायित करती है। मेला गाँव की दुनिया का एक सार्वजनिक मंच तथा नौटंकी इस मेले का अंग है, जहाँ तीसरी कसम कहानी का देशकाल रचा गया है। यह कहानी खुली पगडंडी पर कथा रस की तरह चल रही है, जो भोगा हुआ पदार्थ है। परिकथा नहीं एक अनुभूत सत्य है.... सचमुच हिरामन की गाड़ी में उसके भीतर है पीठ में उभरने वाली यह गंध इस घटना के साथ उसके सम्पूर्ण अस्तित्व को घेर लेती है.... इस कटहली चम्पा... इस कहानी में एक विधुर मन का अवसाद इस आत्मीयता के साथ धुल गया है। देशकाल

60. तीसरी कसम– रेणु

के साथ लाल मोहर, पलट दास तथा धुन्नी राम की हिरामन के साथ गुजरते हैं, पर हिरामन की दुनिया में गीता ही सब कुछ है। एकाएक दृश्य बदलता है और वह आँखे खोलने पर पाता है कि गाड़ी चली गई..... खाली .... मालरवाड़ी के खाली डिब्बे। वस्तुतः सात **देशकाल** इसी घटना से जुड़ा हुआ है। 'तीसरी कसम' कहानी का उद्देश्य ग्रामीण परिवेश में बस रहे एक भोले-भाले विधुर के जीवन में आये आशापूर्ण क्षणों का बड़ी निष्ठुरता से चले जाना और फिर उन्हें न प्राप्त करने की कसमें खा लेना ही रहा है। हिरामन के माध्यम से उस पूरे अंचल की कथा कहना तथा हीराबाई के माध्यम से नौटंकी कम्पनी के प्रति गाँवो का लगाव तथा **तीज-त्योहार, मेले-ठेले, मनोरंजन** व परम्पराओं के प्रति गाँव की गहरी आसक्ति व्यक्त की गई है। रेणुजी की इस प्रतिनिधि कहानी के सभी तत्वों का अन्वेषण करने से यह स्पष्ट होता है कि 'तीसरी कसम' पूर्णतया आंचलिक कहानी है, इसी तर्ज पर अन्य भी कुछ कहानियाँ हैं, पर उनमें मूलराग की वह बेचैनी नहीं दिखाई देती है।

'रसप्रिया' कहानी रेणु द्वारा लिखी गई कहानियों में बड़ी रोचक व घटना प्रधान है। पंचकौड़ी मिरदंगिया के जीवन की व्यथा-कथा ही इस कहानी का आधार है। वह इस कहानी का मुख्य पात्र है। उसकी ज़िन्दगी की कथा इस प्रकार व्यक्त है– ''हाँ यह भी कोई जीना है? निर्लज्जता है और ठेठरई की सीमा होती है। पन्द्रहसाल से वह गले में मृदंग लटका के गाँव-गाँव घूमता है, भीख माँगता है। दाहिनी हाथ की उँगली टेढ़ी हो गई है।''[61] सभी जानते हैं वह पगला है।'' इन शब्दों से कथा के मुख्य पात्र की विशेषता प्रकट होती है। स्पष्ट है कि यह कथा ग्राम कथा है जिसमें ग्रामीण वातावरण अपनी पूरी गरिमा-पर्वत्योहार परम्परा, रीति-रिवाज, मेले, गाजे-बाजे एवं रहन-सहन के साथ उभरकर आया है।'' शादी व्याह-मुण्डन-छेदन यज्ञ उपनैन, आदि शुभ कार्यो में विदपति या णण्डली की बुलाहट होती थी।' इस प्रका आप देख सकते हैं कि ग्रामीण परिवेश अपने पूरे चरम पर है। लोकगीत– ''हाँ रे... हल जोते हलवाहा भैया रे.....,

---

61. रसप्रिया– रेणु

खुरपी रे चलाये मजदूर.....। एहिपन्थे धनी मोरा हे रूसिल .....।''[62]

पंचकौड़ी मिरदंगिया रेणु जी का अमर चरित्र है, जिसके वातावरण को रेखांकित करने हेतु इस कहानी को लिखा गया है। डायन प्रेत के बारे में इस कहानी में उल्लेख देंखें– पाँचू, मैने कुछ भी नहीं किया है। जरूर किसी डायन ने बान मार दिया है।''[63] उपनैन संसकार, पर्व त्योहार, तीज, मेले-ठेले, रीतिरिवाज तथा अन्ध विश्वास का भाव इस कहानी में है। जगह-जगह इन्हें प्रयुक्त किया गया है। धार्मिक मान्यताओं में मिथिला के क्षेत्र की इस धरती को भी लिया गया है। **मुहावरे, लोकोक्तियाँ कथा-कहानियाँ** भी बीच-बीच में आई हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकतत्व की दृष्टि से यह कहानी समृद्ध बन सकी है। **शिल्पगत** तत्व में कथावस्तु का प्रथम स्थान है। पात्र पंचकौड़ी मिरदंगिया को लेकर यह कथा सुनी गई है। पंचकौड़ी मिरदंगिया विद्यापत पदावली गाकर लोगों का मनोरंजन कर पेट भरता है। मोहना उसकी रसपिरिया को सुनकर विकल हो जाता है। कथावस्तु एक ऐसे कलाकार की है, जो जिन्दगी में कला के अलावा कुछ नहीं जानता। मिरदंगिया अपने बारे में मोहना से कहता है– ''तुम्हारी माँ महारानी हैं, मैं महाभिखारी, दस दुआरी हूँ।[64] जाचक .... फकीर.... वस्तुतः एक ग्रामीण कलाकार की कला इस परिवेश में दमतोड़ रही है। रेणु जी ने रसपिरिया के वादक पंचकौड़ी की दारुण गाथा को इस कहानी में व्यक्त किया है।

चरित्र-चित्रण–एक कलाकार की पीड़ा सम्पूर्ण सामाजिक अस्तित्व की पीड़ा में बदलने लगती है। पंचकड़ी को लगता है कि उसका अपना अस्तित्व ही प्रश्न पूछता है– ''तुम जी रहे हो या थेथरई कर रहे हो?'' मिरदंगिया कलाकार होने के साथ-सात 'गुनी' भी है। मोहना के पेट के दर्द वह ठीक कर देगा। पर मोहना भीख का अन्न नहीं खायेगा।

---

62. रसप्रिया– रेणु

63. रसप्रिया– रेणु

64. रसप्रिया– रेणु

रेणुजी ने नदी के द्वीप की तरह इस चरित्र का गठन किया है, जहाँ चारों ओर जल ही जल है और उस द्वीप पर खड़ा आदमी अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए चारों तरफ देख रहा है। उसे केवल मोहना चाहता है, जिससे वह दो बातें कर सकता है। पूरे समाज मे वह भिखारी है, पर अपने को वह जबरन भिखारी मानने को विवश है। कला को वह समाज से जोड़ना चाहता है पर समाज स्वीकार नहीं कर रहा है। 'ठेस' का ग्रामशिल्पी और इस कहानी का 'मिरदंगिया एक शिल्प पर उतरहे हैं। रेणु जी ने प्रश्न किया है– मिरदंगिया तो भीख मांग कर रसपिरिया बजाकर जी लेगा, पर शहरी भिखारी का क्या होगा। चरित्र की दृष्टि से 'मिरदंगिया' स्थानीय रंगत लिए हैं।

भाषा-शैली–पात्र अपनी बातों को स्थानीय **शब्दों**, **बिगड़े शब्दों**, **उर्दू**, **मैथिली**, **चुभीली उक्तियों**, **मुहावरों** तथा कथाओं द्वारा व्यक्त करते हैं। **स्थानीय** शब्द थेथरई, दसदुआरी, चौप, पंचटकिया, डागडर बाबू, ऊजोधास आदि बहुत से शब्द हैं। यथास्थान अन्य भाषा के प्रयोग हैं। मुहावरों तथा उक्तियों का प्रयोग है। लोकगीतों में–

दुहुरस ....म...य....तनु गुने नहीं ओर

लागली दुहुक न भागय जो..र....।

x x x

न..दी..बह नयनक नी....र!

आहो.... पललिबहए ताहि तीर।।''[65]

संवादों में बड़ा चुटीलापन है। मिरदंगिया के संवाद चुभते हुए एक संदेश देते हैं।'' जैसे– ''हॉं यह जीना भी कोई जीना है? निर्लज्जता है; और थेथरई की भी सीमा होती है।''[66] ''किसन कन्हैया भी नाचते थे। नाच तो एक गुण है... अरे, जाचक कहो

---

65. रसप्रिया– रेणु

66. रसप्रिया– रेणु

या दसदुआरी। चोरी, डकैती, आवारागर्दी से अच्छा है। अपना-अपना गुन दिखाकर लोगों को रिझाकर गुजारा करना।''[67] मिरदंगिया के संवादों में उसका जीवन झलकता है। पर उसे कोई समझने की कोशिश नहीं करता है। मिरदंगिया एक व्यक्ति व संस्था है। देशकाल के फलक पर लिखी यह कहानी पूर्वोत्तर राज्यों में एक बेसहारा कलाकार की मनोदशा का चित्रण करती है। मिरदंगिया जैसे हजारों 'गुनी' कलाकार मारे-मारे फिर रहे हैं। सामाजिक अन्तर्विरोध तीखे हो रहे हैं और इसका एहसास उस पागल मिरदंगिया को है। एक सम्पूर्ण देशकाल को समेटे यह कहानी पूरी तरह एक परिवेश को पूरापिय करती है। मिरदंगिया को वह 'बेटा' संबोधित करना चाहता है। पर संबोधन गले में अटक जाता है– ''बहरदार'' होकर वह वाभन के बेटे को वह बेटा कहेगा।''[68] यह ऐसे अनुत्तरित प्रश्न हैं, जिन्हें इस कथा करना या छोड़ गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पूरी तरह आंचलिक रंग में डूबी यह कथा लोकतत्व व शिल्पगत तत्व से ओतप्रोत है।

'लालपान की बेगम' कहानी की मुख्य पात्र बिरजू की माँ है। जमीन की बन्दोबस्ती व्यवस्था से बिरजू की माँ को स्वतंत्र किसान की हैसियत प्रदान की है। यह हैसियत बिडम्बनापूर्ण ही सही, पर कहीं न कहीं इसका महत्व विद्यमान है। गाँव की जिन्दगी मे स्त्रियों के लिए प्रदर्शन के लिए स्थान है मैला। इस मंच के साथ रेणुजी ने इस कथा की रचना की है। बिरजू की माँ को मिले पाँच बीघे के पर्चे से उसके भीतर कुछ करने का माघा आ गया है। वह किसी से क्यों डरे। वह बैलगाड़ी पर बैठकर जरूर नाच देखने जाएगी। जंगी की पतोहू उसे नया नाम देती है– 'लालपान की बेगम'। इस कहानी में परम्परागत मेले का वर्णन है, जिसमें बैलगाड़ी पर बैठकर जाने को बिरजू की माँ उद्यत है। कथा गाँव की है तथा उसमें वर्णित **रीति-रिवाज, पर्व-त्योहार, अन्धविश्वास, जादू टोने, भूत-डायन** आदि का सजीव चित्रण है। लोक हास्य का सुन्दर चित्रण है– ''भवचक

67. रसप्रिया– रेणु

68. रसप्रिया– रेणु

बिजली बत्ती की बात सुनकर न जाने क्यों सभी खिलखिलाकर हँस पड़ी।'' **गालियों** की बौछार है इनकी कहानियों में।, हरजाई, शैतान की नानी। खान-पान में शकरकन्द, रोटी, गुड़, मीठा,चीनी, शहद, दाल आदि का प्रयोग। **पहनावा** भी साधारण है। कुर्त्ता, कमीज, बुशर्ट, पायजामा, पैण्ट तथा अन्य का प्रयोग है। **पशुओं** मे बांगड़ बैल तथा साधनों में रेलगाड़ी तथा बैलगाड़ी का प्रयोग है। मेले का प्रयोग है। जादू टोने का प्रभाव भी है।'' अपन जानते उसने किसी देवता पित्तर की मान मनौती बाकी नहीं रखा।'' इस प्रकार **लोकतत्व** के समस्त उपादान इस कहानी में प्रयुक्त हैं। **शिल्पगत तत्व** की दृष्टि से कथावस्तु के चयन पर रेणु ने विशेष ध्यान दिया है। लालपान की बेगम की कथा बिरजू की माँ के पाँछ बीघे के कागज पाने से लेकर उसकी बढ़ी हुई हैसियत तथा उसका किसी से न दबने की प्रवृति से मेले में बैलगाड़ी पर चड़ कर जाने तक सीमित है। **यह कथावस्तु** ग्रामांचल में स्थित किसी गरीब व्यक्ति की चालाक औरत एवं उसका अस्तित्व के प्रति सजग रहने की कथा व्यक्त हरै। एक विवशनारी की करुण व्यथा है। जिससे उसकी पड़ोसिनें जलती हैं, पर वह इसकी चिन्ता नहीं करती है। लालपान की बेगम का साधारण कथ्य अपनी संवेदनशीलता मे असाधारण हो उठता है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह रेणु की अमर कृतियों में से एक है। 'लालपान की बेगम' बिरजू की माँ ने पाँच बीघे जमीन का पर्चा पाया है कि वह हैसियत वाली हो गई है। बिरजू की माँ का भाग्य ही खराब है, जो ऐसा गोबर गणेश घर वाला उसे मिला। कौन सा सौख भांज दिया है उसके मर्द ने। 'बिलेख में बिरजू पाँच शकरकन्द सोये सोये खा जाता है। इस प्रकार मन का सारा अवसाद समाप्त हो जाता है। वस्तुतः वह एक साधारण **चरित्र** वाली महिला है, जो साधारण से प्राप्ति से ही अपने भीतर की दुनिया को बदल देती है। इस प्रकार वह **चरित्र चित्रण** की दृष्टि से एक अंचल को समेटे हैं। **भाषाशैली** देशज शब्दों का खूब प्रयोग किया है। **हिन्दी, अंग्रेजी** व **बांग्ला** के बिगड़े शब्दों का खूब प्रयोग है। भाषा में सजीवता तथा आंचलिक गंध समाई है। भकभक बिजली बत्ती.... इन्साफ, कुकुरमाछी, गुलेल, दिदिया, चौंधिया जाना, जलनडाही, भुकभुकाती, बागड़, संझा, सर्वेसेटलमिन्ट,

पंछी आदि शब्द बिल्कुल आंचलिक शैली में प्रयुक्त हैं। उर्दू भाषा, अंग्रेजी, हिन्दी, मैथिली तथा अन्य शब्द बेबाकी से प्रयुक्त हैं। कहीं-कहीं क्रियाओं का भी बिगड़ा रूप प्रयोग किया गया है। मुहावरे, उक्तियाँ, कथायें, गालियाँ तथा अपशब्दों का भी प्रयोग है। कुल मिलाकर भाषा-बोली सब आंचलिक परिवेश में सने बसे से हैं।

संवाद तो रोचक बन पड़े हैं– इस मुहल्ले में लालपान की बेगम बसती। नहीं जानती दोपहर दिन और चौपहर रात बिजली की बत्ती भकभक कर जलती रहती है।''[69] संवादों मे स्थानीयता की रंगत है। भाषा-शैली मे चुहलबाजी है, जिससे संवाद मनोविनोद पूर्ण हैं।

उद्देश्य– लालपान की बेगम कहानी का उद्देश्य है– एक नारी की अभिशप्त गाथा जो विवशताओं के बीच जीवन के राग ढूँढ़ती है। प्रस्तुत कहानी में बदलते हुए ग्राम सम्बन्धों की 'बुर्जुआइनिंग' का एक तीखा अहसास है। इस प्रकार सम्पूर्ण कहानी में लोकसंस्कृति एवं शिल्पगत सौन्दर्य का भलीभाँति प्रयोग है, जिससे इसमें स्थानीय रंगत की चमक सर्वत्र देखने को मिलती है।

'पंचलाइट' रेणु जी की सामाजिक विद्रोह की एक ऐसा गाथा है, जिसमें जाति के स्थान पर गुण को महत्व दिया जाता है।' गुणवान के सौ गुनाह माफ किये जाते हैं। पेट्रोमेक्स गाँव में पहली बार आया है तो लोगों ने उसे उत्सव के साथ जलाने का मन बनाया है। वस्तुतः दूसरे गाँव वालों से इसे जलवाने में अपनी तौहीन मानते हैं। इस प्रकार पूरे गाँव की नाक' पेट्रोमेक्स के साथ जुड़ी है। यह एक ऐसे पिछड़े गाँव की कथा है, जिसमें 'पेट्रोमेक्स' को एक जीवित प्राणी के रूप में देखा जाता है। तभी तो छड़ीदार ने औरतों की मण्डली में सुनाया–'' रास्ते में सन्न सन्न बोलता था। पंचलैट!''[70] प्रस्तुत कहानी में लोकतत्व पूरी तरह से विद्यमान है। पंचलैट के आने पर उत्सव जैसा माहौल,

---

69. लालपान की बेगम– रेणु

70. पंचलाइट– रेणु

टोटका होना अन्धविश्वास, अज्ञानता, मूर्खता, जड़ता एवं गुलरी के साथ गोधन का **रोमांस** तथा पंचलैट के जलने पर मन का मैल धुल जाना तथा एक पंचलैट के जलने से एक सामाजिक विद्रूपता को स्वीकार कर लेना। इस अंचल की अपनी विशेषता के कारण ही है। पंचलैट जलाना कोई नहीं जानता गोधन के अतिरिक्त। उसके **सौ खून** माफ हो गये, क्योंकि उसने पंचलैट जला दिया है और गाँव वालों की नाक बचा ली है। रीति-रिवाज, मर्यादा, परम्परा, मेला, उत्सव तथा अन्धविश्वास पूरी तरह से इस कहानी में व्याप्त है। लोकतत्व की दृष्टि से यह कहानी आंचलिक कही जा सकती है। शिल्पगत सौन्दर्य की दृष्टि से यह कथावस्तु को यह कहानी बहुत सबल है। घटना प्रधानता की अपेक्षा इसमें भाव प्रधानता ज्यादा है। यदि दूसरे टोले के लोग पंचलैट जला देंगे तो निश्चयतः उनके टोले की तौहीन है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह कहानी अत्यन्त कमजोर मानी जा सकती है। इसके पात्र धर्म भीरू, अंध विश्वासी, जादू-टोने वाले, मूर्ख, अज्ञानी एवं कामुकता से परिपूर्ण है। पचों में बड़ा अन्धविश्वास है तभी तो कहते हैं– ''अंग्रेज बहादुर के राज ने भी पुल बनाने से पहले बलि दी जाती थी।''[71] भूलजैन, गुलरी काकी, दिवान जी, छुड़ीदार सरदार, मुनरी, कनेली, गोधन आदि सब जातिगत, वर्गगत तथा समाजगत प्रश्नों से घिरे हैं। सरदार ने कहा– ''तुमने जाति की इज्जत रखी है। तुम्हारा सात खून माफ। खूब गाओ सलीमा का गाना।''[72] इस प्रकार कमजोर चरित्रों द्वारा इस कहानी की रचना हुई है। परन्तु विचारणीय प्रश्न यह है कि चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इसे आंचलिक माना जाय अथवा नहीं। महत्वपूर्ण उत्तर यह है कि चूँकि यह एक अंचल विशेष के चरित्र को रेखांकित करता है। अतः इसे आंचलिक कहानी कहा जाएगा। रेणु की **भाषा-शैली** में स्थानीय शब्दों का प्रयोग है। तत्सम शब्दों के स्थान पर तद्भव शब्दों का बाहुल्य है। मुहावरे, लोकोक्तियाँ, लोकहास्य, व्यंग्य के द्वारा बातों को कहने का ढंग प्रस्तुत है–

---

71. पंचलाइट–रेणु
72. पंचलाइट– रेणु

''बाभन टोला के लोग ऐसे ही ताब करते हैं। अपने घर की ढिबरी को भी बिजली बत्ती कहेंगे और दूसरों के पंचलैट[73] को लालटेन।'' भाषा बड़ी चुटीली एवं व्यंग्य पत्र्रधघान है। रोचकता बनी रहती है। संवाद में बड़े पैने व्यंग्य हैं– ''रूदल साह बनिया भारी बतंगड़ आदमी है, कह रहा है, पंचलैट का पम्पू जरा होशियारी से देना।।'' इतना बड़ा व्यंग्य कोई कैसे बर्दाश्त कर सकता है तथा तो पंचों ने एक स्वर में कहा–'' ''ठीक है। गोधन को खोल दिया जाये।''[74] संवादों में बड़े गहरे व्यंग्य का निरूपण है। स्थानीय रगत का जादू संवादों में बढ़चढ़कर प्रयुक्त हुआ है। देशकाल पूर्णिया जिले के उस ग्रांमीण अंचल की कथा है, जहाँ पंचलैट को भी 'सनसन कर बोलता है' एक जीवित प्राणी मान बैठते हैं। अज्ञानता का व्यापक असर है तथा अन्धविश्वास व जादू टोने का व्यापक बोलबाला है। उद्देश्य 'पंचलाइट कहानी का मूल उद्देश्य है– अंचल विशेषकी दुराग्रह को व्यक्त करना। किसी भी स्तर पर कामुकता एवं सामाजिक निषेध को अपने अहं से जोड़ा जाता है। यह बहुत महत्व की बात है कि रेणु जी ने इस कहानी से शिल्पगत रूप में व्त किया है कि व्यक्ति से बृआ समाज है, वह झूठा ही क्यों न हो, कल्पित ही क्यों न हो। इस प्रकार सम्पूर्ण कहानी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि रेणु जी द्वारा लिखित यह कहानी आंचलिक है।

ठेस– एक ऐसी कहानी जिसमें एक कलाकार/ग्रामीण शिल्पी की व्यथा-कथा सृजित है, जो शीशे की तरह संवेदनशील है तनिक ठेस लगते ही झनझनाकर टूट जाता है। यह झनझनाहट पूरी कहानी पूरी कहानी में गूँजती रहती है। 'कारीगरी' तो उसके हाथ में जैसे बस सी गई थी–''सिरिचन जाति का कारीगर है। सिरिचन मुँहजोर है, कमचोर नहीं।''[75] तभी तो ब्राहम्ण टोली पंचानन्द के छोटे लड़के को बेपानी कर देता है–'' तुम्हारी भाभी नाखून में खाँटकर तरकारी परोसती है। इमली का रस डालकर कड़ी

73. पंचलाइट– रेणु
74. पंचलाइट– रेणु
75. ठेस– रेणु

तो हम कहार कहारों की घरवाली बनाती है। तुम्हारी भाभी ने कहाँ से बनाई।''[76] वह कारीगर तो है, पर बात किसी की बर्दाश्त नहीं करता। लोकतात्तविक दृष्टि से तो यह कहानी उतनी सबल नहीं है, पर इसमें लोक कलाकार। ग्रामीण शिल्पी की आत्मा बसती है। ग्राम शिल्प के भीतर शिल्पगत आंचलिक समस्त धड़कने कैद हैं। सिरचन की चरित्रता विशेषता– ''बिना मजदूरी के पेट भर भात पर काम करने वाला कारीगर। दूध में कोई मिठाई न मिले तो कोई बात नहीं, किन्तु बात में वह जरा भी झाल बर्दाश्त नहीं कर सकता।[77] लोकसंस्कृति के तत्ओं में दही की कढ़ी, दूध, भात, कढ़ी, फटे-पुराने कपड़े, भूसी चुन्नी, मोथी घास, शीतल पाती, चिक मोढ़े, मूज की रस्सी, छतरी, टोपी, खेसारी का सत्तूह मोहर छाप वाली धोती, पटेर, झब्बे मुंगिया लड्डू इत्यादि खान-पान, रहन-सहन, तीज-त्योहार, मेले-ठेले, शादी-ब्याह के शब्द कहानी में उभरे हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सिरचन के ग्रामीण शिल्पी कलाकार ने लोकतत्व के इतने रूप निखारे हैं, जिससे कहानी सज उठी है। **लोक संस्कृति** के वे सारे तत्व मौजूद हैं। **शिल्पगत** विशेषता के रूप में **कथावस्तु** का अपना महत्व है। इस कथा में 'सिरचन' एक ग्रामीण शिल्पी है, जो भरपेट भात पर अजीब सी कारीगरी दिखाता है। उस परिवेश में वह बड़ा मशहूर है, पर मुँहजोर भी। सिरचन सब कुछ सह लेता है, पर बात की ठेस से टूट जाता है। 'सिरचन' की कलात्मक अभिव्यक्ति तथा एक कलाकार की आत्मा को बेहतर ढंग से प्रदर्शित किया गया है। यद्यपि की वह एक परिवर की बहुओं के तानों से रूठ जाता है, पर कलाकार की आत्मा उसे ऐसा नहीं करने देती। वह अपने आप मान जाता है और मानू की विदाई के समय आँखें बचाकर अपनी कलात्मक चीज को देने पहुँच गया। यहाँ यह विशेष बात है कि 'सिरचन' जैसा सरल हृदय व सादा कलाकार ही ऐसा कर सकता है। कथावस्तु की दृष्टि से यह एक आंचलिकता से परिपूर्ण कहानी है। **चरित्र-चित्रण** रेणु ने 'सिरचन' जैसे ही आदमी की खोज अपने कहानियों में

76. ठेस– रेणु

77. ठेस– रेणु

करने की कोशिश की हो। उनके ऐसे चरित्र पंचकौड़ी मिरदंगिया, हिरामन, हीराबाई, लल्लू की माँ, गोधन, मुनरी, सिंघाय और भी हजारों पूरी कथा में बिखरे पड़े हैं। वे चरित्र को एक आइडिया देते हैं तथा सामान्य जन से उसे जोड़ते हैं। उन्होंने स्वीकार किया था कि मैं इस जुलूस के साथ चल रहा हूँ। वस्तुतः चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह कहानी अपने परिवेश में स्थानीय रंगत से ओतप्रोत है। **भाषा-शैली** की दृष्टि से यह कथा बहुत ही सरल है। भाव तो गहरे हैं, पर बोली की दृष्टि से इसमें कोई नवीनता नहीं है। सिरचन चाली, भानू, बड़ी भाभी, छोटी भाभी कुल इन्हीं पात्रों के बीच वार्तालाप होता है जो एकाध परिवारों के बीच में ही है। **बोली-ठिबोली** बिगड़े शब्द, तद्‌भव शब्दों की भरमार है। **मुहावरे, उक्तियाँ, व्यंग्य, हास-परिहास** एवं अन्य कथनशैली से कहानी रोचक बन पड़ी है। छोटी कथा के माध्यम से बहुत बड़ी बात कहने की कोशिश की गई है।

संवादों में बड़ा तीखापन है कहीं व्यंग्य तो कहीं हास-परिहास तो कहीं तानों की बौछार है।'' भानू मोहर छाप वाली धोती का दाम निकालकर देने लगी। सिरचन ने जीभ को दाँथ से काटकर दोनों हाथ जोड़ दिये।' सिरचन ने जुबां से कुछ न कहकर कलाकार की सम्पूर्ण को कत्ता को प्रकट कर दिया। यदि वह बोल देता तो बात ही रह जाती, पर न बोलकर कलाकार की मूक शैली को प्रकट किया, यह हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक बड़ी संवाद शैली है, जो रेणु ही कर सकते थे। देशकाल की पहचान 'सिरचन' के संवादों से हो जाती है। ग्रामशिल्प की अब कहाँ बात रही। माँ कहती हैंम– ''भानू जी छोटा मत कर, मेले से खरीदकर भेज दूँगी।''[78] वस्तुतः तब ग्राम शिल्प की उपेक्षा का जोर पकड़ रहा था। यह उस समय की कहानी है, जब ग्राम शिल्प का व्यापक जोर-शोर था। इस कहानी का उद्देश्य था एक कलाकार की आत्मा की अवसाद का स्थिति में पहुँच जाना तथा पुनः सृजन की ओर उन्मुख होना। रेणुजी ने इस कहानी में एक सर्जक की भंगिमा को बड़े ही मनोहारी ढंग से प्रस्तुत किया है।

तीर्थोदक–लल्लू की माँ को केन्द्र में रखकर यह कथा लिखी गई है। एक परिवार

78. ठेस– रेणु

की अन्तर्व्यथा पूरे कहानी में है। तीरथ यात्रा में आने वाले अवरोध एवं उससे उत्पन्न स्थितियों का चित्रण इसमें किया गया है। इस कहानी में लोकजीवन की समस्त धड़कनें कैद हैं। **हास-परिहास, खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा, बातचीत के ढंग,** पर्व, त्योहार, मेले-ठेले, आचार-विचार एवं लोक संस्कृति के समस्त गुण मौजूद हैं। वस्तुतः इस कहानी के बड़े कलेवर में किसी तीर्थयात्रा का सारा दृश्य अपने पूरे चित्रण के साथ मौजूद है। लोक कलर से ओतप्रोत यह कहानी संवाद प्रधान है। शिल्पगत विशेषता के कारण तीर्थोदक कहानी अपने आप में बेजोड़ हो चली है। एक परिवार की मर्मान्तक कहानी है, जिसमें घर की समस्या से लेकर तीर्थयात्रा तक की सारी व्यथा इसमें भरी पड़ी है। कथावस्तु ग्रामीण अंचल से सम्बन्धित है। गंगा स्नान की कौन कहे लल्लू की माँ कभी कोसी की किसी गड़हिया मे भी एक डुबकी नहीं लगा पाई। कथा में विदेसिया नाच तीर्थ स्थान, पौषी पूर्णिमा इल्ली जिल्ली, जै बाबा विश्वनाथ जै बाबा बैदनाथ इत्यादि के सन्दर्भ यथास्थान आ पड़े हैं। **चरित्र-चित्रण** की दृष्टि से लल्लू की माँ का बड़ा जोरदार चरित्र है। वह अपने जिद पर तीरथ करने निकलती है। तमाम अवरोधों को झेलते हुए भी वह निकल पड़ती है। नाती-पोते बहू से भरे परिवार में सभी बाधायें खड़ी करते हैं पर वह नहीं मानती। लल्लू की माँ, बड़ी बहू बजरंगी चौधरी, गीतिया, लल्लू, भूलोटन, विष्णु, भाभी शंकर, घूटरसाह व सिपाही आदि चरित्र इसमें भरे पड़े हैं, पर लल्लू की माँ का चरित्र सब से ऊपर है। वह सबको परास्त कर तीरथ करने जाती है। साह की बूढ़ी ताना मारती है– "ऐसे बेटे पोटियों से निपूती ही भली। लोग रहते हुए भी अकेली तीरथ जा रही है, बेचारी।"[79] लल्लू की माँ ताने सुनकर चुप रहती है। शशिकान्त की रूमी अपने पति के दर्द से पीढ़ित है। वस्तुतः चरित्र-चित्रण को रेणुजी ने स्वयं लिखा है– "भिन्न देश के भिन्न रिवाज"।[80] शशिकान्त की स्त्री के चरित्र पर दोषारोपण करने पर दाँत कटकटाती गुर्राती हुई– चुप हरजाई, छिनाल, हर काम में

79. तीर्थोदक– रेणु

80. तीर्थोदक– रेणु

टोकेगी, उठते बैठते छींकेगी''....। वस्तुतः रेणु के पात्र चुप रहकर बहुत सहने वाले नहीं है। हरपाल का चरित्र एक गाथामय अवसाद लिये हैं। **भाषाशैली** *अत्यन्त ग्रामीण व* स्थानीय है। गालियाँ, मुहावरे, उक्तियाँ, तुकबन्दियाँ, अपशब्द बिगड़े शब्द, उर्दू, बिगड़े अंग्रेजी शब्द तथा नये गढ़े गये शब्द तथा कुछ चलताऊ शब्दों का प्रयोग है। पात्र अपने भावानुसार भाषा या बोली का प्रयोग करते हैं। शब्दों के प्रयोग में रेणु ने वातावरण का विशेष ध्यान रखा है। भाषा के प्रयोग से बात साफ हो जाती है। जो वह कहना चाहते हैं, वह बोली से स्पष्ट हो जाता है। भाषिकत दृष्टि से तीर्थोदक कहानी आंचलिक कही जा सकती है। संवादों में बड़ी रोचकता है। संवाद भावानुसार सार्थक बन पड़े हैं। लल्लू की माँ के तीर्थ यात्रा पर चलते समय के संवाद बड़े मार्मिक बन पड़े हैं। लल्लू की माँ ने मोतिया की माँ को जो चिट्ठी लिखी है। उससे सारे सन्दर्भ की कथा एकाकार हो जाती है। पूरे वातावरण को स्पष्ट कर देती है कि पात्रों के संवाद अपने कथन के प्रति कितने सजग हैं। लल्लू की माँ तीर्थयात्रा के बीच बीमार हो जाती है और अन्नपूर्णा की सेवा लेती है। इस बीच वह प्रात की गाना नहीं भूलती– ''तेरी गति लखि न परे हो दयानिधि। अन्नपूर्णा का संवाद देखें– ''लल्लू की माँ का भाग्य! खुद माँ अन्नपूर्णा उसे नहला रही हैं। वस्तुतः संवादों में बड़ी ही सहजता है। वातावरण के साथ। एकात्म हो गया पूरा परिवेश ही। इस तरह प्रस्तुत कहानी संवादों की दृष्टि से भी क्षेत्र विशेष का परिचायक है। देशकाल अथवा वातावरण ग्रामीण अंचल से सम्पबन्धित है जिसमें एक परिवार की कथा को व्यापक भावभूमि दी गई है। इस परिवार में लल्लू की माँ को सब कुछ म इला है, पर तीर्थ यात्रा के लिए किसी में कोई भाव नहीं है। वह अपने मन से तमाम अवरोधों के बाद भी यात्रा में जाती है तथा वहाँ तमाम झंझटों से मुक्ति प्राप्त कर तीर्थ स्थान करती है।

उद्देश्य की दृष्टि से यह कहानी एक तीर्थ यात्री की समग्र भाव भंगिमा को उजागिर करती है। तीर्थयात्रा में लल्लू की माँ का परिवार से मोहभंग नहीं हो पाता है। भले वह यहाँ आई है। पर उसका ध्यान परिवार में ही रमता है एक भरे पूरे परिवार

का यह सहज कथा है। इस प्रकार हम देखते रहें कि तीर्थोदक कहानी भाव प्रवणता, लोकसांस्कृतिक तथा शिल्पगत विशेषता के कारण आंचलिक के बहुत आस-पास दिखती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रेणु द्वारा लिखित लगभग 63 प्राप्त कहानियों में लोक संस्कृति व शिल्पगत विशेषतायें अपने पूरे सौन्दर्य के साथ विद्यमान हैं। आंचलिक पृष्ठभूमि पर ढेर सारी कथायें लिखी गई हैं। रेणु जी की लगभग कहानियाँ ग्रामीण परिवेश से हैं, पर कुछ शहरी वातावरण से भी सम्बन्धित है। ठुमरी से अग्निखोर तक कहानियों का टोन बदलता हुआ दिखाई देता है। उनकी कहानियों का स्वरूप अन्य लेखकों से सर्वथा भिन्न दिखाई देता है। ठुमरी संग्रह की ढेर सारी कथायें लोकजीवन की स्वच्छन्दता प्रकट करती है। प्रेमचन्द के बाद रेणु में ही कथा-रस व यथार्थ से उत्पन्न नायटकीयता के तत्व के दर्शन होते हैं। मिरदंगिया एक व्यक्ति और एक संस्था है। ठेस का सिरचन एक समाज है। अच्छे लोग में सम्पत्ति के साथ अधिकार के सामाजिक रिश्ते के सन्दर्भ हैं। उजागिर का घर गैर सरकारी पड़ा बसे बेहतर नहीं है। उजागिर ने सीता को धंधे के अतिरिक्त घरनी की हैसियत उसे कब दी। सीता-उजागिर की वापसी हमें बार-बार सोचने पर बाध्य करती है। तीसरी कसम का हिरामन तथा हीरा बाई का प्रेम सन्दर्भ तथा ग्रामीण परिवेश में नौटंकी की प्रस्तुति और हीरा बाई का साथ छोड़कर चले जाना और तीसरी कसम कि अन्य किसी बाई को बैलगाड़ी में नहीं बैठायेगा, एक त्रासद अन्त है। ऐसे निश्छल प्रेम इस परिवेश में रोज दम तोड़ते हैं। टेबुल एक स्त्री की कथा जो अपने वातावरण में सीमित हो गई है। आकर्षण और उपेक्षा की दुहरी मार से दबी हैं, मिस दूर्वादास। दूर्बा अतीत को फेंक देना चाहती है, पर कवच नहीं छोड़पाती। लोक क्या जानें कि मनुष्य के दर्द से भी बड़ा धर का दर्द होता है। तीन बिंदिया कहानी रसप्रिया का शहरी संस्करण है। एक कलाकार को आत्मा का संघर्ष इसमें निहित है। इस संघर्ष में मीतालीदास को शिल्पी हाराधन की याद आती है। हाराधन कला की दुनिया में कितना अजनबी आंचलिक धुनों की मीतालीदास ने उपेक्षा की थी। मीताली

का यह गंध परिवेश संगीत की आत्मा से मूर्त हुआ है। साधना की यह कहानी एक संघर्ष की गाथा तो है ही, शास्त्रीयता के विरुद्ध मनका स्वच्छन्दनाद। आत्मा साक्षी रेणु की एक स्वच्छन्द कहानी है। यह मात्र पार्टी विभाजन की कथा न होकर एक विश्वासी कार्यकर्त्ता के उपरान्त होने के दुख की मात्र कहानी न होकर मजदूर वर्ग के आत्म विभाजन की पीड़ा की ऐतिहासिक कहानी है। इस कहानी के सारे स्रोत एक पात्र में ही है। अगिनखोर भी इन्हीं मूलरागों से मिलती-जुलती कथा है। यों तो रेणु ने उन संस्था कथाओं की सृष्टि किया है, पर व्यवस्थित ढंग से मात्र 63 कहानियाँ ही प्राप्त होती हैं। कुछ अधूरी कहानियाँ भी मिलती हैं, पर उनके कथ्य पर विचार किया जाना इसलिए संभव नहीं है कि उन्हें रेणु कहाँ ले जाना चाहते थे, यह खोज का विषय है। प्राप्त उक्त कहानयों का सम्यक् विश्लेषण करने पर अधिकतर कहानियाँ ग्रामीण परिवेश में डूबी लगती हैं। रेणु ने अपने आस-पास के जीवन को बड़ी बारीकी से देखा, सहजता से जिया और सत्यता से कथाओं में उकेरा। रेणु जी ने पात्रों की रचना दूर से नहीं, अपने बीच से किया, जो उनके साथ हँसते खेलते खाते तथा रहते थे। यही कारण है कि बे अमरकथाकार सिद्ध हो सके। समस्त कहानियों आंचलिक सन्दर्भ लिए प्रस्तुत होती है। चाहे वे शहरी, कस्बाई या ग्रामीण हों। रेणु जी ने अमर पात्रों का सृजन किया, जो युग के एक स्तम्भ थे। रेणु की कहानियों में **लोकतत्व**- मेले, त्योहार, परम्परा रीति-रिवाज, नौटंकी-नाच, लोकनृत्य, पहनावा रहन-सहन, खान-पान, अन्ध-विश्वास, जादू, टोने, मूर्खता, जड़ता, कामुकता, मनोग्रन्थियों, हास-परिहास का जितना व्यापक चित्रण किया है, उतना कहीं नहीं मिलता है। यही कारण है कि रेणु की कहानियाँ मूल राग से ओत-प्रोत हैं। उनमें आंचलिक सन्दर्भ गहरे रूप में पाये जाते हैं। शहरी वातावरण में लिखी कहानियाँ भी परिवेशगत आंचलिकता लिए हैं। **शिल्पगत** दृष्टि से रेणु की कहानियों में कथा वस्तु का चयन ग्रामीण परिवेश अथवा अंचल से, भाषा शैली में बिगड़े शब्द नये शब्द, तद्भव, अंग्रेजी, उर्दू, बांग्ला, मैथिली का प्रयोग, मुहावरे, उक्तियाँ, हास्य, लोकगीत, गालियाँ, तुकबन्दियाँ आदि खूब प्रयुक्त हैं। रेणु की

कहानियों के चरित्र परिवेश की गंध लिए हैं। आदमी की खोज में इनके पात्र घूमते रहते हैं। चरित्रों में कुछ चरित्र तो जैसे अमर हो गये हैं– हीरमन, हीराबाई, गोधन, मुनरी, लल्लू की माँ, सिरचन, मिरदंगिया, दूर्वादास आदि हजारों पात्र अमरता को प्राप्त हो गये हैं। रेणु जी पात्रों को कहीं जो गढ़कर नहीं लाते बल्कि आस-पास के वातावरण में ही रचे-बसे हैं। संवादों में सहजता, वातावरणीय गंध, हास-परिहास, व्यंग्य एवं बड़ी नाटकीयता है। पात्र सर्वथा मसिजीवी नहीं हैं, वे मिट्टी के माधो हैं, जो रेणु के पास हैं। रेणु जी ने स्वयं स्वीकार किया है कि यद्यपि कि मैंने पात्रों को यहीं से चुना है, जहाँ की मिट्टी में मैं पैदा हुआ हूँ पर कुछ सम्पादक, कुछ मित्रों, कुछ आपत्तिजनक मान कर मैंने संशोधन कर दिया है। पर यह हलफनामा एक लेखकीय मजबूरी हो सकती है। रेणु के पात्रों के संवाद अत्यन्त सहज हैं। जो वातावरण के अनुसार भावों के अनुरूप बोले गये हैं। इनमें आंचलिकता की गंध आती है। देशकाल तथा उद्देश्य कहानियों का प्राण तत्व है। परिवेशगत कथा का कहना सुलझे रचनाशिल्पी के वश की ही बात है रेणु जी ने जो कुछ लिखा एक ग्रामीण परिवेश को लेकर लिखा जिसमें एक पूरा कालखण्ड पूरी सहजता के साथ उभर कर सामने आता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों व रचना शिल्प व लोकसंस्कृति की दृष्टि से आंचलिक कहानियाँ हैं। रेणु जी के उपन्यासों में मैला आँचल व परती परिकथा की रचनागत शिल्पीय व लोक तत्वीय परिवेशगत विशेषताओं के साथ ही अन्य उपन्यास की आंचलिकता के रस से सराबोर है। समग्रतः हम सकते हैं कि रेणु जी अमर रचना शिल्पी व आंचलिक कथाकार हैं। रेणुजी की अन्य रचनायें भी हैं, जो रिपोर्ताज, संस्मरण व निबन्धात्मक शैली में है कि, जिनसे किसी कथासाहित्य का संकेत नहीं मिलता इसलिए इस अध्याय में हमने मात्र उनके कथा-साहित्य पर ही अध्ययन किया है।

●

अध्याय– चतुर्थ

शिव प्रसाद सिंह का कथा-साहित्य आंचलिक सन्दर्भ में

क. संक्षिप्त जीवन-परिचय

ख. कृतित्व

ग. आञ्चलिक सन्दर्भ

1. लोक तत्व के रूप में

2. शिल्पगत के रूप में

अध्याय— चतुर्थ

शिव प्रसाद सिंह का कथा-साहित्य आञ्चलिक सन्दर्भ में

कथाकार शिव प्रसाद सिंह का जन्म वाराणसी जनपद के जलालपुर गाँव में 19 अगस्त 1928 एक मध्यवर्गीय परिवार में हुआ था। पिता का नाम चन्द्रिका प्रसाद सिंह तथा माँ का नाम कुमारी देवी था। प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में हुई तथा बाद में यू.पी. कालेज से इण्टर एवं बी.एच.यू. से 1953 में एम.ए. प्रथम श्रेणी में विशेष योग्यता के साथ पास किया और वहीं ये हिन्दी विभाग में लेक्चरर नियुक्त हो गये। बाद में रीडर और प्रोफेसर व अध्यक्ष रहकर सेवा निवृत्त हुए तब से वाराणसी के सुधर्मा गुरुधाम कालोनी में सपरिवार रह रहे थे। इनका देहावसान 27 सितम्बर 1998 को हुआ था। शिव प्रसाद जी विद्यार्थी जीवन से ही लेखन के प्रति उन्मुख हो गये थे। सन् 1951 में इन्होंने विधिवत् 'दादी माँ' कहानी से अपना लेखन प्रारम्भ किया। इनके द्वारा रचित साहित्य का विवरण इस प्रकार है–

उपन्यास

(1) अलग-अलग वैतरणी

गली आगे मुड़ती है

नीला चाँद

शैलूष

मंजूशिमा

औरत

दिल्ली दूर है

वैश्वानर

कोहरे में युद्ध

कहानी संग्रह–

अन्ध कूप

एक यात्रा सतह के नीचे — सम्पूर्ण कहानियों का संग्रह

नाटक–

घाटियाँ गूँजती हैं

अश्मक का फूल-रिपोर्ताज

अन्तरिक्ष के मेहमान

शोध समीक्षा–

सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य

विद्या पति

कीर्तिलता और अवहट्ठ भाषा

आधुनिक परिवेश और नवलेखन

आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद

योगी श्री अरविन्द की जीवनी

उत्तरयोगी

शान्तिनिकेतन के शिवालिक

ललित निबन्ध संग्रह—

शिखरों के सेतु

कस्तूरीमृग

चतुर्दिक

मानसी गंगा

किसको किस को नमन करूँ

क्या कहूँ कुछ कहा जाय

वस्तुतः शिव प्रसाद सिंह जी का जीवन ही लेखन से परिपूर्ण रहा है। उन्होंने मृत्युपर्यन्त लेखन को अपना उद्देश्य माना है। इतने गम्भीर व विचारपूर्ण साहित्य के सृजन में हजारी प्रसाद द्विवेदी के प्रभाव को वे स्वीकार करते हैं। सिंह साहब ने आपने साहित्य मनुष्य के प्रति प्रतिबद्धता दिखाई है। वे मनुष्य के खोज में अलग-अलग चरित्रों की रचना कर समाज का एक खाका खींचते हैं। यों तो शिव प्रसाद सिंह ने विपुल साहित्य की रचना की है, तमाम शोध ग्रन्थों का निर्देशन किया है और पत्रिकाओं का सम्पादन किया है, पर हम अध्ययन की दृष्टि से उनके कथा-साहित्य उपन्यासों व कहानियों का अन्वेषण करेंगे।

शिव प्रसाद सिंह ने सन् 1951 में अपना लेखकीय जीवन प्रारम्भ किया। इनकी प्रथम कहानी 'दादी माँ' सन् 1951 में 'प्रतीक' में छपी, जो प्रायः संस्मरणात्मक कथा है। जिस समय डॉ. सिंह ने लिखना शुरू किया उस समय ग्राम कथाकार के रूप में प्रेमचन्द्र पढ़े जा रहे थे। उसी समय ग्रामकथाओं को लेकर रेणु की हिन्दी साहित्य में उतर चुके थे। पर जितनी सरलता से प्रेमचन्द्र पढ़े जा रहे थे उतना रेणु नहीं, क्योंकि रेणु की रचना आंचलिक होने के कारण उतनी जनप्रिय नहीं हो पा रही थी। प्रेमचन्द के पात्र आदर्शोन्मुख थे तो रेणु के पात्र सर्वथा यथार्थो मुख आदर्शवाद को बढावा दे

रहे थे। ऐसी स्थिति में डॉ. सिंह ने सीधे यथार्थ का दामन थामकर ग्राम जीवन की धड़कनों को साहित्य में स्थान दिया। प्रारम्भ में शिव प्रसाद सिंह ने छोटी-छोटी कहानियों का सृजन किया, लेकिन उससे वे सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने 'मेजरवर्क' के रूप में उपन्यासों की रचन प्रारम्भ की। प्रथम उपन्यास अलग-अलग वैतरणी प्रकाशित हुआ। अलग-अलग वैतरणी के प्रकाशन के साथ हिन्दी ग्राम कथा साहित्य में इसका व्यापक स्वागत किया गया। कुछ आलोचकों ने ग्राम कथायें कहकर पल्ला झाड़ा तो कुछ ने आंचलिक कहकर तो कुछ ने निम्नस्तरीय कथा कहकर संतुष्टि प्राप्त की। पर अलग-अलग वैतरणी पढ़ने के बाद लोगों के तेवर बदल गये और लोगों ने यह कहना शुरू किया कि डॉ. शिव प्रसाद सिंह की लेखकीय दृष्टि गाँवों के सूक्ष्म दृश्य को उभारने का है। वस्तुतः ग्राम कथाओं को आंचलिक मान लेने का क्रम लोगों ने पाल रखा था। वस्तुतः आंचलिकता एक भाव है, ग्राम कथा एक विस्तृत परिवेश है। डॉ. सिंह ने आंचलिकता को स्पष्ट किया है– "आंचलिक वही कहानी कही जा सकती है जो किसी जनपद के जीवन, रहन-सहन, भाषा, मुहावरे, रूढ़ियों अन्धविश्वास, पर्व-उत्सव, लोक जीवन, लोक नृत्य आदि को अपना उद्देश्य माने। मेरे साहित्य में आंचलिक तत्व[1] केवल साधन है, साध्य नहीं।" इन आंचलिक कथाकारों में रेणु-नागार्जुन, भैरव प्रसाद गुप्त, राघेय राघव, बलभद्र ठाकुर, हिमांशु श्रीवास्तव, केशव मिश्र, ओंकार, मार्कण्डेय रामदरश मिश्र, राजेन्द्र अवस्थी शैलेश मटियानी तथा राही मासूम रजा इत्यादि आते हैं। डॉ. शिव प्रसाद सिंह के कथा-साहित्य में आंचलिकता के स्वरूप का हम विश्लेषण करेंगे।

शिव प्रसाद सिंह का पहला उपन्यास अलग-अलग वैतरणी सन् 1967 में प्रकाशित हुआ। अपने इस वृहद (668 पृष्ठ) उपन्यास में लेखक ने उत्तर प्रदेश के करैता ग्राम को केन्द्र बनाकर समस्त भारतीय गाँवों के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया। समग्र ग्राम की धड़कनें उस उपन्यास में कैद हैं। इस वृहद उपन्यास में 37 अध्याय है, जिसके परिवेश में आधुनिक भारतीय गाँव बसता है। आजादी के बाद जमींदार विनाश

---

1. आधुनिक परिवेश व नवलेखन– शिव प्रसाद सिंह

अधिनियम लागू हुआ और इसके बाद बदलते गाँव का तेवर इसमें स्थापित है। शिव प्रसाद सिंह ने इस विस्तृत फलक में समस्त घटनाओं, पात्रों सांस्कृतिक रूढ़ियों, अन्धविश्वासों एवं मान्यताओं को चित्रित किया है। अलग-अलग वैतरणी में ग्राम जीवन की समस्त हलचलें अपने यथार्थ रूप में विद्यमान हैं। वकौल शिव प्रसाद सिंह– ''आजादी मिलने के बाद जनता ने समझा कि उनके दिन बहुर गये, पर जमींदारी का स्थान ले लिया छुटभैये अत्याचारों ने जो जमींदारी की बूटों से रौंदे जाते थे। अब वे गोल बनाकर हर तरफ से जनता को लूट रहे हैं।'' इस प्रकार इन गाँवों में अब अलग-अलग पात्र अपनी वैतरणी में अब उतरा रहे हैं। गॉवों में वे रहते हैं जो वहाँ रहना[2] तो चाहते हैं, पर रह नहीं पाते। इस प्रकार गाँव की इस त्रासदी का चित्रण इस उपन्यास में विखरा पड़ा है।

अलग-अलग वैतरणी का आञ्चलिक सन्दर्भ में अन्वेषण– प्रस्तुत उपन्यास करैता के माध्यम से भारतीय गाँव की पहचान है। स्वतंत्रता के पश्चात् जमींदारी व्यवस्था के टूटने के साथ निर्मित हो रहे नये परिवश वले गाँव की कहानी है। राजनीतिक स्तर पर जो सपने देखे गये थे, वे अब टूटने लगे थे। आम जनता स्वतंत्र सी हो गई, पर आर्थिक व सामाजिक गुलामी बनी रही। अपने-अपने ढंग से दिल्ली से गाँव तक सत्ता हथियाने वाले लोग एक से एक वैतरणी को निर्मित कर रहे हैं, जिसमें पूरा करैता कहा जा रहा है। जमींदार उन्मूलन, पंचायत चुनाव उसके पैंतरे, शोषण के नये ढंग, दलबन्दी, आर्थिक दुष्चक्र, भ्रष्टाचार, वर्गसंघर्ष एवं खेतिहर मजदूरों की समस्या नई समस्याओं को जन्म दे रही है। जीवन मूल्यों की गिरावट भौतिकता के मापदंड, भ्रष्टाचार, स्वार्थ, सड़ी व्यवस्था एवं पुरातन पंथ ऐसी सहायक धारायें हैं जो बैतरणी के प्रवाह को और तेज बना रही हैं। इन्हीं प्रेरक परिस्थितियों से इस महान उपन्यास का सृजन हुआ है। प्रस्तुत उपन्यास के लोक तत्व इस प्रकार हैं– इस उपन्यास का सृजन गाँव को लेकर हुआ है। भारत के गाँवों में गिरावट का स्वरूप तथा नये मूल्यों को स्थापित करने की कोशिशें व्यक्त

2. अलग-अलग वैतरणी– शिव प्रसाद सिंह

हैं। सामाजिक स्तर पर पुश्तैनी बैरभाव चरम पर है। जमींदार का पैर सहलाने वालों की जगह *खुदाबक्श तथा हरिया, केसरिया, छबिलवा* आदि *गुण्डों ने स्थान ले लिया* है। **भ्रष्टाचार** तो कुंडली मार कर व्यवस्था पर बैठ गया है। जग्गन मिसिर कहते हैं– ''तब जमींदार जुर्म करता था और अब पंचायतें भी गंडगोल करती हैं। खेत खलिहान का नुकसान करना, बहू-बेटियों की इज्जत लूटना तथा लोफरई का राज्य हो गया है। थानेदार से लेकर लेखपाल तक घूसखोरी में लिप्त है। इस प्रकार सामाजिक व्यववस्था विफल है। **जातिवाद** का व्यापक असर है। चमारों के साथ ठाकुरों का संघर्ष द्रष्टव्य है, जहाँ बुझारथ और सुरजू जातीय भावना में जल रहे हैं। प्रजावर्ग में व्यापक तिरस्कार की भावना व्याप्त है। बीसू धोबी, लोहार विंदेश्वरी में जाति की जहाँ भावना टूट रही है, वहीं जातीय संघर्ष जोरों पर है। जातियाँ धन्धे रोजगार के कारण चौपट हो रही हैं तथा झब्बू उपाधिय्रा तथा बैजू पुरोहिती से ऊब गये हैं। लेकिन ब्राह्मणों की श्रेष्ठता कायम है। हरिजनों की स्थिति ज्यादा दयनीय अभी भी बनी हुई है। गाँवों में चमारों की कोई सामाजिक स्थिति नहीं है। कुछ हरिजन बंधुआ स्थिति से निकलकर नगर में काम करना चाहते हैं पर वे यहाँ भी सन्तुष्ट नहीं है। परम्परावादी ऐसे ही *तमाम जातिवादी सूत्र हाथ* लगते हैं। उपन्यासों में जातियों के बीच बैमनस्य उसी तरह है। **परम्परावादी विवाह** की स्थिति अभी भी उसी तरह है। छोटी उमर में शादी तथा असमय बच्चों के पैदा करने की नियति से जनता जुड़ी है। अनमेल विवाह व कच्ची उम्र में शादी अनर्थ के कारण बनते हैं। कनिया व पहनिया का भी जीवन इसका स्पष्ट उदाहरण है। अनमेल शादी कही मजबूरीवश तो कहीं परम्परावश कर दी जाती है। गाँव में पढ़ाई तो शादियोंके कारण की जाती है। *विवाह जैसी संस्था सामाजिक आभिशाप का कारण है। वहीं-कहीं* समलैंगिक मैथुन के भी उदाहरण मिल जाते हैं। वस्तुतः करैता ग्राम का जीवन अनमेल विवाह व बाल-विवाह के कारण कष्ट कर है। **रूढ़ियाँ** तो विशाल पैमाने पर उपन्यास में आई हैं। शादी के बाद जग्गन मिसिर के भाई बैजू की जल्दी ही मौत हो जाने पर करैता की महिलायें कुलबुलाने लगती है कि शादी सही नहीं।'' नजर लगना, बिल्ली

का रास्ता काट जाना, अपशकुन काढ़ना, मुंह देखकर काम की नियति तय करना ज्योतिष विद्या का प्रचार की रूढ़ियों में व्याप्त है। यह पूरे गाँव पर छाया है। पारिवारिक संयोग वश दुर्घटना कई पीढ़ियों तक अपशकुन के रूप में याद की जाती है विपिन की नौकरी के सम्बन्ध में बुझारथ द्वारा ताऊ का जिक्र करते ही बनिया का दिल धड़क उठता है। जैपाल सिंह कहते हैं कि इस परिवार पर किसकी कुदृष्टि है। जो सबसे मूल्यवान होता है। वह खो जाता है। पानी न बरसने पर रात को औरतों द्वारा हल जोतना, मीनाराम बाबा का शाप, वंश डूब जाने की मिसिक की चिन्ता रेंधनी चिरैया की आवाज का खरा व होना तथा विविध अवसरों पर इसी प्रकार की रूढ़ियाँ सामने आती है इससे यह सिद्ध है कि ग्राम करैता में रूढ़ियों का व्यापक असर है। इस प्रकार रूढ़ियों के कारण करैता जैसे गाँवों की पतनशीलता का परिचय प्राप्त होता है। मेले-ठेले का भी इस उपाचर में व्यापक दर्शन है। प्रस्तुत उपन्यास ही देवी-धाम मेले से प्रारम्भ होता है, जो गाँव की संस्कृति का केन्द्र है। यह मेला पूरे सांस्कृतिक परिवेश के साथ उपन्यास में उभरा पड़ा है। विवेकीराय ने लिखा है– ''हिन्दी साहित्य का सबसे उदात्त, सांस्कृतिक आधुनिक और विशाल चित्रांकन है।'' देहाती सभ्यता अपने चरम पर दिखाई देता है। बिरहा की गायकी, कुश्ती की दंगल, रामदास की सदाबहार नौटंकी कम्पनी, जादू, सर्कस तथा इन्द्रजाल। घोड़ों की दौड़, तीतर का लड़ना, भेड़ों की लड़ाई। तरह-तरह की दुकानों की सजावट पान, खोमचे, मिठाई, गुब्बारे, बाजा की दुकानें तो बच्चों के आकर्षण का केन्द्र है। लड़कियों को इसी मेले में छेड़ा जाता है। तथा गुन्डई भी जोरों पर है। मारपीट तथा शक्ति प्रदर्शन का यह केन्द्र भी है वस्तुतः भारत के गाँवों के मेले में जो सौन्दर्य होता है, वह ग्राम करैता के गाँव में दिखाई पड़ता है। पर्व व त्योहार इस उपन्यास में यथास्थान वर्णित है। मकरसंक्रान्ति, कार्तिक मेला, होली, दीवाली, दशहरा एवं छठपूजा की विशेष रूप से झांकी है, ठंडई की मस्ती, नाच-गानों की धूम-धाम, पान, इलायची, इत्रका भरपूर प्रयोग है। मेले के उत्सव की रंगत खलील मियां की यादों में बस सी गई है। आर्थिक विपन्नता के कारण मकर संक्रान्ति पर पूरे गॉव को चिउड़े, लड्डू, तिलौरे और

गुड़ बाँटे जाने की परम्परा है। इस रोज गंगा स्थान पर खिचड़ी खाने की परम्परा है। ऐसे मुख्य पर्व पर जमींदार के लड़के के गिरफ्तार होने पर मजा किरकिरा हो जाता है, जो बदलाव का संकेत है। दीपावली में घर-द्वार की सफाई, कच्चे घरों की पुताई का उल्लेख है। लक्ष्मी पूजा के लिए जगन मिसिराइन गाथा मशहूर है। राम नवमी व अन्य त्योहार भी इस ग्रामांचल में मनाये जाने की परम्परा दिखाई देती है। लोकगीतों की भरमार है। धान लगाते समय गंगा स्नान जडाते समय या कोई काम करते समय औरतों का गीत गाया जाना सहज है। बच्चे के पैदा होने पर गवना विवाह में लोकगीत अवश्य ही गाये जाते हैं। **लोककथायें** भी उल्लिखित हैं। लोकगीतों में बीसू व सुर जितवा के गीत मुख्य पूरे उपन्यास में लोक कथा व लोकगीतों की अनुगूँज सुनाई देती है– कबीर के दोहे, तुलसी की चौपाइयाँ तथा उक्तियाँ, उलबाँसियाँ व की भरमार, गीतों में सोहर, लचारी, कहरवा, बिरहा, आल्हा आदि गीत गाये जाते हैं। मस्ती में आने पर पुरबिनवाँ राग अलापता है– ''तोहरा के लड़के झुलनी अपनाके छाता

आरे रावल मुनिया

जब हम जाइबे कलिकाता, आरे रावल मुनिया।''[3]

सरूप भगत के भजन को सुरलहरी देखते बनती है। चमरोल की गादी के अवसर पर सोनवा टेरती है–

पिअलो मैं प्रेम पिअलवा हो, मन गिलैं बउराई।

गाए लगहु तनु जरिजाहु हो मोरा कुछ न सुहाई।।[4]

इस प्रकार हम देखते हैं कि अलग-अलग बैतरणी में लोकगीतों की अनुगूँज बहुत देर तक सुनाई देती है। गाँवों में ग्रामीण खेलों का पूरी तरह प्रभाव है। आज की तरह

---

3. अलग-अलग वैतरणी– शिव प्रसाद सिंह
4. अलग-अलग वैतरणी– शिव प्रसाद सिंह

क्रिकेट या बालीवाल या फुटबाल का खेल लोकप्रिय नहीं था। उसने तो कबड्डी, सटरी, चिल्होर पत्ती, सतधरवा, होलापाती, गुल्ली-डंडा, पकड़ दौड़ लुकाछिपी आदि ही बिना दाय के खोल देते हैं। स्पष्ट है कि यह ग्राम की बड़ी त्रासद् स्थिति है कि जहाँ प्रतिभायें दम तोड़ रही हैं, वहीं अप्रचलित खेल गाँव भर में खेले जाते हैं, जो राष्ट्रीय परिदृश्य से गायब से हो गये हैं। गाँव का हेडमास्टर खेल का विरोधी है। मास्टर शशिकान्त के भीतर ऊर्जा है, जो बालकों के भीतरं की प्रतिभा को निकालना चाहता है। कुश्ती व दंगल के अलावा वह न थे खेलों को बढ़ाना चाहता है। कुश्ती में व्याप्त ईर्ष्या व जलन को देपालव सुब्बहानार के माध्यम से व्यक्त किया गया है। वस्तुतः दंगल कुश्ती खेलों के माध्यम से लेख ग्राम की सांस्कृतिक छवि को दर्शाना चाहता है। शिक्षा का स्तर काफी गिरा है। ग्राम करैता के बच्चे स्कूल के प्रति बड़े उदासी न हैं। विपिन किसी समारोह में भाग नहीं लेता दिखाया गया है। नाममात्र का स्कूल दर्शन करने पर यह पता चलता है कि वहाँ का हेडमास्टर उसे अपनी बेजार खेती समझता है। वहाँ का हेडमास्टर पढ़ाई से कोई वास्ता नहीं रखता, राजनीति में ज्यादा भागलेता है गँवई गुटबाजी में वह फंसा है इसीलिए नया मास्टर शशिकान्त दुःखी है। पढ़ाई तो दहेज लेने का एक साधन है वह भी पढ़ाई मात्र दिखावा के लिए। कल्लू के अभिभावक उस की शादी के बाद पड़ाई की ओर ध्यान नहीं देते। हरिया जैसे गरीब छात्र मजबूरी के कारण शिक्षा नहीं पा रहा है। ज्यादातर छात्रों का वर्ग आवारागर्दी कर रहा है ग्राम करैता जैसे तमाम गाँवों का भिक्षक पड़ाई से उदासीन होकर गुटबाजी में फंस गया है और विद्यार्थी अवारागर्दी में तथा शशिकान्त जैसा आदर्शवादी शिक्षक मूक सा परिस्थितियाँ की मारझेल रहा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आंचलिकता की परिधि में जूझ रहे थे हजारों हजारों हजार चेहरे कहीं शिक्षा, कहीं रिवाज, कहीं अन्धविश्वास के मकड़जाल में फँसे नियति पर आँसू बहा रहे हैं। गाँव का संस्कार खेती का है। खेती में रहे परिवर्तनों का सूक्ष्म चित्रांकन उक्त उपन्यास में किया गया है। खेती गाँवों के मन में बसी है, जिससे उनके सुख-दुख जुड़े हैं। झिनकू-जग्गन आदि पक्के किसानों की रग-रग में यहाँ के मौसम,

वातावरण, हानिलाभ, उत्थान पतन सब बसे हैं। लेखक गाँव के निवासी हैं और उन्होंने खेती को बड़े गहन रूप मे देखा है। खेतों के बीच पगडंडियों के बीच विकास की यात्रा शुरू होती है। मौसमी कीट-पतंगों, झींगुर-मेढ़को और अनगिनत घासों की सोंधी महक से पूरा उपन्यास से भरा पड़ा है। शाम के वक्तक खेती के काम से फुर्सत पाकर अलाव के पास गाँव की जिन्दगी इकट्ठा होती है, जहाँ देश-परदेश, खेती-बारी, पर-पंचायत, ऊँच-नीच की बातें होती रहती हैं। वहीं सुख-दुख बाँटे जाते हैं। हँसी-ठिठोली होती है। पुआल पर बैठकर धूप सेंकने, मौसमी साग बीनने, जोन्हरी पगुआने तथा गेहूँ की मड़ाई तक के खेती के संस्कार उभरे पड़े हैं। लगता है अलग-अलग बैतरणी की कथा गाँवों की पगडंडियों से होकर गीत गाते-गाते झिनकू-जग्गन के दुआरे तक जा पहुँचती है। इसी संस्कार में गाँव की आत्मा के दर्शन होते हैं। यह शिव प्रसाद सिंह जैसे सुधी साहित्यकार के लिए ही संभव है।

धर्म के प्रति करैता गाँव का हर आदमी समर्पित है। धार्मिक परिवेश विभाजन के बाद बड़ा ही संजीदा हो गया है। खलील मियां धर्मका बढ़ा स्वस्थ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। उनके साथ घटी घटना बड़ी हृदय विदारक है, पर गाँव का ऐसा धार्मिक स्वरूप के ही कारण है। पूजा-पाठ तथा कर्मकाण्डों का चित्रण है। करैता में देवीधाम का मेला तथा मन्दिर पर हर आदमी का इकट्ठा होना धार्मिक सहिष्णुता का परिचायक है। गोगई को पुजारी के पद से हटाना, खेतों को वापस लेना और थोड़ी बहुत मनौव्वल के बाद उसके बेटे को पुजारी का पद दे देना जमींदारी व्यवस्था तथा धर्म के प्रति समभाव का प्रतीक है। देवनाथ के डाक्टर बन जाने के बाद भी उसके घर पूजा होना तथा कड़ाही चढ़ना धर्म के प्रति लगाव का परिचायक है। पढ़े लिखे अथवा गैर पढ़े लिखे सभी के लिए पूजा-पाठ धार्मिक मान्यता मान्य है। पूरे उपन्यास में भाव उभरा है। युगचेतना तथा राजनीतिक परिदृश्य गुटबन्दी राजनीतिक हलचलें और गाँवों की तरह करैता गाँव में भी विद्यमान है। स्वतन्त्रता के बाद पंचायतों का गठन तथा नई शासन प्रणाली में जनभागिता के कराण गाँवों में गुटबन्दी तथा चुनाव के प्रति रुचि बढ़ी है। स्वार्थ लोलुप

छुटभैय्ये गाँव में राजनीतिक हथकण्डे खड़े करते हैं तथा पूरा गाँव गुटबन्दी की शिकार हो जाता है। पूरे उपन्यास में जैपाल सिंह, लच्छीराम, सुखदेव, गोगई महाराज, सरूप भगत सुरजू, हरखू, सुरजू-सिरिया, जग्गन मिसिर आदि पात्र गवई राजनीति में पले हैं। सुखदेव के कारनामों से विद्रूप स्थिति का सृजन हुआ है। गँवई राजनीति का बड़ा सही चित्रण है। जैपाल सिंह जैसे पैंतरेबाज, सूरजू जैसा प्रतिवादी मारक नेता, हरखू में चमचेबाजी, सिरिया-सुरजू षडयन्त्रकारी, सरूप भगत में गाँधीवादी, जग्गन मिसिर लोहियावादी सिद्ध होते हैं। इस गँवई राजनीति का हस्त्र सरूप भगत की हत्या और वर्ग संघर्ष है। वस्तुतः डॉ. सिंह ने इस उपन्यास के मध्याम से भारतीय गाँवों में नित्य हो रहे वर्ग संघर्ष एवं आत्म अस्तित्व के लिए संघर्परत पात्रों का चरित्र चित्रण करने का प्रयास किया है आंचलिक सन्दर्भ में यह राजनीतिक परिवेश एक महत्वपूर्ण संकेत करता है।

गरीबी व अभाव गाँवों की आवश्यक पहचान है। दयाल महराज के माध्यम से आर्थिक विपन्नता का चित्रण किया गया है। बड़ा ही दुर्दान्त गीत प्रस्तुत है। पेड़ पर की सुगनी सोहारी बेले ले। पेट में की बबुनी, का झूठ बोले ले।। परन्तु अब बच्चे– 'महुआ की रोटी केसारी की दाल' गाने लगे हैं। इस पर दयाल पंडित बड़ी ही दर्दनाक टिप्पणी करते हैं। करैता गाँव गरीबी बेहाली, अकाल व मंहगाई से पूरी तरह टूट रहा है। इसके साथ ही विशेष वर्गों का शोषण दुहरी मार का काम कर रहा है। सरूप-झिनकू-दुक्खन आदि बड़ी ही दर्दान्तक पीड़ा शोषण के रूप में झेल रहे हैं। जग्गन मिसिर जैसा जागरूक व्यक्ति इस त्रासद स्थिति से काफी परेशान है। वस्तुतः यह भारतीय गाँवों की आर्थिक गिरावट साज को सर्वांगीण तोड़ रही है। **लोककथा** में इस उपन्यास में दो लोक कथायें वर्णित है। एक तो डोम और राजकुमारी की कथा जो विपिन व पुष्पा के प्रेम सम्बन्धों और भविष्य के प्रतीकात्मक अर्थ की ओर संकेत करते हैं तो दूसरे दुलाही द्वारा चकटोल की औरतों के बीच कहीं गई सतवंती नारि 'लचिया' की कहानी है जो दुलारी के स्त्रियोचित विश्वासों, मान्यताओं के अन्तर्गत् उसके चरित्र में निखार लाती है। ग्रामीण

परिवेश गाँव भारत की आत्मा है। करेता गाँव भारतीय गाँवों की सारी विशेषतायें अपने में समझते हैं। सुरजू सिंह का बैठका मानो एक पूराव वातावरण है जहाँ गाँव की समस्त विशेषतायें मौजूद हैं। शहरों से दूर ग्रामीण अंचल का यह कोना प्राकृतिक दृश्यों से सजा है। गोधूलि की बेला, सुमई रोशनी चाँद का लाला सिन्दूरी गोला, थालो जैसा चाँद, चैत की चौदहवीं चाँद, झरबेरी, तलैया, पगडंडी, तालाब, पेड़-पौधे, जीवजन्तु सब जैसे एक साथ गाँव की शोभा बढ़ा रहे हैं। वस्तुतः अलग-अलग बैतरणी की यह कथा एक साल के आसपास तक फैली है। रामनवमी के मेले से प्रारम्भ होकर बरसात तथा ठंडी होते हुए आकर समाप्त हो जाती है, परन्तु इसी बारह महीने की कथा में सम्पूर्ण घटनायें घटती रहती हैं तथा समूचे सौन्दर्य के साथ चित्रित होती हैं। गाँवों में बरसात, ठंडी तथा गर्मी का प्रभाव देखने को मिलता है। धूल भरी आँधी हो, बरिश की बाढ़ हो या ठंड से शीतलहरी सब का चित्रण इस उपन्यास से दर्शनीय है। रामदरश मिश्र ने प्राकृतिक चित्रण को आंचलिकता की मुख्य पहचान बताते हुए लिखा है– ''प्रकृति चित्रण आंचलिक उपन्यास का अनिवार्य अंग होता है।'' इस प्रकार हम देखते हैं कि शिव प्रसाद सिंह द्वारा लिखित इस उपन्यास में जगह-जगह प्राकृतिक ग्रामीण दृश्यों का उपमानों द्वारा चित्रण किया गया है। आंचालिक तत्वों में लोकगीतों एवं लोकनृत्य का विशेष स्थान है। पात्रों द्वारा खुशी के अवसर पर लोकगीत गाना तथा नाचना सहज है। इस उपन्यास में ज्यादा तो नहीं है पर कुछ लोकगीत बढ़े सहज बन पड़े है–

> उनके अंखियन से लोखा गिरत होइहैं ना,
>
> उके गजमोती ऊँचरा भिजत होइहै ना।
>
> फूल पारिजतवा झरत हौइहैं ना,
>
> लरकइंयावाँ क नेहिया टूटत हौं हैं ना।।[5]

---

5. अलग-अलग वैतरणी– शिव प्रसाद सिंह

इसी प्रकार के कई गीत पात्रों के मनोभावों को वक्त करने के लिए स्थान स्थन पर गाये जाते हैं। **नृत्य** तो एकाध जगह ही प्रयुक्त हैं, पर इन लोकगीतों के भावों एवं भाषा से पूर्वी उत्तर प्रदेश की बड़ी सही जानकारी मिलती है। पुष्पा की विदाई के समय पटनहिया भाभी के स्वर में ये संकेतात्मक रूप से विपिन पुष्पा के लड़कपन के सहज प्रेम को संकेत करते हैं। लोकगीत, प्रासंगिक एवं सटीक प्रयुक्त हैं।

इस प्रकार अलग-अलग वैतरणी के **लोकतत्व** का विश्लेषण करते समय इसमें प्रयुक्त मेले-ठेले, तीज-त्योहार, खान-पान, रहन-सहन, लोकगीत, नृत्य, बोली, गरीबी, कुंठा, अशिक्षा, गुटबन्दी, जादू-टोने, अन्धविश्वास, धार्मिक मान्यतायें, संस्कार, पहनावा, हास-परिहास का वर्णन जगह-जगह मिलता है, जिससे 'करैता' ग्राम के साथ इस अंचल विशेष के लोकजीवन के बारे में सटीक जानकारी मिलती है। किसी अंचल के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक राजनीतिक व धार्मिक स्वरूप को जानने के लिए इन्हीं तत्वों से प्रवेश करना होगा, तभी वहाँ की धड़कनों को सुना जा सकता है। निश्चयतः यह किसी अंचल क समस्त लौकिक विशेषतायें हैं।

प्रस्तुत उपन्यास के **शिल्पगत** तत्व पर विचार करने के लिए अब हम यहाँ की कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, भाषा-शैली, संवाद, देशकाल एवं उद्देश्य पर विचार करेंगे।

कथावस्तु - अलग-अलग वैतरणी पूर्वी उत्तर प्रदेश ग्राम 'करैता' की वह अमरकथा है, जिसमें जीवन एकसहज गति से चल रहा है, जिसमें एक युग की धड़कनें मौजूद हैं, जिसमें पात्रों की ग्रामीण क्रिया विधियाँ अपने पूरे सौन्दर्यबोध के साथ विद्यमान हैं। ग्राम 'करैता' आजादी के पन्द्रह बीस वर्षो के भीतर बदल रहे ग्रामीण परिवेश की वह कहानी है, जमींदारी व्यवस्था टूटने के बादं बची हस्तियाँ अन्तिम साँसें गिन रही हैं, वहीं नई पीढ़ी का विपिन व शशिकान्त सुधारात्मक रवैया लेकर गाँव में बसना चाहता है, पर वह रह नहीं पाता। कारण यह है कि परिस्थितियों एवं दुष्चक्रों का ऐसा कुहासा छाया है कि कुछ भी दिखाई नहीं देता है। वस्तुतः ग्रामीण पात्रों की

अलग-अलग वैतरियाँ बह रही हैं, जिसमें पात्र डूब रहे हैं, इस त्रासद से उबारने वाले शशिकान्त व विपिन जैसे लोग निराश होकर गाँव छोड़ देना चाहते हैं। जमींदारी ठाट-बाट, अन्तर्विरोध से लेकर गरीबी की मार झेल रहे झिनकू परिवार जैसे हजारों लोगों का चित्रण आदि से अन्त तक इस उपन्यास में फैला है। गरीबी का कारण है– अकाल, सूखा, बाढ़ और इन सबसे बढ़कर अज्ञान व अशिक्षा। शोषण का अनाचार, अत्याचार गाँव पर हावी हैं। चमारों पर जमींदार परिवार का भारी अत्याचार है। अलग-अलग वैतरणी में ग्रामीण यथार्थ का समग्र अंकन किया गया है। इस मसले पर आजादी के पहले और बाद में दोनों स्थितियों के आते परिवर्तनों के सापेक्षिक यथार्थ चित्रण में लेखक का संतुलन प्रशंसनीय है। जमींदारी युग में निम्न वर्ग का व्यक्ति शोषण व अत्याचार से इतना दब गया था कि स्वाभिमान को भूल ही गया था। इसीलिए तो किसुन के कहने पर चमारों में विरोध हुआ, पर सभी आतंकित थे और जैपाल सिंह के कहने पर सब मान गये। यह एक संस्कारगत व्यवस्था में जी रहे नीच वर्गों की कथा है, जिसमें डॉ., सिंह का जैपाल के प्रति मोह झलकता है। कथा वस्तुओं संघर्ष चेतना का व्यापक प्रभाव है। चमारों के बटोर और गुगनी को सुरजू सिंह के घर में डाल आने वाला सन्दर्भ तथा आजादी के बाद उत्साहित निम्न वर्ग के रूप में लच्छी राम, सूरजभान का वर्ग संघर्ष का परिचायक है।

इसी प्रकार आजादी के बाद संघर्ष चेतना के कई रूप देखने को मिलते हैं। एक औसत भारतीय गाँव में जो कुछ भी हो रहा है, उसका चित्रण इस उपन्यास में देखा जा सकता है। इस सच्चाई को बहुत से लोग सह नहीं पाते और दूर भागते हैं। प्रेम के झटके से पलायन करते विपिन का यथार्थ और गरीबी की भूख की मार से व्याकुल बिंधेसरी अथवा जिन्दगी के नरक से परेशान सुरजितवा के गाँव से भागने के यथार्थ अलग-अलग हैं। सुरजितवा व विंधेसरी नरक भोगकर वहीं रहते हैं और विपिन पलायन कर जाता है। विपिन यथार्थ से दो-चार तो होता है, पर वह भाग जाता है तथा कथावस्तु की एक कड़ी है। गाँव में हो रहे अनमेल विवाह व बाल विवाह आदि की स्थितियाँ

सामाजिक यथार्थ के रूप में विद्यमान है और इनके कारणों का पता भी डॉ. सिंह बताते हैं। कथावस्तु में यौन सम्बन्धों को भी खूब चित्रित किया गया है। विपिन-पुष्पा, जग्गन-भाभी, केशो-सोनवां, दैपाल-राजपती, बुझारथ-सगुनी, सुगनी-सुरजू तथा बुझारथ-पुष्पी आदि के चाहे-अनचाहे यौन सम्बन्ध भी कथानक में आये हैं, जो यथार्थ की धरती पर पड़े हैं। कथान के कई मोड़ इस उपन्यास में आये हैं, जिन्हें क्रमवार वर्णित किया जा रहा है। कथावस्तु में आधुनिक सन्दर्भ भी उभरे हैं। आजादी के बीस वर्षों के अन्दर की कथा को प्रवाहित किया गया है जिसमें सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक-राजनीतिक परिवर्तनों को दिखाना मुख्य उद्देश्य है। गाँव में आई सड़ांध से ऊबकर यहाँ का नौजवान भागना चाहता है, यह नगरो-मुखता एक समस्या है। यहाँ जो भी अच्छा है, चला जाता है। अच्छा राशन, अच्छे आदमी घी, दूध सभी तो शहरों में चला जा रहा है, जो यहाँ रहना चाहता है, रह नहीं पाता। इतनी दमघोंटू स्थिति के लिए कौन जिम्मेदार है। यह प्रश्न डॉ. सिंह ने पूछा है। यह बेचैनी ही आधुनिकता है। इस कथावस्तु में यह बात उभरी है। आधुनिकता बांध में मनुष्य के चरित्रगत पहलू-टूटन, संत्रास, अकेलापन, मोहभंग, भग्नाशा, अजनवीपन, कुण्ठा, विरोध, खोखलापन, विक्षोभ, अस्वीकार, आत्मरति एवं निरुद्देश्यता हैं। इन्हीं स्थितियों के कारण आधुनिकता बोध हो रहा है और यहाँ की जिन्दगी शहरों की ओर भाग रही हैं। उपन्यासकार ने कथानक के माध्यम से यह बताने की चेष्टा की है कि गाँव की जिन्दगी सरल नहीं है। गाँव में तमाम रूढ़ियों, संस्कारों, विद्रूपताओं के बीच आदमी संघर्षरत हैं और कहा जाता है कि यहाँ की जिन्दगी सरल है। डॉ. सिंह ने इस मिथक को तोड़ दिया है। न चाहेते हुए यहाँ का नवयुवक गाँव छोड़ना चाहता है क्योंकि यहाँ की विद्रूपता से वह त्रस्त है। प्रेमिका के मुँह पर ताला लगाना, सगे भाई के कुकर्मों को अपने सिर ओढ़ लेना, दरोगा के सामने गिड़-गिड़ाना, मिथ्या प्रतिष्ठा मोह, निर्णय भी न होना तथा एक वर्ग के प्रति मोह रखना आदि संज्ञास के कारण ही है। शशिकान्त, विपिन व डॉ देवनाथ का गाँव छोड़कर जाना कथा के संत्रास युक्त संभावना को व्यक्त करने के सिवाय कुछ नहीं है। बाप के अंधेपन

के बावजूद सम्पूर्ण ईमानदारी बरतने वाला हरिया गरीबी से उबर नहीं पाता। गाँव भी उपेक्षा करता है। ऐसी स्थिति में वह अपने को व्यर्थ सा पाता है और विद्रोह कर बैठता है। जगेसर भी लगभग इन्हीं स्थितियों का शिकार है। पारिवारिक मर्याता को बनाये रखने के लिए कनिया नपुंसक मर्द को आजीवन झेलती है। मूक संवेदना के कराण पटनहिया भाभी क्या परिवार के ताने नहीं सुनती? वे सब पात्र आधुनिक सन्दर्भ में विद्रुपताओं के शिकार हैं। खलील चाचा का सब कुछ छिन जाता है, वे मूक संत्रास की मार झेल रहे हैं। इन सब पात्रों में अजनवीपन, संत्रास, विद्रूपता और शोषण की भावना घर कर गई है। जगन मिसिर का अफना अलग दर्द है, जो व्यक्तिवादी हो गये हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण कथानक आधुनिक परिद्वश्यों से भरपूर है। फणीश्वरनाथ रेणु शैलेश मटियानी राजेन्द्र अवस्थी एवं शिवप्रसाद जी के उपन्यासों में आधुनिकता का पूरा समावेश है। ''इस उपन्यास का कथावस्तु का केन्द्रबिन्दु यही आधुनिकता ही है।'' कथावस्तु में टूटन के स्वर प्रमुख हैं। वस्तुतः कथानक की दृष्टि से आन्तरिक बिखराव और दोहरी बुनावट इस उपन्यास में साफ दिखाई देती है। दस बारह परिवारों की कहानी से परिपूर्ण एक गाँव 'करैता' अपने ग्रामांचल में बिखराव के साथ विद्यमान है। यह बिखराव एक सर्कस के चक्र की तरह है, जिसके केन्द्र में संचालक मौजूद है। देवीधाम मेले का वर्णन इतनी कुशलता से किया गया है कि एक कोलाहल पूर्ण जिन्दगी का पर्याय सा बन जाता है। इस उपन्यास के कथानक की अगली विशेषता है– युगों का तुलनात्मक विश्लेषण। इस कथानक में दो युगों का चित्रण, एक जमींदारी व्यवस्था तो दूसरी स्वतन्त्रता के पश्चात् की ग्रामीण स्थिति हरिजनों पर हो रहे अत्याचार और जैपाल सिंह की जमींदारी तथा आजादी मिलने के बाद अत्याचारों में कोई फर्क नहीं पड़ा है। लेकिन गुटबन्दी में अब अन्तर आ गया है। अब चमार चौधरी की जगह हरिजन नेता हो गये हैं। सुअर की गोश्त की खरीदारी के साथ कीमत मे नकदी भी लेते हैं। वस्तुतः जैपाल व हरिजन चौधरी एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। जमाने के साथ शोषता के प्रतिमान भी बदल गये हैं। जमींदार के स्थान पर दरोगा, पुलिस धनी, छुटभैये नेता, गाँव के

छँटे बदमाश आ गये हैं। पहले व्यक्ति की लड़ाई थी, अब वर्गगत, पार्टीबाजी लड़ाई होती है। प्रेम व व्यभिचारों में भी युग का प्रभाव है। सुरजू व बुझारथ की चार पीढ़ियों की कथायें इस उपन्यास में हैं। कथावस्तु में 'आदमी की खोज' प्रमुख है। डॉ. सिंह ने अपनी कहानियों एवं उपन्यासों में मानव की रचना पर ध्यान दिया है। वस्तुतः मुरदासराय से लेकर भेड़िये तक की कथा बुनावट में वे आदमी ही खोजते हैं। देवी चौधरी 'इंसान' समझकर लेखपाल से मिलन जाते हैं पर पता चलता है कि इंसार भी अजीब है। कुछ बना सकने की ताकत उनमें नहीं है मिटा सकने का गम्भीर होता रहता है। इसी प्रकार 'मनुष्य' की खोज में खलील मियां सब कुछ लुटा बैठते हैं। लेखक का एहसास है– मानो आँखों के सामने मनुष्यता की हत्या के दृश्य एक के बाद एक उभरते चले आ रहे हैं। नारी पात्रों–कनिया पटनहिया भाभी पुष्पा तथा पुरुष पात्रों– विपिन, शशिकान्त, दयाल, जग्गन, एवनाथ में वह आदमी ही खोजते हैं। कथानक में गाँव निर्वासन की समस्या भी गहरे रूप में आई है। परिस्थितियों से विपिन शसिकान्त का गाँव से भागना आधुनिक गाँव की त्रासद स्थिति को स्पष्ट करता परन्तु डॉ. सिंह ने आस्था व आशा नहीं छोड़ी है। वे कहते हैं कि समूचे अंधकार में प्रकाश की रेखायें कौंध रही हैं। विपिन के पूछने पर कि गाँव का क्या होगा? उत्तर देते हैं– गाँव क्या कोई आदमी है उसका कुछ होता रहेगा। अरेभाई यह तो खेमा है कभी उखड़ता है। कभी गड़ता है कभी अच्छे दिन आते हैं तो कभी बुरे दिन .... धरती ही सब कुछ देती है विपिन बाबू। कुल के बिना आदमी की गुजर नहीं।''[6] अर्थात् धरती और आदमी बाकी सब तो चलता रहता है अर्थात् कथानक आदमी की खोज में चलता है। कथानक में व्यंग्यात्मकता का होना भी आवश्यक है। लेकिन इस उपन्यास का यह मुख्य स्वर नहीं है। विपिन, शशिकान्त तथा देवनाथ का स्थितियों से घबराकर भाग जाने की कथा व्यंग्य ही तो है। ये तीनों भावुक, पढ़े-लिखे और आदर्शवादी हैं, पर बिना क्रिया के सिद्धान्त का क्या महत्व है। व्यंग्यार्थ लेखपाल व थानेदार को लेकर बुना गया है। नेताओं

---

6. अलग-अलग बैतरणी– शिव प्रसाद सिंह

के दोगलापन अफसरों की लालफीताशाही एवं छुटभैये नेताओं की वादा खिलाफी लेखक को बड़ा सत्य कहने से नहीं बचा पाया। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि ग्राम 'करैता' को केन्द्र में रखकर लिखे गये इस उपन्यास का कथानक राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृति दृष्टि से आंचलिकता का रंग लिए हुए हैं। यह कथानक एक विशेष अंचल को रेखांकित करता है।

चरित्र-चित्रण– डॉ० शिव प्रसाद सिंह की कहानियों में चरित्रांकन चरित्रोन्मुख हैं तथा उपन्यासों मे चरित्र उद्देश्यों-मुख हैं। अलग-अलग वैतरणी के पात्रों में चरित्र का विकास अत्यन्त सहज व यथार्थरूप में किया गया है। कुछ भी असंभव नहीं करते इनके पात्र। चरित्रों की कसौटी में इनके पात्रों का फिट बैठना इनकी उपन्यास कला का परिचायक है, कनिया, जग्गन, देबू, सरुप भगत, खलील मियां, शशि कान्त जहाँ सज्जलता के प्रतीक हैं तो सगुनी, बुझारथ, जगेसर, छबिलवा, सिरिया, हरिया, सुरजू प्रायः दुष्टात्मा के प्रतीक हैं। जैपाल में बाहर सज्जनता दीखती है, पर वह अन्दर से बहुत जटिल है। विपिन कथा का प्रमुख पात्र है। समीक्षकों का कथन है कि ''अलग-अलग वैतरणी महान चरित्रों का विराट अलबम है।'' नायकत्व के बारे में काफी समीक्षा हुई है। 'करैता' ग्राम को बहुत सी वैतरियाँ बह रही हैं, जो सबकी अलग-अलग हैं। उपन्यासकार ने नाम से ही स्पष्ट कर दिया है कि इस उपन्यास में हर एक की अपनी पहचान है। मेरी समझ से मुख्यपात्र तो कहा जा सकता है नायक नहीं। नायक कथा से भागता नहीं संघर्ष करता है, जीते या हारे, यह अलग बात है। इसीलिए सम्पूर्ण गाँव को ही 'नायकत्व' प्रदान किया गया है। अब हम अलग-अलग चरित्रों के बारे में एक-एक का अन्वेषण करेंगे।

जैपाल सिंह–यह अपने आप में युग का चरित्र लिए हुए है इनके माध्यम से जमींदारों के रूतबे एवं पतनशील समाज पर ढाये जा रहे जुल्म की कहानी कही गई है। यह दो युगों का साक्ष्य प्रस्तुत करता है। इसका चरित्र बड़ा सशक्त हो उठा है, लेखक दोनो युगों की उत्थान पत्तन की कथा के प्राकारान्तर यह कहना चाहता है कि जैपाल

बरगद का पेड़ है, जिसकी छाया ने कोई पनप नहीं' सकता है। एक स्थल पर जमींदार को बाघ तथा गाँव वालों का मेंमना बताया गया है। जैपाल सिंह की मृदुता-कटुटा, कुशलता कांइयांपन, वाक्पटुता सादगी एवं दो मुँहायन लोगों को भ्रम में डाले रहता है। मांसाहारी बाघ शाकाहारी हो गया। बुढ़्ढा फिर आ रहा है की खबर से पूरे उपन्यास में खलबली मच जाती है। पुश्तैनी बैर-विरोध के कारण हार जाना उसे बर्दाश्त नहीं है। कुश्ती प्रसंग में जैपाल सिंह सुब्बा नट को निर्णायक बनाये रखते हैं कि कोई उंगली न उठाये, पर भितर घात तो बाकी ही है। ऐसा हजारों पात्र गाँव में बिखरे पड़े हैं, जिनमें जैपाल सिंह का चरित्र देखने को मिल जाता है, उसकी पहुँच ''जज कलक्टर का हाथ पकड़कर फैसला बदलवा दें, थाने पुलिस की क्या बिसात? जैपाल का चरित्र बड़े ही उहोपांह से भरा है, जो साधुता व काइंयाँपन का मिला जुला रूप है। उसका अन्त भैरो पाण्डेय (कर्मनाशा की हार) की तरह है परन्तु भैंरो समाज से प्रश्न पूछकर निस्तारित कर देता है, जैपाल प्रश्न छोड़कर विलीन होता है। वस्तुतः चरित्र में यह उ० प्र० ग्रामांचल का एक सर्वसुलभ पात्र है। विपिन यह कमजोर, आदर्शवादी, पलायनवादी पात्र है, जो जगान मिसिर की श्रेणी में आता है, विपिन हमेशा केवल सोचता है। पुष्पी को चार सौ रु० देकर नीलामी से बचाना, बुझारथ को थाने से छुड़ाकर लाने, बुझारथ का दोष अपने माथे लेने तथा जग्गन मिसिर के मामले में थानेदार से सीधे बातचीत करना आदि कामों को छोड़कर उसने आदर्श की बातें कहीं हैं। उसके भीतर ग्राम सुधार की भावना तो है, जरा कुछ कर नहीं पाता। यह कुलीन, स्वाप्निल, आत्म केन्द्रित एवं भावुक युवक ग्राम करैता को सुधारना चाहता है। पर उसके वश की बात नहीं है। इस तरह वह गाँव के अन्दर का बनते बनते बाहरी हो जाता है और एक दिन पलायन कर जाता है यद्यपि कि विपिन कमजोर चरित्र है, पर उसके माध्यम से लेखक ने ऐसे हजारों भावुक व कल्पनाशील नवयुवकों का चित्र खींचा है, जो गाँव को बनाना तो चाहते हैं, पर इच्छा शक्ति की कमी के कारण केवल सोचकर रह जाते हैं। यह भी लेखकीय कला है जो लेखक द्वारा एक केन्द्रीय पात्र की रवाना कर कुछ कहने की चेष्टा की गई है। जग्गन

मिसिर वे चिन्तक के रूप में सामने आते हैं। राजनीति में लोहिया की तरह उन्होंने चिन्तन किया है। हरिया-सिरिया दबिलवा जैसे आवास लड़कों के उजड्डपन तथा शशिकान्त, विपिन व देवनाथ के बारे में स्वरों बातें सुनाते हैं। वह आस्थावादी पात्र है। जग्गन मिसिर खलील मियां के विषय में लाठी भी उठाते हैं। लड़ाकू पात्र जो समय-समय पर बार करता रहता है तथा परिस्थितियों से जूझता रहता व जग्गन मिसिर के चरित्र में कर्मठता एवं चिन्तन के साथ प्रगतिशीलता बोधगम्यता, कठोरता, नम्रता, स्वाभिमान एवं सामाजिक बोध कूट कूट कर भरा है।

संस्कार– ''क्या बद्री मिसिर का खानदान खत्म हो जाएगा।''[7] इन गुणों से गाँव में उनकी धाक है। इस प्रकार तमाम उदात्त मानवीय गुणों से वे ओत-प्रोत हैं लेकिन उनकी नकेल मिसिराइन के हाथ में है। वस्तुतः डॉ० सिंह ने जग्गन मिसिर जैसे पात्रों की रचना का यह अहसास दिलाया है कि सब कायर नहीं है। अलग-अलग वैतरणी में कुछ नदिया अजग्र स्रोत से परिदेय है।

कनिया– भारतीय नारी के समस्त धीर शील गुणों से युक्त यह पारम्परिक लोक चरित्र है। लेखक ने इस अत्यन्त गरिमा प्रदान की है। परिवार के प्रति कर्त्तव्य निष्ठ एवं दृढ़ विचारों वाली यह हर पात्र को प्रभावित करती है।'' जै पाल भाई बिना उसकी राय के कोई काम नहीं करते।'' कोई गऊ लक्ष्मी, कोई भवानी का प्रसाद तो कोई कुल वधू कहता है कनिया के रूप में डॉ० सिंह ने एक आदर्श नारी पात्र के रूप में समस्त परिस्थितियों में स्थित प्रश्न सी बनी रहने का चित्रण किया है। कनिया पूरी जिन्दगी ससुर के वचनों को निबाहती है। एक क्षमाशील नारी के रूप में भारतीय गरिमा पूर्ण आरी व्यक्तित्व को उपन्यासकार ने दर्शाया है। डॉ० विवेकी राय ने कनिया के व्यक्तित्व दर कुल सवाल उठाये हैं, किन्तु ये प्रश्न इसी उपन्यास में मिल जाते हैं।

खलीला खाँ का चरित्र साम्प्रदायिक सद्भाव से ओत-प्रोत है। करैता गाँव की

---

7. अलग-अलग वैतरणी– शिव प्रसाद सिंह

परम्परागत भाई चारे की जीवन्तता इस पात्र में देखने को मिलती है। वस्तुतः खलील मियां के साथ हुए कूट मजाक और मनुष्यता की हत्या सचमुच गये वक्त के ताजिया की तरह हो जाता है। खलील आदर्श वादी तो है पर लापरवाह है। खलील मियां गांव छोड़ देते हैं। इसी प्रकार मास्टर शशि कान्त की करैता स्कूल में आकर शिक्षा की दशा सुधा सा चाहता है और भयाक्रान्त और निर्दोष चेहरों पर ज्ञान की रेखायें देखना चाहता है पर मारक स्थितियों से वह भी टूट जाता है। वह प्रयास तो पूरा करता है, परन्तु गँवई राजनीति का शिकार हो जाता है। उसके छोर-प्रशान्त, कर्म वीर पात्रत्व की यह त्वरित टूटन और पलायन ही उसके चरित्र को सन्देहास्पद बना देता है, शशिकान्त विद्रोह नहीं कर पाता है, वह समझौतावादी है। वह 'अपने काम से काम' की स्थिति में रहकर बीच का मार्ग निकालना चाहता है, पर इस गँवई गन्दगी में वह डूब जाता है और सदा के लिए पलायन कर जाता है। शशि कान्त आजाद भारत में बिगड़ी शिक्षक प्रणालीका एक सही पुर्जा बनना चाहता है। ''कच्ची मिट्टी से मनचाही मूरत गढ़ने की अदम्य इच्छा'' लेकर वह आता है, पर करैता जैसे हजारों गाँवों में इस टूटन से वह उबर नहीं पाता। उपन्यासकार ने अंधेरे में एक दिये का सृजन किया है। दयाल महाराज भी कथा में चरित्र की द्रष्टि से एक सर्व सुलभ पात्र हैं। वह कथा-पुराण, तीज-त्योहार पर्व, मेले-ढेलें में अपनी सदा बहार हँसी के साथ मौजूद रहते हैं। इनके चरित्र में पीर बवर्ची भिश्ती खर का योग पाया जाता है। इन्होंने घटना को प्रधानता दी है तथा कथा को आगे बढ़ाने में सहायता की है। टूटे बिखरे सम्बन्दों को जोड़ने में सहायक सिद्ध हुए है। इसके अतिरिक्त इस उपन्यास में कुछ चरित्र मनोवैज्ञानिक रूप से उभरे हैं, जिनमें पटनहिया भाभी, हरिया, और जगेसर मुख्य हैं। पटनहिया पढ़े लोगों के बीच हरामजादी कुतिया से ज्यादा नहीं है वैसे पूरे गाँव में वह विविध रूप में सामने आती है। पटनहिया भाभी शादी के खोखलेपन की भयावह परिणाम की वाहक हैं। कल्लू जैसे नामरद के पल्ले बाँध दी जाती और जीवन या उसे ढोती है कुछ भी हो वह गँव वालों के लिए भारतीय मर्यादाओं का पालन करने वाली कुल वधू है। पात्रों की समझ कुछ भी हो सकती है।

मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया के बीच भाभी का यह चरित्र अजीव संतुलन का परिचायक है। हिन्दी-साहित्य में यह नया प्रयोग है। हरिया परस्पर विरोधी भावों का प्रतीक है। कुछ उसे 'प्रतिभावान दुष्ट' कुछ समझदार, चतुर, कर्म तो कुछ उसे पुराण पंथी कहते हैं। वह शरारती है तभी तो बुझारथ को उकसाकर मिसिर से बदला लेना चाहता है। वह सारे समाज को ठोकर मारकर चल पड़ता है, जो नई व्यवस्था पर करारा चोट है। तभी तो सड़ी व्यवस्था को यह कहता है– "यह अंधा समझता है कि मैं इसे कांवड़ में बिठाकर ढोता रहूंगा।[8]" उसका इस उपन्यास में टूट जाना और समाज से विमुख हो जाना एक ग्रामीण पढ़े लिखे प्रतिभावान का विश्वसनीय व प्राभागिक दस्तावेज है। इसके अतिरिक्त राजनीतिक व खल पात्रों का भी यथा स्थान प्रयोग है जो इस प्रकार हैं– सुरजू सिंह खलपात्रों का सरगना है तो सिरिया धूर्तज्ञ, कांइयापन लुच्चई-लफंगई तथा तीन-तेरह का जीता जागता मारीचि, मुंशी जवाहिर लाल शिक्षक के नाम पर कलंक, जगेसर छल-छद्म एवं पाखंड का प्रतीक बुझारथ सिंह जड़ में घुन की तरह सर्वनाशी, सरूप भत बलिदानी किस्म का किन्तु परिस्थितियों के अनुरूप रंग बदल लेने वाला, धनेसरी कर्मठता एवं जिजीविषा की मिसाल, झिनकू-दुःखन मालिक के प्रति वफादार और सहिष्णु, दुलारी विचारशील, कर्मठ सुखदेवराय ढहते जीवन मूल्यों एवं भ्रष्टाचार के पर्याय, गोगई उपाध्यिया निरे देहाती उजड्ड।

इस प्रकार 'अलग-अलग वैतरणी'' उपन्यास में शिव प्रसाद सिंह ने सैकड़ों पात्रों के चरित्र को उभारा है, जो ग्राम करैता के ही नही सही मायने भारत के गाँवों के पात्र हो गये हैं। इनमें वे ही अच्छाइयाँ, बुराइयाँ तथा बलिदान समाहित है, जो किसी गाँव के पात्रों में मिल सकता है चरित्र-चित्रण की दृष्टि से उका उपन्यास, ग्रामांचल की सोंधी महक से सर्वथा सराबोर है। यद्यपि कि डॉ० सिंह ने इस उपन्यास को आंचलि के मानने से साफ इनकार किया है'' उपन्यास आंचलिक लगे तो लगे, पर दृष्टि आंचलिक न

8. अलग-अलग वैतरणी– शिव प्रसाद सिंह

हो।''[9] जान बूझकर लेखक ने ऐसे आंचलिक नहीं बनाया है, पर पात्रों के चरित्र द्वारा यह सिद्ध होता है तो इसमें किसी का कोई दोष नहीं हैं।

भाषा-शैली अलग वैतरणी में शिव प्रसाद सिंह ने देशज, स्थानीय बिगड़े, उर्दू, अंग्रेजी, फ़ारसी, मैथिली एवं क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग किया है। भाषा के मामले में लेखक ने शब्दों को भावानुसार प्रयुक्त किया है। शब्द कहीं ऐसे तोड़े मरोड़े नहीं गये हैं जो समझ में न आते हो। रेणु जी ने स्थानीय रंगत दिखाने के लिए जहाँ शब्दों का अव्यवहारिक प्रयोग किया है, वही शिव प्रसाद सिंह जी ने शब्दों वाक्यों, के प्रायोजन सावधानी बटती है, किन्तु भावों को व्यक्त करने के लिए ग्राम करैता के आस-पास जिनका प्रयोग होता है, जैसे बोले जाते हैं, वैसा ही दिखाया गया है करैता के माध्यम से कठौता, जाठी, विरहामपुर, मझगाँवा या ऐसे ही तमाम गाँवों के चित्र को यथार्थ रूप देने के लिए उसी की बोली को अपनाया है। मुहावरे, उक्तियाँ, हास्य, तुक बन्दियाँ, किस्से कहानियाँ, गालियाँ, लोकगीत, लोकधुन या अन्य। बिगड़े मुहावरों का प्रयोग किया है। भाषा का वैशिष्ट्य देखते बनता है। तीखी संवेदना व्यक्त करने के लिए एक उदाहरण पर्याप्त है– पेट में दाना रहता है तो ईसाली तहजीव भी कुत्ते की तरह दुम हिलाती है। अगर पेट में चूहे दण्ड पेल रहे हों तो तहजीव रही कुतिया की तरह गुर्राकर अलग हो जाती है.....''।[10]

''ई नहीं कि खेखर की तरह मुँह बनाये, बीड़ी सुड़कते मजनू बने गली-गली घूम रहे हैं। दुअन्नी चवन्नी लेकर इश्क कर रहे हैं।'' इत्यादि इसी तरह के भाषा के नमूने मिल जाते हैं। डॉ० सिंह ने इस उपन्यास में भावों को व्यक्त करने तथा परिवेश को पूरी तरह दिखाने के लिए यहाँ बोली जाने वाली बोली-भाषा का प्रयोग किया है। जबर्दस्ती शब्दों का प्रयोग नहीं किया है। गहरे अर्थ को व्यक्त करने के लिए संक्षिप्त

---

9. अलग-अलग वैतरणी– तटचर्चा– शिव प्रसाद सिंह

10. अलग-अलग वैतरणी – शिव प्रसाद सिंह

वाक्य– ''भीड़ ने उनके चेहरे को रंग देखकर खुद गर्दन झुका ली।'' इस उपन्यास की भाषा का प्रयोग 'जग्गन-भाभा संभोग' प्रकरण तथा दुलरिया की कहानी पर खूब जमता है। ज्यादातर लोक बोली व जनपतीय भाषा का प्रयोग हुआ। डॉ० विवेकी राय ने इसे 'खड़ी बोली का लोक भाषाकरण'' कहा है। उन्होंने आगे भी लिखा है कि इसे भोजपुरिया मोड़ देकर बनारसी चासनी में ढाल दिया गया है। प्रेमचन्द ने भी ग्राम कथा लिखी थी, पर उन्होंने लोकभाषाकरण किया, किन्तु डॉ० सिंह ने इसमें जबरन ठेंठ का प्रयोगकर एक तरह से इसे रुपानीय बनाने की कोशिश की है। जबकि ऐसा नहीं है। प्रेमचन्द के लिखने तथा डॉ० सिंह के लिएखने में 50 वर्ष का अन्तर है। डॉ० सिंह अपने कथा–साहित्य में देशज शब्दों का प्रयोग केवल भावों को उसी के अनुरूप व्यक्त करने के लिए प्रयोग किया है। यदि ऐसा न करते तो ग्रामांचल का साहित्य राष्ट्रीय स्तर पर समझ पाना सब के बश की बात नहीं है।

कुछ प्रमुख उदाहरण देखें तो स्पष्ट हो जाता है।

क्रियापद में– बतियाना, पनियान्त, चेता दिया, चौड़िया जाना, लौ का, सरापती, बहरिया देना तथा नामों में हरिया, छबिलवा, सुरजितवा, बुझरथा, झिनकुआ आदि का प्रयोग मिलता है भोजपुरी जो खाले वाक्यों में– इहाँ इस लंका में हर साला वावनै हाथ का बनता है।'' इसी तरह कौ नो, का है, का नाहीं, अब्बै, उहाँ, इसा आदि, वह के लिए वो, यह के लिए ये, आदि का प्रयोग। इसके अलावा भाषा का कलात्मक प्रयोग भी मिलता है– प्रतीकों का भी प्रयोग बहुतायत है। जमींदार व प्रजा का बाध व मेमना का प्रतीक देना, 'आदमखोर जानवर' ''केन्द्र और मकड़ी'' 'बुरी आदतों को दीमक' 'सुखद अतीत का ढहना' बचकानी खुशियाँ जग्गन मिसिर की शादी को सिलाई मशीन से पुरानी माटी, नई माटी से नये व पुराने सौन्दर्य बोध से भाषा की प्रतीकात्मक ही झलकती है उपन्यास के पृष्ठ 307-8 पर भाषा का वैशिष्य देखते बनता है। जहाँ प्रतीकों का प्रवाह उमड़ पड़ता है। ''ऐसा दरिदर-सूपनाहीं देखा। सारा चाउर झर झरकर भूसी में गिर रहा है।'' सूप में बेटे की नात्वाय कीयत, चावल का भूसी में गिरना अच्छाई

बुराई का एक में मिल जाना प्रतीकित है। इसी प्रकार के हजारों प्रतीक उपन्यास में बिखरे पड़े हैं जो भाषा को बड़ा ही मनोमरम बना देते हैं। भाषा में बिम्ब विधान का प्रयोग भी खूब है। जैपाल के बारे में बिम्ब विधान द्रष्टक है।'' ऊ गोरा भीसाम शरीर, दपदप मलमली साफा, - - - - वह मुन्यि गल मोछे काले-काले जामुन की तरह पीछे-पीछे जो बरछना चलता था बन्दूक लिए।'' करैत में लगे मेले से लेकर विपिन के गाँव छोड़ने तक बिम्बों हो भाषा पटी है। बिम्ब से गाँव की विशिष्टता व्यक्त करने ने लेखक को विशेष सफलता मिली है। इसके अलावा भाषा में गन्छ, मिथक स्पर्श संकेत, अलंकार तथा उपमान बहुतायत मिलते हैं, जिससे स्थानीय रंगत को हू बहू उतार दिया जाता है। डॉ० सिह ने इस उपन्यास में जिन भाषा गतिविधियों को पकड़कर अंचल की नब्ज टटोलने की कोशिश की है, उतना अन्य किसी ने अब तक सफलता नहीं पाई है। गेहूं वई उपमान, रूपक एवं अलंकारों का विधिवत प्रयोग किया है।

लेखक का शब्द भंडार बहुत समृद्ध है। उपन्यास में प्रयुक्त शब्दों में यथा स्थान आलंकारिकता का समावेश है। देशज शब्दों में ठेंठ शब्दों का प्रयोग ज्यादा है– रिरियाहट, जुड़ा गया, पछुआ, पछोटे, उठंगकर, खराई, गोंड़ा घोंघा, चिढ़कूं, बनरखत, चिरौरी, न बजे, अहरा, बाटी, पुरवर, दंवरी इत्यादि, तत्सम से तद्भव शब्दों का प्रयोग– हरिया, सिखिः परपंच, मगन, दुआर, खोखी, साहत, बस्तर, लिल्तर इत्यादि है। संस्कृति के शब्द-वदान्यता, महोदधि, आम्र पल्लव, सोपान, तत्पर, उद्यत, वाक्युद्ध, चतुर्दिक इत्यादि; उर्दू शब्द–इंतकाल, मोहताज बर्खास्त, तोहमत, अल्फाज, इत्मिनान, आदमकद, जिस्म इलजाम इबारत, बदनीयती, इंतहा तथा हिकारत आदि। अंग्रेजी के शब्द-ऐलान, रिजल्ट, ट्रेन्ड, क्रीम, मेम्बर, पाकेट, आडिट तथा कैश पेमेंट आदि बिगड़े शब्द-हुकुम, सक्ख, सहूर उजुर तफरी, फिकट, फैर, सिलेमा, डागडरी, टिक्कस, रपट आदि। गालियाँ गावदी, फिसड्डी अण्टाचित्त, गपोड़ा, गुह्मछर्रे दोगला, सूरतहराम किनाल करमजली इत्यादि। इसके अलावा कहावतें दे रुपी चिरई मरहठी बोल, खायें गे गेहूँ रहेंगे गेहूँ, करिया अच्छर भैंस बराबर। इसके अलावा भाषा में शब्दों की अशुद्धता, वर्तनी का

बिगड़ता, कहीं-कहीं लिंग व वचन के प्रयोग में भी अशुद्धि मिलती है जो भावानुसार डॉ० सिंह स्वीकार करते हैं–'' लिखते समय भावों की अकुलाहट के कारण लेखनी साथ नहीं दे पाती। कहीं-कहीं डाट्स का प्रयोग तो कहीं भाषा में कुछ त्रुटि हो जाती है पर यह जानकर प्रयोग[11] नहीं है। भावानुसार ही ऐसा है।'' इस प्रकार डॉ० सिंह द्वारा लिखित इस उपन्यास में भाषा का प्रयोग भावानुसार तथा स्थान की विशेषता बताने के लिए किया गया है, जिसके आधार पर हम कह सकते हैं कि भाषा ने जिस धरती की विशेषता को छुआ है, वह आंचलिक गंध से परिपूर्ण है। उसमें कहीं से भी बाहरीपन नहीं लगता है।

संवाद– कथाकार शिव प्रसाद सिंह के कथा साहित्य में कथोपकथन के इस शिल्प का सर्वत्र प्रयोग है कहीं-कहीं छोटे कथन द्वारा बड़ी बात कह जाते हैं– ''तोहरे मुँह से कहानी सुन के तो सच घिया, बुझता है कि सहद चू रही है।'' ''ई ऐलान सुनके शहर सनाका खा गया।'' कथोपकथन के आध्याय से कथा वस्तु का विकास पात्रों का चरित्र-चित्रण समूचे कथा साहित्य में कौतूहल बना रहता है। शिव प्रसाद सिंह ने पात्रों के संवादों के साध्य से उसके सम्यक् क्षेत्रीय स्थिति का अवलोकन करने की चेष्टा की है। हास्य विभेद व्यंग्य के माध्यम से बात कही गई है। संवादों में लोकोक्तियाँ, मुहावरे, लोकगीत, तुकबन्दियों का भी प्रयोग है, जिससे रोचकता बनाये रखती है।'' जगेसर की आँखें आलू के बराबर हो गई थी'' उसका लाल चेहरा ललछौहां हो रहा था आदि वाक्यों द्वारा कम शब्दों में बड़ी बातें कह दी जाती हैं। प्रस्तुत उपन्यास में पात्रों के कथोपकथन द्वारा स्थिति का बड़ी सहजता से चित्रण हो जाता है स्थानीय भाषों को व्यक्त करने के लिए पात्र निजी भाषा का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार व्यक्त अव्यक्त कथोपकथन/संवाद द्वारा पात्र यहाँ की विशेषतायें प्रकट करता है।

वातावरण–लेखन की शुरुआत के लगभग 15 वर्षों के बाद यह उपन्यास लेखक

11. शिव प्रसाद सिंह से साक्षात्कार– सत्यदेव त्रिपाठी

द्वारा लिखा गया है, जिसमें लेखक ने बरसों से काम किया है। निश्चयतः यह उपन्यास जमींदारी प्रथा से लेकर स्वातंत्र्योत्तर भारत के कल मिलाकर लगभग 50 वर्षा के ग्रामीण जीवन का यह प्रमाणिक दस्तायेज है। इस अवधि में बदल रहे ग्रामीण परिवेश व जीवन मूल्यों को इस उपन्यास में दर्शाया गया है। जहाँ डॉ० सिंह का विश्वास था कि– ''जिन्दगी वहाँ रोती ही नहीं मुस्कराती भी है'' बाद में आते-आते मास्टर शशिकान्त से कह लवाना पड़ा कि– ''डाँटो तो भी हँसाओ तो भी चेहरे में कोई फर्क नहीं पड़ता।'' जमींदारी व्यवस्था के चरम तथा फिर अधोपतन से लेकर नये युग बोध तक की सारी कथा इस उपन्यास में वर्णित है। नारी किसान अध्यापक छात्र मजदूर, छुट भैये नेता, दरोगा, लेखपाल तथा आम आदमी के चेहरे के भाव बदल रहे हैं।

इस वातावरण में हासोन्मुखी प्रवृत्तियाँ जोर मार रही है। गाँव का क्या होगा? इस प्रश्न पर डॉ० सिंह का विश्वास है कि स्थिति बदलेगी। लोगों में अपने आप बदलाव आयेगा। डॉ० सिंह वातावरण के बारे में लिखते हैं– ''मेरी जिन्दगी में गाँव एक ऐसी हकीकत है जिसे मैं चाट कर भी नहीं काट सकता।[12] अर्थात् गरामीण परिवेश का प्रस्तुति उनकी अटल छवि है। शिव प्रसाद सिंह जी ने आंचलिक कथाकारों की भाँति केवल ग्रामीण परिवेश दिखाने लिए ही वातावरण का उपयोग नहीं किया है बल्कि उन्होंने उसमें डूबकर बल के जीवन को दिखाया है। गाँवों में होने वाले परिवर्तनों को उन्होंने दर्शाया है। मनुष्यों के अलावा पशु-पक्षी पेड़-पौधे तथा अर्जीव वस्तुएं तक इनके कथा में ज्यों के त्यों प्रयुक्त हैं, इनकी कथाओं ने कहानी को धरती से इतना समन्वित कर दिया है कि उसमें हर क्षण उस धरतीं को धड़कने सुन सकते हैं। प्रकृति चित्रण तथा ग्रामीण परिवेश का अंकन कहानियों एवं उपन्यासों के अविभाज्य अंग हैं। जहाँ कल तक बैलगाड़ी, पनछर, हलचलें थे वहीं आज टेम्पो, ट्रैक्टर, हैण्डपम्प, ट्रान्जिस्टर दिखाई पड़ रहे हैं। इन परिवर्तनों को लेखक ने स्पर्श किया है टूटती सामन्तवादी धारणाओं और संस्कारों के साथ बिखरती ग्रामीण व्यवस्था और प्रजातंत्र के नये प्रयोगों के बीच जो

12. मेरी प्रिय कहानियाँ की भूमिका– शिव प्रसाद सिंह

तनाव है उस वातावरण को उपन्यासकार ने व्यक्त किया है। इस प्रकार इस वातावरण में गाँव की हलचलें मौजूद हैं। ग्राम करैता जैसे गाँवों में आजादी के बाद स्थितियां जितनी बदली हैं। वे अपने पूरे सौन्दर्य के साथ चित्रित हैं।

वस्तुतः लेखक अलग-अलग वैतरणी के वातावरण सृजन में इस बात का ध्यान रखता है कि किस प्रकार गाँव में परिवर्तन हो रहे हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि डॉ० शिव प्रसाद सिंह द्वारा लिखित प्रथम उपन्यास में करैता गांव के माध्यम से उत्तर भारत के समस्त गाँवों के ग्रामीण परिवेश को उभारा गया है। जहाँ की लोकजीवन शैली तथा परिवेशगत विशेषतायें ही इस उपन्यास में वर्णित है। प्राकृतिक परिवेश स्थल और सांकेतिक रूप में प्रयुक्त हुए हैं। लोक संस्कृति एवं शिल्पगत शैली की दृष्टि से इसे उत्तर भारत के आंचल की कथा कहा जा सकता है। डॉ० सिंह ने लिखा है– उपन्यास यदि आंचलिक लगे तो लगे, पर दृष्टि आंचलिक न हो।''

आंचलिकता के प्रश्न पर डॉ० सिंह की मजबूरी के मद्देनजर यह कहा जा सकता है कि रेणु के उपन्यासों को आंचलिकता के बोध से कोई कैसे निकाल सकता है और अलग-अलग वैतरणी को किसी घेरे में कैसे कोई डाल सकता है, जब तक कि उसमें तथ्य ऐसे न हों। डॉ० सिंह ने कहा भी है– मैं लाख चाहूँ पर पढ़ने वाले यदि इसे आंचलिक उपन्यासों में डाल दें तो मैं कर ही क्या सकता हूँ।'' निश्चयतः वे आंचलिकता से बचना चाहते हैं। अलग-अलग वैतरणी में वर्णित तथ्यों– तीज-त्योहार, मेले-ठेले, रहन-सहन, आचार-विचार बोली भाषा, जादू-टोने, अन्ध-विश्वास, मूर्खता कामुकता, लोकगीत, लोकाचार तथा लोक संस्कृति के अन्य तत्व कथा शिल्पगत रूप में कथा वस्तु, भाषा, चरित्र-चित्रण वातावरण, संवाद तथा उद्देश्य ही एक ग्रामीण विशेषज्ञ के स्वरुप को रेखांकित करते हैं। कुछ आलोचक कहते हैं कि रेणु के मैला आंचल की तरह अलग-अलग वैतरणी आंचलिक नहीं है। इस पर उत्तर यह है कि कम आंचलिक या ज्यादा आंचलिक का प्रश्न नहीं है बल्कि आंचलिक का है। यदि ७एत्र विशेष की भंगिमा को कोई कृति पूरी तरह उतारती है तो निश्चयतः वह आंचलिक कृति कही जा सकती है।

लोकतत्व वशिल्पगत विशेषता के कारण अलग-अलग वैतरणी एक आंचलिक उपन्यास कहा जा सकता है।

शिव प्रसाद सिंह का अगला उपन्यास **'गली आगे मुड़ती है'** 1974 में प्रकाशित हुआ था। पूर्व उपन्यास में जहाँ कथाकार ने ग्राम करैता की समस्त धड़कनें को कैद किया है वहीं इस उपन्यास में लेखक ने पुरातन नगरी काशी को केन्द्र में रखकर उसकी समस्त विशेषताओं को स्पष्ट किया है। युवा समस्या युवा विद्रोह आक्रोश असन्तोष एवं पीड़ा को इसमें दर्शाया गया है। युवा आक्रोश के विविध रूप है, जिनका साक्षात्कार लेखक ने अपने अध्यापकीय जीवन में किया था। समस्याओं से दो चार होने के फलस्वरुप लेखक को बहुत अनुभव प्राप्त हुआ था जिसे उन्होंने इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है।

वह स्पष्टतः स्वीकार करते हैं– मुझे इस तरह का मुगालता नहीं है कि जिस समस्या के पुरानी पीढ़ी के बौद्धिक बुरी तरह टकरा रहे हैं उसके समाधान के लिए मैंने कोई रास्ता पा लिया है। बस यह उपन्यास युवा आक्रोश की नाना शक्लों से यदि आपको घनिष्ठ रूप से परिचित करा सके तो लेखक का श्रम सार्थक है।'' अर्थात् युवा आक्रोश के विविध स्वरुप का दिग्दर्शन ही एकमात्र लक्ष्य है। प्रायः इस उपन्यास के बारे में लोगों का मत है कि यह काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्रों द्वारा चलाये जा रहे हिन्दी आन्दोलन पर आधारित है। यह बात कुछ अंशों में सही भी है, पर समस्त युवा आक्रोश को व्यक्त करना लेखक का ध्येय रहा है। स्वयं लेखक ने स्वीकार किया है कि जन आन्दोलन इस उपन्यास का कथ्य है। हर स्वार्थी व्यक्ति संस्था दल या आन्दोलन को युवा वर्ग चाहिए, जो उसके आन्दोलन को आगे ले चले, क्योंकि यह सर्व विदित तथ्य है कि युवा वर्ग देश को दिशा दे सकता है। चूँकि युवा वर्ग बेकारी, बेरोजगारी से जूझ रहा है इसलिए बड़ी सानी से इसे मोड़ा जा सकता है। उपन्यास का प्रमुख पात्र रामानन्द बनारस के राजेश्वरी मठ में माँ और बहन के साथ रहने आता है– लेकिन काश्ती की इस आशा भरी नगरी में अन्ततोछ विक्षोभ, पराजय, हताशा व कुंठा मिलती है। काशी से मोहभंग रामानन्द की त्रासद स्थिति का परिचायक है।

इस बनारस नगरी की हर गली आगे जाकर मुड़ जाती है क्योंकि यहाँ असंख्य मुद्राओं में काशी नगरी बँटी है। जहाँ एक ओर शिक्षा का केन्द्र बी० एच० यू० देश विदेश के छात्रों की जिन्दगी बना रहा है, वहीं अनैतिकता, बलात्कार, अपहरण, तस्करी, सांस्कृतिक पतन एवं फरेब की दुनिया रंगीन हुई जा रही है। रामानन्द तिवारी, बक्कड़, सुबोध भट्टाचार्य, हरि मंगल, बाबू, जमुना, रज्जुलभी, देबू, रमेन्द्र, श्रीकान्त तथा आरती, जयन्ती, किरण, लाजो, रज्जो आदि के रूप में हजारों लोग इस नगरी में अपना वजूद बनाये रखना चाहते हैं। वस्तुतः यह उपन्यास वर्तमान काश्ती का असली चेहरा है। सारे छात्र आन्दोलन फिरा कर मुख्य समस्या से बार-बार हट जाते हैं और नई समस्या को आन्दोलन का मुद्दा बना लेते हैं। सुविधा भट्टाचार्य का मोहभंग, जयन्ती का सेक्सपरक दृष्टिकोण रज्जों बलात्कार की शिकार, आरती जैसी लड़कियाँ यथार्थ से परे रंगीली दुनिया में मस्त जमुना द्वारा वास्तविक पलायन को विद्रोह की संज्ञा देना आदि ऐसे तथ्य हैं कि जो हास्यास्पद स्थिति की ओर संकेत करते हैं। युवा वर्ग पढ़ाई के प्रति गम्भीर नहीं है, परीक्षा में पास होना चाहता है। दिग्रभानित युवावर्ग कुंठा का शिकार है तभी तो सुबोध कहते है– ''सारा परिवेश उस खोह की तरह है जहाँ काला सफेद और सफेद काला बनकर निकलता है यानी'' *Fair is foul and foul is fair.* कुल मिलाकर 'गली आगे मुड़ती है' वर्तमान काशी के युवा वर्ग को भटकन व उससे उत्पन्न समस्या पर लिखा गया उपन्यास है, जिसमें आंचालिक परिवेश में सम्बन्धी समस्या पर हम विचार करेंगे।

जैसाकि विदित है कि यह उपन्यास वर्तमान काशी नगर पर लिखा है। डॉ० सिंह का प्रथम उपन्यास जहाँ ग्राम करैता पर केन्द्रित था, वहीं यह एक शहर पर केन्द्रित है। इस उपन्यास की हम लोक संस्कृति के तत्व के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन करेंगे। कथ्य की दृष्टि से हम यही कह सकते हैं कि ग्राम कथाकार ने शहर में प्रवेश किया है और शहर की नब्ज को एटोलने की कोशिश की है लेखक स्वयं काशी का निवासी है। पढ़ाई से लेकर सर्विस तक सब कुछ इसी नगरी में देखा और भोगा है। बी० एच० यू० में पढ़ने के दौरान हुए आन्दोलनों एवं अध्यापन के बीच हुए आक्रोश एवं टूटन को अपनी आँखों

से देखा है। उनका लक्ष्य है– ''गंगा की कमर पर रखे संस्कृति के लबालब भरे कलश को सही ढग से प्रस्तुत करने का[13] रहा है।'' बनारस केवल पण्डे पुजारियों का ही नहीं है बल्कि उसमें युवा आक्रोश के विविध रुपों के भी दर्शन होते हैं। उनका लक्ष्य है कि काशी नगर के युवा आक्रोश को राष्ट्रीय परिदृश्य पर लाया जाय। पुरानी पीढ़ी की नई पीढ़ी से टकराहट, गुटबन्दी, भ्रष्टाचार एवं तस्करी की व्याप्त बुराइयों की असलियत सामने रखी जाया रामानन्द तिवारी मुख्यपात्र है और इसके इर्द गिर्द जयन्ती, किरण दुर्गा घूमती रहती हैं। हरि मंगल, लाजवन्ती लाजो शोभना आदि पात्र जहाँ सम्मोहन में फँसे हैं, वहीं सुबोध भट्टाचार्य टूटन से अत्यन्त पीड़ित हैं। हालांकि इस कथा में कुछ अनावश्यक प्रसंग जोड़ दिये गये हैं, जैसे सारनाथ पकनिक प्रसंग तथा रज्जो का कथा प्रसंग इत्यादि। परन्तु शेष उपन्यास के कथ्य में कथाकार अपने उद्देश्य में पूर्णतया सफल रहता है। कथ्य की दृष्टि से इस उपन्यास में लेखक ने युवा संघर्ष व असन्तोष को नाटकीय रंगमंच प्रदान किया है। जगन मिसिर के माध्य करने लेखक ने पूर्व उपन्यास में कहलावाया है कि अब तो गाँव की ओर लौटना पड़ेगा, वैसे ही इस उपन्यास में रामानन्द के लिए भी गली आगे मुड़ती है, एक संदेश है। लेखक की आस्था की डोर टूटने लगती है, क्योंकि उत्साही रामानंद की क्रमिक टूटन ओर अन्त में जड़ से उखड़ जाना इस प्रकार का प्रमाण है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने युवा आक्रोश को दिखाया तो है। पर निष्कर्ष भी निकाला है कि कहीं-कहीं गली पड़ेगी ही। अतृप्त यौन भावना किरण से कहलाती है– ''शरीर मेरे वश में नहीं पर आत्मा तुम्हारी है वह जन्म जन्मान्तर तुम्हारी रहेगी। मुझे क्षमा कर देना।[14]'' किरण विवाह व प्रेम के बीच एक मार्ग ढूँढती है।

इस उपन्यास के कथ्य में कई पड़ाव आते हैं जिनका विश्लेषण आवश्यक है। प्रथमतः इस कथ्य में युवा आक्रोश के दर्शन होते हैं। इस युवा आक्रोश के पीछे सबसे प्रमुख कारण है– ''युवा आक्रोश सुविधा पाने की छटपटाहट है या युवा आक्रोश की

13. नुक्कड़सभा– शिव प्रसाद सिंह
14. गली आगे मुड़ती है– शिव प्रसाद सिंह

सारी लड़ाई हासिलवाद की लड़ाई है।'' इस आक्रोश की जड़ में वी० पी० एन० जैसे लोग हैं। युवा आक्रोश की जड़ में छात्र असन्तोष, हिन्दी आन्दोलन युवा आक्रोश का भटकाव एवं सार्थिक आशा है। कथ्य में बनारस की संस्कृति का सम्यक् चित्रण किया गया है। लेखक का कहना है कि ''मेरा उद्देश्य रहा है कि इस प्राचीन नगर की बदलती संस्कृति को बाँधने का।'' काशी एक बहुआयामी नगरी है यह महानगर है अनेकानेक मोहों से ग्रस्त व्यक्ति यहाँ खिंचा चला आता है। देशी-विदेशी लोगों का यहाँ जमावड़ा है। गुजराती बंगाली, बिहारी, तथा विदेशी भी यहाँ कुछ घूमने तो कुछ रहने की गरज से यहाँ आ जाते हैं। निश्चयतः इतने विविध संस्कारों वालों के लिए इस नगरी की पहचान है– विविधीकरण एवं अपार सहन क्षमता। इस नगरों पर बंगाल, गुजरात एवं बिहार का विशेष प्रभाव है। भाव ज्योति व नृत्य की अद्‌भुत त्रिवेणी यहाँ बहती है। बंगाली के लिए गांगुली परिवार, भोजपुरी के लिए रामानन्द जमानदास, हरिमंगल को चुना गया है। किरण-जयंती व लाजो मानो तीन संस्कृतियों की प्रतीक हैं। किरण गुजराती, जयंती बंगालन, लाजो निम्न वशीय परिवार का प्रतिनिधित्व करती हैं। कथ्य में बंगाली संस्कृति के प्रबाव को दिखाया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रस्तुत उपन्यास में विविध संस्कृतियों का अनूठा संगम है। कथ्य युवा असन्तोष एवं आक्रोश को लेकर चला है, पर अपने साथ तमाम तरह की गलियों से परिचय कराता चलता है, जहाँ भटकाव व टूटन के स्वर सुनाई पड़ते हैं। अब हम इस उपन्यास को लोक सांस्कृति के तत्वों पर विवेचन करेंगे।

विविध संस्कृतियों पर ऊपर हम चर्चा कर चुके हैं। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने काशी नगरी के विविध स्वरुप का वर्णन किया है। बनारस संस्कृति, बंगाली संस्कृति, गुजराती संस्कृति भोजपुरी संस्कृति तथा आधुनिक बनारसी संस्कृति। इन संस्कृतियों के माध्यम से **उनके खान-पान, रहन-सहन, पहनावा, मनोरंजन, बोली उत्सव-त्योहार, परम्परा, अन्ध विश्वास, धार्मिक मान्यता, संस्कार, हास-परिहास, मेले समारोह एवं रीति रिवाज संस्कार, हास-परिहास, मेले समारोह एवं रीति रिवाज** के बारे में विचार किया जाएगा। अलग-अलग

संस्कृतियों पर सम्यक् विचारों परान्त यह स्पष्ट होता है कि बनारस में ही एक साथ फल फूल रही इतनी ज्यादा विविधताओं का एक मात्र उद्देश्य है– काशी की सम्पूर्ण संस्कृति बनारस सभी संस्कृतियों का सम्यक् रूप है। यहाँ पण्डे, पुजारी, शिक्षक, विद्यार्थी, लुच्चे, लफंगे, व्यापारी, वेश्या, तस्कर एवं जुआड़ी सभी मौजूद है, जो अपनी-अपनी तरह से काशी में जी रहे हैं। मार्क्सवादी शिवराम मसखरा कोहन वेन्दे, देवनाथ प्रेमी दिखाया गया है। वस्तुतः शिवराम के रूप में मार्क्सवाद का मजाक उड़ाया गया है। यहाँ बंगाल की तर्ज पर दुर्गापूजा, महाराष्ट्र गुजरात की तर्ज पर गणेश पूजा भोजपुरी तर्ज पर गाँव का मेला हर वर्ष होता है। अर्थात् **पर्व त्योहार** मेले की दृष्टि से यह बनारस नगर अत्यन्त समृद्ध है। रामनगर का मेला तो मशहूर है। सावन के महीने में काशी विश्वनाथ का मेला भी अपने चरम पर होता है। **रामलीला, दुर्गापूजा, गरबा नृत्य** ये सब एक में मिल गये हैं। यहाँ लोग भी विविध प्रदेशों व देशों के रहते हैं, अतएव मिली जुली संस्कृति का फूलना-फलना अनिवार्य है। पर्व भी बनारस में खूब होते हैं 'कलश स्थापना' का मुख्य विधान है। कलश के ऊपर दीपदान आरती के अवसर पर बाध और नृत्य का आयोजन होता है सूखे नारियल के ऊपर देशों की आग अगरु और चूर्ण को फेंकते ही उत्साह का वातावरण हो जाना 'नवमी को दुर्गा पूजा होती है।' खानापल व रहन-सहन के कई चित्रण पात्रों के माध्यम से प्रकट होते हैं। फिशकढ़ी व माछभात बंगालियों का मुख्य भोजन है। तडुंल पकाकर हिस्सा या भाकुर बनता है जो कढ़ी के साथ खाया जाता है। बंगाली मिठाई तो मशहूर है। सन्देश, गरी की बर्फी, रसमलाई, रसगुल्ला बताशा मण्डी व कदमा मुख्य है। ताँत की बाई खाली साड़ी बंगलिनों को बहुत प्रिय है। बनारसी साड़ी तो बहुत प्रचलित है। बंगाली को चटोर रामानंद द्वारा कहा जाता है। रहन-सहन भी बहुत व्यवस्थित अनुशासित व सम्यक् है। बंगाली लोकगीत की धुन भी उपन्यास में झंकृत है– ''ना लइयो न लाइयो बंधु कांच न मालार नाम तोमार चरेण आभार श्तेक प्रणाम''।

वस्तुतः जयन्ती को देखने से ही सम्पूर्ण[1] बंगाली परिवार की लड़कियों के बारे में सहज अनुमान लगाया जा सकता है।

बंगाली परम्परा है कि शादी के सम्बन्ध में तो लड़की की इच्छा का कोई महत्व नहीं है। इसी प्रकार गुजराती संस्कृति में नवरात्रि में मातृपूजा होती है। गरबानृत्य मशहूर है। गाति-लय-ताल-थति से नृत्य का हू-ब-हू चित्र खींच दिया या है गरबा नृत्य पर प्रस्तुत गीत का अवलोकन करें–

''मेंहदी रँग लायो दी।''[17]

भोजन के रूप में 'मूँग' मुख्य है। मठरी, मिठाईयाँ, मीठी सुपारी, एवं मीठी दाल का प्रयोग है। नागर ब्राह्मण में श्रेष्ठ है। हांटकेश इनके कुल देवता हैं। मार्मिक स्थिति किरण जैसी लड़की की ही पिता व्यापार में, माँ बनाव श्रृंगार में तथा बच्चे ढाइयों के प्यार में डूबे हैं। विलासिता भरे जीवन वाले माता-पिता का प्यार बच्चों को नहीं मिलता है, वैभव प्रदर्शक, दिखावटी, नकली एवं संस्कार विहीन बालक होते हैं। शादी-विवाह के मामले में जातिगत कठोरता है। इस प्रकार इस उपन्यास में सम्पूर्ण गुजराती संस्कृति चरम पर है। भोजपुरी संस्कृति इस संस्कृति में जन्माष्टमी से लेकर अन्य त्योहार सब मनाये जाते हैं। जमना और रामानन्द भोजपुरी संस्कृति के अच्छे उदाहरण है लगभग हर महीने में यहाँ त्योहार मनाये जाने की परम्परा है रामलीला, दीपावली रक्षाबन्धन आदि त्योहार व स्थानीय मेले लगा करते हैं। कहीं जाते समय टीका लगाकर शुभ कामना देना भी दिखाई देती है। इन दिनों घर में पूड़ी साग बनता है। रामानन्द, हरिमंगल व जमानादास के कथा प्रसंगों में कई तरह के सांस्कृतिक परम्पराओं का उल्लेख मिलता है। इन पात्रों के माध्यम से आंचलिकता दिखाने की कोशिश की गई है। जमना की बोली रामानन्द कि तरह क्षेत्रीय बन पड़ी है, द्रष्टव्य है– ''आपको आज तलक ई नहीं लौका कि हमरे

---

16. गली आगे मुड़ती है– शिव प्रसाद सिंह

17. गली आगे मुड़ती है– शिव प्रसाद सिंह

भीतर बिहारी संस्कृति है, कुछ बुझाता नहीं अर्थ?''[18] इस बातचीत से ही क्षेत्रीयता झलकती है। लाजो, राजमती, रामानंद व जमना की माताएँ तो क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती हैं। अंधा विश्वास की कभी नहीं है। झूरी बरम बाबा की फुनगी में नाव बाँधकर अपना बुखार भगाना चाहता ह और राजो के परिवार वाले ओझा व टोना को हर मर्ज की दवा मानते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भोजपुरी परिवेश की सभी लोक सांस्कृतिक विशेषतायें इसमें प्रयुक्त हैं। आधुनिक संस्कृति का बड़ा वीभत्स रुप इस उपन्यास में सामने आया है। पश्चात्य सभ्यता की अन्धी नकल की गई है। होटल फिलाडेल्फिया में चल रहा अनैतिक व्यापार इसका ताजा उदाहरण है। अश्लील नृत्य, वीभत्स रोमांस एवं काल गर्ल्स की भारी स्वेप हिन्दुस्तान की आत्मा काशी के चेहरे पर धब्बे की तरह है। जहाँ रामानन्द की माँ एक संयमित जीवन की आइना हैं, वहीं होटल में लड़किया देह बेंचने में तजिक संकोच नहीं कर रही है। कालेज की लड़कियाँ, बड़े घर की लड़कियाँ तथा कुछ अत्याधुनिक लड़कियाँ होटलों में शौकवश अपनी देह का व्यापार कर रही हैं। बर्थडे पार्टी फैशन में आ रही है। लड़कियों का ब्वाय फैन्ड रखना, सिगरेट पीना तथा चुस्त कपड़े पहनकर अंग प्रदर्शन करना आम बात हो गई है। लेखक ने पूछा है– ''क्या सचमुच हमारे देश की औरतें इतनी आधुनिक हो गई हैं कि ये देशी धामिनें मादा कोबरा बनने का स्वांग करती[19] हैं।'' इस प्रकार हम पाते हैं कि आधुनिक काशी नगरी का युवा वर्ग दिग्भ्रमित हो गया है। अपनी मूल पहचान को भूल गया है। वस्तुतः सम्पूर्ण रूप में यदि काशी को देखा जाय तो गली आगे मुड़ती हैं में एक-एक पृष्ठ का अन्वेषण करना पड़ेगा। कथा के प्रारम्भ में काशी के सभी घाट, श्मशान चौराहे, मन्दिर-मूर्तियाँ बाग-बगीचे तथा आखिर तक माँ की यात्रा और सारनाथ पिकनिक प्रसंग एवं रामानन्द को शहर के उत्तरी भाग में पहुँचा दिया जाता है। वस्तुतः इस उपन्यास में काशी नगरी

---

18. गली आगे मुड़ती है– शिव प्रसाद सिंह
19. गली आगे मुड़ती है– शिव प्रसाद सिंह

की सम्पूर्ण स्थिति को हर दृष्टि से दर्शाया गया है। काशी को सांस्कृतिक यात्रा मेले त्योहार से लेकर पूजा-पाठ, पर्वत्योहार, रहन-सहन, खान-पान पहनावा, आचार-विचार, धार्मिक मान्यताएँ, मूर्खता, अन्ध विश्वास जादू टोने एवं अनाचार एवं कामुकता का बड़ी बारी किसे वर्णन किया गया है। इसी काशी नगरी में आपसी गुटबन्दियाँ झगड़े, काति लाना हमले, षड्यन्त्र, जुआ, वेश्यावृत्ति, तस्करी जैसी कुप्रवृत्तियाँ पनप रही हैं। यह भी आधुनिक काशी का एक सांस्कृतिक स्वरूप इस उपन्यास में वर्णित है।

इस उपन्यास पात्रों के चरित्र-चित्रण में लेखक को विशेष सफलता मिली है। तमाम विरोधी प्रवृत्ति के व्यक्ति आकण्ठ कुण्ठा में डूबे जिन्दगी भोग रहे हैं। बी. पी. एन. दुष्टों का सरगना है। किरण, जयन्ती तथा लाजो विविध संस्कृतियों के प्रतीक हैं। जमनादास की आत्म हत्या, हरिमंगल की चिन्तन धारा, शिवराम का मार्क्सवाद, सुबोध की कृष्ण भक्ति बड़े दुर्लभ चरित्र हैं। रामानन्द जैसा पात्र पलायन वाद के कारण शहर बड़े भारी मन से छोड़ता है, पर इसमें लेखक ने बिखराव का परिचय दिया है। रामानन्द के साथ लेखक ने न्याय नहीं किया है। विपिन की तरह वह भी पलायन स्वीकार करता है। काशी के धार्मिक पौराणिक और समकालीन प्रभाव से बना रामानन्द का चरित्र अनेक विरोधा भासों से युक्त आज के आम आदमी का है। इसी तरह के ढेर सारे पात्र काशी ही नहीं समूचे देश में मिल जाते हैं। रामानन्द का दुष्चक्रों से घिर जाने पर काशी छोड़ देना किसी आदर्श का प्रतीक नहीं है। यह बहुत भयावह सत्य है कि ऐसी पीढ़ी आगामी समय के भार को कैसे संभाल पाऐगी। डॉ० सिंह के दोनों उपन्यासों के धुरी चरित्र विपिन तथा रामानन्द कायर, बुजदिल व डरपोक निकले। इस रूप में डॉ० सिंह भले एक सामान्य व्यक्ति का चरित्रांकन कर पाये हों, पर आत्म जीवन में ऐसे चरित्र आदर के सर्वथा पात्र नहीं हैं। हरिमंगल का स्वभाव दृढ़क कठोर किन्तु सुकोमल हृदय वाला है। लाजो, हौसला, दरद्, पत्नी व बच्चों के प्रति उनके दृष्टिकोण को व्यक्त करते हैं। जमना दास साधु सन्यासियों की प्रवृत्ति का है। उसके जीवन में निर्विकारिता एवं स्थिति प्रज्ञता ही पाई जाती है। सुभोब भट्टाचार्य बुद्धिजीवी पात्रों में से एक है। वे करना

कुछ नहीं चाहते हैं, केवल चिन्तन करते हैं। सुबोध के चरित्र में प्रगतिशीलता व भक्ति सम्बन्धी मात्र प्रवंच बनाये हैं, यथार्थ नहीं। इस पात्र का सृजन बंगाली संस्कृति को बताने के लिए की गई है। देवनाथ का चरित्र व्यञ्जनात्मक है, जिसके माध्यम से वह बड़े नेताओं की सब विशेषतायें रखते हुए भी छोटे नेता अवसरवादी नेता के गुणों की आख्या प्रस्तुत की गई है। रजुल्ली गुंडा है, जो पैसे के लिए कुछ कर सकता है, साथ ही उसमें दोस्ती के गुण भी हैं। जयन्ती का चरित्र द्वन्द्व पूर्ण है। किरण गुजराती संस्कृति की वाहिका, विद्रोही प्रवृत्ति वाली तथा अन्त में समजौता वादी लगती है। कुल मिलाकर समाज से हार चुकी, थक चुकी एक निराश लड़की है।

किरण चुलबुली लड़की है, जो मर्यादा, आदर्श एवं आचार-विचार शीलता की लहरों से टकराकर किनारा पकड़ लेती है। लक्ष्मण रेखा को वह पार नहीं कर पाती। लाजवंती का चरित्र सहनशीलता का परिचायक है, जो तमाम विरोधो, अत्याचारों एवं शोषण के बावजूद आन्तरिक टूटन को प्रकट नहीं करती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि **चरित्र-चित्रण** में उपन्यासकार ने काशी के वैविध्य को शहरी परिदृश्य में सटीक वर्णन किया है। नित्य हो रही घटनाओं में काशीनगरी टूटती नहीं, किनारे आ-आकर लहरें टकराकर वापस चली जाती हैं। चरित्र में सर्वव्यापी काशी का कोई जोड़ नहीं है। **भाषा-शैली** प्रस्तुत उपन्यास में पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग मिलता है। पात्र कथ्य के अनुसार बोली-भाषा का प्रयोग करते हैं। समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार के सम्बन्ध में हरिमंगल की भाषा, युवा पीढ़ी में पनप रहे आक्रोश एवं झुझलाहट के सम्बन्ध में सुबोध की भाषा कामुकता एवं यौनाचार को प्रकट करती जयन्ती की भाषा आदर्श-यथार्थ के बीच झूलते रामानन्द की भाषा तथा नेताओं द्वारा आन्दोलन धरना एवं हड़ताल में व्यक्त की गई भापाम युक्त भाषा, रामानन्द की माँ आरती शोभना जीजी की संवेदना पूर्ण भाषा, रामानन्द का किरम को पढ़ाते समय की विवेचना पूर्ण भाषा तथा हरिमंगल द्वारा लिखे गये पत्र के अन्तिम पृष्ठों की भावपूर्ण भाषा सबके अपने गहरे अर्थ हैं। भाषा से सब कुछ कह देने वाले डॉ० सिंह का इस उपन्यास में बड़ा ही अनूठा प्रयोग है कि वे **संवाद**

पैनी छूरी की तरह चलाते हैं, पाठक सोचने पर मजबूर हो जाता है। जब वे हरिबाबू से कहलवाते हैं– ''क्या आप होशो हवास में तो है? सारा परिवार शहर में लाकर हैं गर पर डाल दिया है और कहते हैं कि स्कालरशिप नहीं मिलती? क्या अस्सी नाले की आवोहवा में 'मल्टी विटाप्लेक्स घुला[20] मिला है? इस तरह का प्रयोग हिन्दी साहित्य में बहुत कम देखने को मिलता है। प्रस्तुत उपन्यास में भाषागत विशेषता में सहजता एवं सरलता प्रवाहमय है। व्यंग्य-विनोद चुलबुलापन, तुर्शी, प्रगल्भता, एवं प्रवाहमय है। पूर्व उपन्यास की तरह उतने तद्‌भव शब्दों, देशज शब्दों एवं बिगड़े शब्दों का प्रयोग तो नहीं किया गया है, क्योंकि शहर आधारित उपन्यास है, परन्तु काशी की नगरीय विशेषता से युक्त भाषा का प्रयोग किया गया है, जिससे लगता है कि यह उपन्यास काशी का रामायण है। भाषा में 'लोकल कलर' दिखता है। प्रतीक योजना, बिम्ब विधान, गंध परिवेश स्पर्शभाव, मिथक एवं संकेत से भी भाषाई करिश्मा दिखाया गया है। भाषा में देशज, ठेंठ ग्रामीण शब्द, तद्‌भव शब्द, संस्कृत के शब्द, बिगड़े अंग्रेजी शब्द, अंग्रेजी के शुद्ध शब्द, उर्दू शब्द, बाजारु गालियाँ एवं लक्षणात्मक व्यंग्य बहुतायत मिलते हैं।' मुहावरे, लोकोक्तियाँ तुकबन्दियाँ, कहावतें, किस्से, हास्य व्यंग्य एवं शहराती फब्तियाँ प्रायोछ सुनने को मिलती हैं। कहीं-कहीं गुजराती शब्द एवं वाक्य भी प्रयुक्त हैं। बांग्ला शब्द भी आये हैं। लोकगीतों में तो बांग्ला एवं गुजराती शब्द ही प्रयुक्त ह। इस प्रकार 'गली आगे मुड़ती है' की भाषागत विशेषता 'बनारस' को व्यंजित करती है।

संवाद बड़े ही रोचकता लिए हुए हैं। इनमें कहीं ठहराव व नीरसता नहीं है। पात्र अपने भाव को व्यक्त करने के लिए संवाद बोलते हैं, लगता है कि कोई बनारसी बाबू इसे बोल रहा है। चाहे रामानन्द दों या बी० पी० एन० या सुबोध अथवा जयन्ती सबके सब संवाद बोलने में बड़े निपुण हैं। कथोपकथन के दो उदाहरण देखें– ''जयन्ती - - - - ये हैं श्री रामानन्द तिवारी, मेरे सर्वोत्तम विद्यार्थी और मेरी कल्पना के सही छात्र''-

---

20. गली आगे मुड़ती है– शिव प्रसाद सिंह

- - - - हरी बाबू आश्चर्य करते हैं कि सुबोध भट्टाचार्य के निर्देशन में शोध करने वाले को स्कालरशिप मिलती है। रामानन्द अचम्भे से ताकता रह जाता है– ''स्कालरशिप पाने और सुबोध जी के निर्देशक होने में क्या तालमेल है, हरी बाबू?'' वस्तुतः संवादों में गति व प्रवाह है, जिसके कारण कथोपकथन बड़े रोचक व सरल जान पड़ते हैं। संवाद की दृष्टि से यह उपन्यास सम्पूर्ण काशी नगरी के आधुनिक परिवेश को प्रस्तुत करता है, जिसमें एक ओर सभ्य सुबोध की सरल व सुधी भाषा बी. पी. एन. की उजड्ड भापा तथा जयन्ती आदि की यौनेच्छा जाहिर करती हुए संवादिक चेष्टायें सर्वत्र देखने को मिलती है। इस उपन्यास में सम्पूर्ण काशी नगरी के आधुनिक परिवेश को प्रस्तुत करना लेखक का उद्देश्य रहा है। 'गली आगे मुड़ती है' का रचनागत परिवेश सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं धार्मिक पहलुओं से जुड़ा हुआ है। लेखक ने काशी के महत्व को जिन सन्दर्भों में स्पर्श किया है, वे हैं आधुनिकता के इस युग में युवा का भटकाव, आक्रोश, असन्तोष एवं पलायन। रामानन्द, सुबोध, बी. पी. एन. एवं किरण जैसे पा‍ƒओं की रचना कर उपन्यासकार विविधता पूर्ण वाशी का दर्शन कराना चाहता है। यों तो काशी को केन्द्र में रखकर इतिहास, साहित्य एवं दर्शन की पर्याप्त मात्रा में रचना हुई है, परन्तु लेखक ने यहाँ के जीवन को स्वयं बोगा है और यहाँ के मर्म स्थानों को बारीकी से देखा है। यही कारण है कि लेखन में वह इतना यथार्थ वादी बन सका है। इस उपन्यास की भूमिका में लेखक ने लिखा है– ''काशी का नाम युवा आक्रोश के साथ बदनामी की हद तक जुड़ गया है। इसी लिए उसने काशी को ही उपन्यास का केन्द्र बनाया है।'' वातावरण व उद्देश्य की दृष्टि से लेखक का यह उपन्यास वर्तमान काशी को भीतर चल रहे युवा आन्दोलन एवं आक्रोश को उभारने की चेष्टा की है। बनारस यहाँ एक नहीं असंख्य मुद्राओं में विभक्त है।

इस प्रकार हमने इस उपन्यास के विश्लेषण के दौरान यह देखा कि वर्तमान काशी पर लिखे गये 'गली आगे मुड़ती है' कृति में असंख्य गलियाँ एक साथ खुली हैं उनमें से ढेर लोग आ जा रहे हैं। इनका उद्देश्य काशी की हलचल में कहीं न कहीं छिपा

है। इसी अस्फुट, अज्ञात एव अनजान तथ्य को पात्रों के माध्यम से लेखक ने उभारने की चेष्टा की है। वर्तमान काशी के अलावा लेखक ने पुरातन काशी पर क्रमशः 'नीला चाँद' 1. तथा 'वैश्वानर' 2. नामक उपन्यासों की रचना की है। इन उपन्यासों में लेखक ने प्राचीन एवं मध्यकालीन काशी की विविधता को रूपायित किया है। ऐतिहासिक दस्तावेजों में विलुप्त सांस्कृतिक नगरी काशी पर लिखे गये दोनों उपन्यास भाषगत् शैलीगत एवं शिल्पगत विशेषताओं के कारण आज की नगरी से काफी भिन्न हैं। यों तो वस्तुगत सारी चीजें वहीं हैं, पर परिवेश बदल गया है, मूल्य पतनशील हो गये हैं, व्यक्ति उच्छृंखल हो गया है अतएव स्वभावता 'गली आगे मुड़ती है' से वे उपन्यास भिन्न है। चूँकि इस शोध प्रबन्ध का शिव प्रसाद सिंह के कथा साहित्य में आंचलिकता की खोज ही मुख्य उद्देश्य है अतएव आंचलिक दृष्टि से इन दो उपन्यासों पर विचार किया जाना संभव नहीं है। अच्छा होता लेखक पुरातन काशी पर इन दो उपन्यासों के बाद प्रस्तुत उपन्यास पर कलम चलाया होता। इस प्रकार क्रमबद्धता की दृष्टि से यह पौराणिक ग्रन्थ अधिक उपादेय होता।

'गली आगे मुड़ती है' सांस्कृतिक व शिल्पगत विशेषताओं के कारण आज के 'बनारस का यथातथ्य वेबाक दस्तावेज है। इस कथा के माध्यम से लेखक ने ग्राम से निकलकर शहर में प्रवेश किया है, जिस तरह विपिन व रामानन्द ने। शहरी की अपनी निजता है, गाँव की अपनी जीवन शैली है, अतएव दोनों भिन्न हैं। पर यह कटु सत्य है कि गाँव नगरों में खो रहे हैं। गाँव का कस्बाकरण कस्बे का शहरी करण और शहर का महानगरीकरम तेजी से हो रहा है। इसी के फलस्वरुप शहर में बड़ी मिलावट है। इसी मिलावट का प्रतिफल है– ''गली आगे मुड़ती है।'' शहरों में भी अंचल हैं, अंचलों में भी अपनी आंचलिकता है।

इस दृष्टि से हमने इस उपन्यास को लोक संस्कृति व **शिल्पगत** ढाँचे में बैठाकर अध्ययन करने की चेष्टा की है। यह उपन्यास शिल्पगत व लोक संस्कृति की दृष्टि से आंचलिकता के करीब आता है। कुछ आलोचकों ने ग्रामों में ही आंचलिकता पकड़ने

की कोशिश की है, जबकि आंचलिकता बम्बई, कलकत्ता, मद्रास लखनऊ जैसे शहरों के किसी कोने में विद्यमान हो सकती है। जीवन शैली व वर्णनगत शैली से शहर भी आंचलिक हो सकता हैं। उपरोक्त वर्णित तथ्यों के आधार पर इस उपन्यास को हम आंचलिक कह सकते हैं।

डॉ० शिव प्रसाद सिंह द्वारा लिखित मंजुशिमा उपन्यास की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता, क्योंकि लेखक ने अपनी बेटी की स्मृति में इस कृति का सृजन किया है। पूरी रचना को पढ़ने से स्पष्ट होता है कि इसमें लेखक की पुत्री की बीमारी, इलाज एवं मृत्यु की घटनायें स्मरण रूप में व्यक्त हैं। किसी दृष्टि, विचार अथवा लक्ष्य की ओर यह कृति संकेत नहीं करती। अतएव इसे कथा साहित्य में परिगणित नहीं किया जा सकता है।

शैलूष– डॉ० शिव प्रसाद सिंह द्वारा लिखित यह उपन्यास सन् 1989 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास हिन्दी कथा साहित्य के इतिहास में बेजोड़ विचार जो कबीलाई नट परिवारों के आन्तरिक जीवन एवं स्वत्व के लिए संघर्षरत् जीवन शैली पर लिखा गया है। इस उपन्यास के प्रकाशित होने पर बड़ा विवाद भी हुआ था कि यह नट जीवन शैली पर लिखा गया है, जो ब्राह्मणों का अपरोक्ष विरोध है। डॉ० सिंह ने उत्तर दिया था– ''इसे ब्राह्मण विरोधी वे ही कहेंगे, जो तथ्य को नहीं जानते किसी जाति पर लंद रूढ़ियों को तोड़ने में मैं तलली न हूँ। यदि किसी[21] को ब्राह्मण विरोधी लगे तो लगे।'' वस्तुतः परम्परा से चिप के पुरातन पन्थी, जिन्हें नटिनों के साथ अंधेरे में कामेच्छा पूरी करने में कोई फर्क नहीं पड़ता, वे दिन के उजाले में इसका विरोध करते हैं। पहले भी नटों, मुसहरो, चमारों, आदिवासियों, मुस्लिमों पर बहुत से उपन्यास लिखे जा चुके हैं, उन्हें ऐसे साहित्य को पढ़ना चाहिए फिर विरोध करना चाहिए।

वरिष्ठ सम्पादक चन्द्र कुमार की टिप्पणी है– ''यह उपन्यास हिन्दी का पहला

---

21. शैलष–भूमिका– शिव प्रसाद सिंह

पाजिटिव नाबेल है।''[22] कथाकार शिव प्रसाद सिंह कबीलाई नटों पर कलम चलाकर साहित्य में उपेक्षित नट समुदाय को राष्ट्रीय परिदृश्य पर उभारने की जो भगीरथ प्रयत्न किया है, वह वरेण्य है। यह उपन्यास चन्दौली तहसील के कमालपुर कस्बे के पास दोमील पर स्थित रेवती पुर गाँव में बसेनटों की जीवन शैली व संघर्ष को लेकर लिखा गया है। 'शैलूष' का अर्थ होता है–नट। लोक संस्कृति की पृष्ठ भूमि पर एक शक्तिशाली औपन्यासिक कृति है, जिसमें यायावरी नटों के जीवन के संघर्षों को लेखक ने सूक्ष्माति सूक्ष्म ढंग से निखारा है। कबीलाई नट दर-ब-दर भटक रहे हैं और इस भटकाव के मध्य तमाम बाह्य शक्तियों के दबाव, अन्याय, अत्याचार, षडयन्त्र और छल कपट को डॉ० सिह ने बड़ी सहजता से अपने पात्रों के माध्यम से व्यक्त किया है। लोक भाषा, जीवन शैली, स्थानीय रंगत के स्तर पर इतनी विविधता है कि पूरे उपन्यास का कलेवर रेवतीपुर मय हो गया है। गाँव रेवतीपुर अन्य गांवों से भिन्न हैं, क्योकि वहाँ नट रहते हैं। नटों के आचार-विचार उनके जीवन पर पूर्णतया प्रभावित है। कुल मिलाकर रेवतीपुर और आस-पास के गाँवों एवं कमालपुर में एक साम्यता स्थापित हो गई है, क्योंकि स्तरे संघर्ष एवं अस्तित्व की लड़ाई यहीँ लड़ी जाती है। सैकड़ों पात्रों, सरकारी हुकमरानं एवं अशिष्ट असभ्य एवं कौलंस भरी स्थलगत विशेषतायें लिए यह उपन्यास अपने पूरे कलेवर में एक अंचल विशेष की कथा को व्यक्त करता है। वस्तुतः कबीलाई जीवन पर यह पहला हिन्दी उपन्यास बदलाव के मुहाने पर कथा को ले जाता है और ऊँच-नीच की हमारी पौराणिक परिभाषायें और मान्यतायें शैलूष में कदम दर कदम सिर उठाती हैं। हम इसके लोकसंस्कृति एवं शैलीगत विशेषता पर अनुशीलन करते हैं। लोकतत्व में परम्परा, रीति-रिवाज मेले-ठेले, खान-पान, रहन-सहन, पहनावा, अन्ध विश्वास, जादू-टोने तथा मूर्खता पर ही अध्ययन अपेक्षित है। लोक संस्कृति की दृष्टि से यह उपन्यास पूर्णतया आंचलिक उपन्यास कहा जा सकता है।

खानपान– खाना बदोंसों को जिन्दगी एक स्थान से दूसरे स्थान पर आने से इनके

---

22. शैल भूमिका– शिव प्रसाद सिंह

खानपान में कोई निजता नहीं रह जाती है। जहाँ गये, वहीं रह गये और जो भी मिला खा लिये। उन्हीं की कहानी उन्हीं की ज़ुबानी– ''हमारी जिन्दगी खानाबदोशों की है। इसमें कभी दूध में मिलाकर ब्रान्डी पीने का मजा भी है आमदनी न होने पर फांका भी कर लेते हैं।'' वस्तुतः नट जातियाँ हमेशा चलती रहती है, इसलिए 'कभी बनी बना तो कभी मुट्ठी भर चना चरितार्थ होता है। उनका रहन-सहन उपन्यास के पृष्ठ 9 पर बड़ी विशदता से वर्णित है– भैसें चलीं - - - - बंदर बंदरिख - - - - गुदनहरी युवतियाँ - - - - - निडर नट कन्यायें - - - - - एक विशाल सेना के साथ रेवतीपुर को चलीं। जुड़ावन नटों का सरदार तथा जीवन संगिनी सब्बों यानि सावित्री मिलीं। खान-पान में साग-भात रोटी - - - - सूखा चना - - - - देसी शराब - - - - मांस मछली - - - गोश्त। परिस्थिति के अनुसार जो भी मिला खाया। जहाँ पहुँचे डेरा डाल दिया - - - - कुत्ते - - - - मुर्गे - - - भैंस - - - - कुल बुलाते बच्चे - - - - - तीतर - - - - बटेर - - - आदि का पूरा जखीरा। एक नट गाँव जल्दी ही बस गया। जितनी जल्दी बसा, उतनी ही जल्दी उजड़ भी गया। **अन्ध विश्वास** इस कबीले की मुख्य विशेषता है। सुरजितक के लल्लू के पैर पर सिर टिका देने पर उसने ललकारा– ''मैं हूँ दैतरा वीर की पुजारिन नोना चमाइन, बचा अपने को - - - - वह हाथ फटकारते हुए बोली– ''जै दैतरा बाबा! माला चिल्लाई– ''खींचले इसके परान।'' पात्र इसके सिर पर हाथ पटक-पटक कर अभुवाते हैं।

टोना-टोटका के द्वारा कई बार दूध की उफनती हाड्डियों में हाथ डाल देती है। अन्ध विश्वास व जादू-टोने तो पग-पग पर देखने को मिलते हैं। यहाँ की जीवन शैली में दवा का असर कम है, ओझा - - - - सोखा - - - - झड़ैत पर लोगों का विश्वास है। **परम्परागत** ढंग से इनके खाने पीने का कोई निश्चित सामान नहीं है। नटों की अपनी परम्परायें हैं, जिनके अनुसार ये **शादी विवाह** आपस में ही बिना दान-दहेज के कर लेते हैं। परम्परानुसार ये आपस में 'बहू देख' या लड़की देखने की बात भी नहीं उठाते हैं लड़कियाँ व लड़के एक साथ रहते हैं। इनके सरदार आपस में तय कर लेते हैं और बिन

रस्मो रिवाज के शादी कर लेते हैं। **पूजा-पाठ** भी इनके बीच होता रहता है। ये सारे कार्य यह अपनी परम्परानुसार करते हैं, किसी बाहरी हस्तक्षेप से नहीं अशिक्षा तो नट परिवार में जोरों पर है। इनमें **अशिक्षा** के कारण भारी गंदगी व वातावरण के प्रति लापरवाही दिखाई देते हैं। नट परिवार अशिक्षित है, उनके बच्चे भी उसी तरह के वातावरण में रहकर अपने जीवन को बिताते हैं। इनके बच्चे स्कूल जाने की वास्तविकता से अपरिचित हैं। अशिक्षा के कारण ही बच्चों के पैदा होने पर कोई नियन्त्रण नहीं है। एक नट बनकर परिवार ही तो है, जो पूरा गाँवकर गाँव बस गया है। भैंस चराना, सुतली बीनना, बेंचना, शहद निकालना, भैंसों से मिट्टी, ईंट और भारी चीजें ढोना, भैंसे से व्यापार करना वक्त मिलने पर चोटी भी कर लेना, श्रृंगार प्रसाधान के सामानो को फेरी लगाकर बेंचना, बनावटी रंग बिरंगे फूल बनाना तथा बेंचना। इनके बच्चे पढ़े तो हैं नहीं। फलतः इसी कार्य व्यवहार में वे भी लग जाते हैं। पूरा का पूरा तुनाबा बेकार रहने के कारण अनैतिक कामों में लिप्त पाया जता है। भूमिधरी अधिकार ही नहीं मिले हैं, नहीं कोई भूमि ही है। अशिक्षा के कारण इनके स्वास्थ्य रहन-सहन, आचार-विचार, कार्य-व्यापार, बातचीत एवं सम्पूर्ण जीवनशैली पर इसका गहरा असर दिखाई देता है। बात-बात में इनके कुनबे के लोग लड़ाई झगड़ा करने पर उतारू हो जाते हैं। तभी तो जुड़ावन नट, लल्लू नट, ननकू सूरज देव आदि जगह-जगह फौजदारी कर लेते हैं। इन लड़ाइयों में नट जाति के तो कुछ अन्य जाति के लोग मारे जाते हैं। पुलिस कचेहरी वाले इन्हें मूर्ख व अशिक्षित जानकर लूट लेते हैं। जगह-जगह शोषण व लूट के दलाल की घूम रहे हैं। अशिक्षा के कारण ही गरीबी है और गरीबी के कारण ही भ्रष्टाचार व यौन शोषण की खूब फैला हुआ है। ये डाक्टर के पास जाने में कोई विश्वास नहीं करते हैं। इनके हर मर्ज की दवा जादूगर या सोखा है, जो झाड़ फूँककर ठीक कर देता है, ऐसा विश्वास है। गरीबू ओझा और उनके साथी रेवतीपुर नाले के पश्चिमकोह के चौरे पर पहुँचकर तेल और सिन्दूर का लेप लगा देते हैं और कहते हैं कि– ''जाग दैतरा वीर''। कहकर मुर्गे की गरदन उड़ा दी।

सुरजितवर जैसे लोग इस पागलपन का विरोध करते हैं, पर बड़ों बुजुर्गों के सामने वह नतमस्तक हो जाता है लेकिन माला ननकू व मानिक की सहायता से वह ओझाओं की अच्छी खबर लेता है। एवं प्रसंग में ऐसा कुछ है। पर जादू-टोने अन्ध विश्वास में उनका पूरा विश्वास है। **पर्व त्योहार** के मामले में नट की जीवन शैली अलग है। **दंगल, मेले** के भी आयोजित होते रहते हैं। दंगल में इनाम का भी प्रचलन है। दंगल, में मेले में नाच नौटंकी व थियेटर कम्पनी के भी प्रभाव हैं। नट जातियों की जीवन शैली पर्व उत्सव, त्योहार, मेले-ठेले में आम लोगों से हट कर होती है। इस मेलों में लोकगीत, आल्हा, बिरहा तथा स्थानीय रंगत लिए हुए होते हैं। जैसाकि विदित है कि नट की जातियाँ झगड़ालू किस्म की होती है अर्थात् डॉ० शिव प्रसाद सिंह ने पात्रों के माध्यम से कहलवाया भी है– ''नटिन का अर्थ होता है झगड़ालू, कठमुल्लापन में जी ने वाली गन्दी[23] औरत। ''अर्थात् लड़ने में इनका विश्वास है। इनके **अस्त्र शस्त्र** लाठी, भाला, गड़ासा, बल्लम कोताखानी, छूरे, देसी पिस्तौल आदि है, जिनका ये लड़ाई झगड़ा में समय-समय पर प्रयोग करते हैं। पूरे उपन्यास में नट जातियों के बीच आपसी लड़ाई व संघर्ष चलता रहता है। पीछे से अंधेरे में सामने तथा ललकार कर ये लड़ते हैं। **पहनावा** में नटजाति के पुरुष लुंगी, कुर्ता, पगड़ी, पाजामा, गमछा स्वेटर, कम्बल एवं दरी का प्रयोग करते हैं तो महिलायें सलवार आधे कट का घाघरा, समीज, ब्लाउज, अधकटी, पेटीकोट तथा **गहनों** में बिछिया, बड़े नथुने, अंगूठी, बड़ा चाँदी या लोहे का गोड़रा आदि। वस्तुतः नट, कबीलाई परिवार बाहर रहने के कारण चोट आदि से हमेशा सशंकित रहता है, जिसके कारण सामान्य सा वस्त्र आभूषण धारण करते हैं। डॉ० सिंह ने इनके वर्णन में वास्तव में संजीवता पैदा कर दी है उन्होंने स्वीकार किया है कि लगभग 10 वर्ष की उम्र से नटों के परिवारों को बखूकी देखा है जिसके कारण, यह वर्णन सम्भव हो सका है। इस उपन्यास की भूमिका में उन्होंने लिखा है– ''शैलूषों के हक की लड़ाई मैंने दस वर्ष की उम्र में अपने चाचा की छावनी गोसइसीपुर में देखी आर-पार की माला

---

23. शैलूष– शिव प्रसाद सिंह

कहानी इसके पारिप्रेक्ष्य में लिखी। पराजय, पुलिस के डंडों के नीचे लहू लुहान होते जरायम पेशे वाले शैलूष मुझे रात में की चादर खींच कर पुकारते– कब तक मेरी व्यथा कथा छुपाये रहोगे।'' निश्चयतः लेखक ने इनके जीवन को बहुत निकट से देखा है, स्पर्श किया है, इसी कारण से इनके जीवन की लोक संस्कृति को पूरे उभार के साथ उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है। नटों की जीवन शैली भारतीय सभ्य समाज के माथे पर कलंक के समान है, क्योंकि शरीर के एक अंग के सदृश ये आदिवासी कबीलाई नट जातियाँ अपने अस्तित्व के लिए हाशिय पर पड़ी हैं। डॉ० सिंह का यह अमूल्य योगदान भुलाया नहीं जा सकता, जो इन्होंने इन्हें राष्ट्रीय परिदृश्य पर प्रस्तुत किया है।

लोक जीवन शैली–अन्ध विश्वास, जादू-टोने, परम्परा, मूर्खता, अशिक्षा, मेले-ठेले, तीज-त्योहार, कुंठा, यौन विकृति, पहनावा, रहन-सहन, खान-पान, अस्त्र-शस्त्र एवं आचार-विचार पर शैलूषा उपन्यास का विश्लेषण करने पर यह विशुद्ध एक अंचल की विशिष्ट जीवन शैली का परिचय देता है। इस दृष्टि से यह आंचलिकता की गन्ध से रससिक्त है। अब इस उपन्यास की शिल्पगत विवेचना करने के लिए हम इसकी कथावस्तु भाषा-शैली, संवाद वातावरण, चरित्र-चित्रण एवं उद्देश्य के पर विचार करेंगे। डॉ० शिव प्रसाद सिंह द्वारा लिखित इस उपन्यास की कथा वस्तु खानाबदोश नटों के जीवन संघर्ष पर आधृत है। इस उपन्यास में लेखक ने सैकड़ों पात्रों के माध्यम से नटों के जीवन को उभारा है। एकवद किस्मत जिन्दगी की महागाथा को शैलूष में चित्रित किया गया है। जुड़ावन नटों का सरदार–अपने विविध परिजनों के साथ अस्तित्व की लड़ाई में जूझता दिखाई देता है, जिसमें कबीलाई परिवार, प्रशासनिक अधिकारी, घुर फेंकन तिवारी छाया कार चित्रकार एवं जनता जनार्दन के मसीहा नेता सुरेन्द्र शुक्ल जैसे लोगों का जमावड़ा है, जो हर कोण से नटों को रौंदन चाहते हैं। थानेदार से से लेकर कमिश्नर तक की चूल्हे हिलती दिखाई दे रही है। लड़ाई रोज हो रही है, **लोकगीत–** बिरहा, आल्हा, गीत भी गाया जा रहा है, खून बह रहा है, लाशें गिर रही हैं, पोस्ट मार्टम हो रहा है, रिश्वत ली जा रही है, अखबार चिल्ला रहा है, पर 'शैलूष' मिटता

जा रहा है। कबीलाई संघर्ष की बेमिसाल जीवन गाथा का नाम ही है– ''शैलूष''। लोक संस्कृति की पृष्ठ भूमि पर यह बेजोड़ औपन्यासिक कृति है। खाना बदोश मायावरी, कबीलाई नटों के जीवन में घटने वाली विविध बाध्य शक्तियों के दबाव, अत्याचार अन्याय व षडयन्त्र को लेखक ने सैकड़ों प्रान्तों के माध्यम में जीवन कर दिया है। कथा वस्तु के आधार पर यह उपन्यास उपेक्षित कबीलाई परिवार नटों के जीवन पर प्रकाश डालता है। **चरित्र-चित्रण–** इस उपन्यास में लेखक ने जुड़ावन सुर जितवा, लल्लू, वसुदेव, ननकू, सूरज देव, बलराम, प्रताप सिंह सिरिया, जितू, रामह रख, कैलाश, सुरेन्द्र शुक्ल, रहमान, रामलखन, हरिहर, अमरित, जनक यादव, मनोबल, नौजादिक तथा घुर फेंकन तिवारी, कमिश्नर, जिलाधिकारी, पुलिस कप्तान एवं दरोगा; रूपा, सावित्री, बेला, सलमा, करीमा, माला, जुबैदा एवं अन्य तमाम सभी पात्रों के माध्यम से कथा को सजीव बनाया है। इस उपन्यास में घुर फेंकन तिवारी का चरित्र लेखक ने अजीब तरह के शोषक के रूप में व्यक्त किया है। पुरुष पात्रों के माध्यम से लेखक ने कई वर्ग विभाजित किया है– शोषक, शोषित, विभाजक, शासक, एवं समझौता वादी। नटों के जीवन को शोषण विरासत में मिलता है। बहू बेटियों का यौन शोषण, नौजवानों का शक्ति शोषण एवं पूरी जनता का अन्ध विश्वास रूप में शोषण लगा है। चारों तरफ से एक व्यक्ति के ऊपर कातीलाना हमला और बचाव की मुद्रायें अपनाता 'शैलूष' जीवन्त व्यथा गाथा बन जाता है। चरित्र बड़े सजीव, यथार्थवादी, जमीनी एवं दयावाहक बन जाते हैं। उनके प्रतिहमारी संवेदना उमड़ पड़ती है। लेखक ने इस उपन्यास में नटों के संघर्ष को तो दिखाया ही है, साथ ही पात्रो के बीच पनप रही यौनैच्छा, अस्तित्ववाद एवं भ्रष्टाचार की सच्चाइयों को भी उभारा है। उपन्यास में जुड़ावन जहाँ संघर्ष का प्रतीक है, तो घुर फेंकन अत्याचार का, जित्तू हत्यारे के रूप में तथा महिलापात्रों में सावित्री सभ्य, सुशीला, एवं सदाचार की प्रतीक मानी गई है। कुछ महिला पात्रों में प्रेम की अदम्य भावना उत्कर्ष पर है।

भाषा की दृष्टि से प्रस्तुत उपन्यास वातावरणीय संचेतना से परिपूर्ण है। जैसी

परिस्थिति वैसी बानी, बोली, भाषा का प्रयोग है। पात्रों में **गाली गलौज, व्यंग्य, मुहावरे, लोकोक्तियाँ एवं कथायें** आम बात हैं। कुछ गन्दी गालियाँ वातावरण के अनुरुप बन पड़ी हैं। यद्यपि कि साहित्य में इन गालियों को बड़ा सम्मान नहीं दिया जाता है, पर लेखक ने स्थलीय दृश्यों को हूबहू व्यक्त करने के लिए इसका प्रयोग किया है। भाषा में **ठेंठ ग्रामीण शब्द** सांसत, घोंघा, अहरा, औझड़ ओझग, बैदई, पोतन, चनक चिरौरी, थेथर, अगाड़ी छोटकी जैसे हजारों शब्द प्रयुक्त हैं देशज शब्द भी बहुत मात्रा में हैं। **तद्भव शब्दों** की भरमार है। जतन दीखी, बस्तर, जमान, हियरा, जुगुत तथा अगम जैसे शब्द प्रयुक्त हैं। संस्कृत के श्लोक पृष्ठ–21 पर अच्छे बन पड़े हैं। इसके अलग भी रचना में बहुत है। नीतिश्लोक कबीर वाणी, तुलसी रामापन तथा तमाम कवियों शायरों की कवितायें उदाहरण के रूप में आये हैं। लोकगीतों की तो बहार है। लोकगीतों में विवाहनक छेद, कनछेद तथा सौरी बरही के तथा बिरहा, आल्हा, कजरी, सोहर विशेष रूप से पात्रों द्वारा गाये गये हैं। कुछ के बानगी के तौर पर यहाँ दिये जा रहे हैं–

कुछेक पृष्ठों पर लम्बे लोकगीत वर्णित है –

जहिया से संइया मोरा छुअले लिलरवा

दुलभवा भइले ना

मोरे बाबा की नगरिया

दुलभवा भइले ना।[24]

बिरह के तमाम लोकगीत प्रस्तुत हैं, जिन्हें लेखक ने पास से सुना है और इसे उपन्यास में स्थान दिया है।

संस्कृत के शब्द, अंग्रेजी बिगड़े अंग्रेजी शब्द, उर्दू, बिगड़े उर्दू के शब्द भी आये हैं।

---

24. शैलूष– शिव प्रसाद सिंह

बाजारू गालियाँ–भरभुखे, मक्कार, मासपीटा, शोहरा तथा हग मारना आदि हजारों गालियाँ उपन्यास में पात्रों द्वारा दी गई हैं। वस्तुतः लेखक ने भाषा के मामले में चली आ रही 'नीला चाँद' वाली संस्कृति का परित्याग कर दिया है। वे नटों के मुहल्ले में प्रवेश करते हैं तथा उनके लोकजीवन को निकट से देखते हैं। लोकजीवन शैली तथा भाषाई दृष्टि से यह उपन्यास अंचल के जीवन की साक्षगत प्रस्तुति है।

संवाद बड़े रोचक बन पड़े हैं। संवादों में स्थलीय धड़कन सुनाई देती है। संवाद की दृष्टि से यह उपन्यास में नटों करी झोपड़ियों, टीनों एवं तंबुओं में ले जाता है। वहाँ औरतें एक से एक भद्दे मजाक, गालियाँ, व्यंग्यार्थ बातें, ताने, गीत, उक्तियाँ सुनाती हुई दिखती है कि जैसे उपन्यास में ही यह झगड़ा हो रहा है संवाद पात्रानुकूल छोटे व कसाव युक्त बने हैं। झगड़ालू औरतों के बीच हो रहे झगड़े में संवाद किसी विरामचिन्ह के बिना बोले जाते हैं। पढ़े लिखे सारस्वत, सुरेन्द्र शुक्ल जैसे लोग सभ्यता के साथ बोलते हैं। कमिश्नर, जिलाधिकारी व मनोबल प्रेस वाले बड़ी तहजीब के अंदाज में संवाद बोलते हैं अर्थात् इस उपन्यास में संवादों में पत्रों के अनुसार अर्थवत्ता प्रदान की गई है। कहीं-कहीं संवाद मन को छू लेते हैं। संवाद की दृष्टि से कबीलाई जीवन संघर्ष पर लिखे गये इस उपन्यास का अपना स्थलगत वैशिष्ट्य है, जो किसी अंचल विशेषक जीवन के रूपायित करता है। देश काल– वस्तुतः आजाद भारत के हाशिये पर अभी कुछेद जातियाँ, समुदाय व समूह ऐसे पड़े हैं, जैसे वे इस धारा के भाग नहीं हैं। इन्हीं में से कबीलाई नट परिवार भी है, जिनका पूरे हिन्दुस्तान में कहीं कोई गाँव मुहल्ला या शहर नहीं है। ये शहर के सच, किनारे, गाँव के किसी कोने में या बाग-बगीचे, नदी के किनारे पर मरुस्थल में निचाट पड़े रहने वाले ये उपेक्षित मानव जातियाँ हैं, जिन्हें आजादी की धड़कने नहीं सुनाई देती। व विकास की धारा से करे हैं। इन्हीं के परिवंशगत विशेषताओं, जीवन शैली को लेकर यह उपन्यास लिया गया है। ग्राम रेवतीपुर इनका स्थाई घर नही है। ये यहाँ आकार बसे हैं, कल कहने और बस जायेंगे, परसो कहीं और। ऐसी स्थिति में घुमन्तू यायावरी, कबीलाई, उपेक्षित, नटीय शैली इनके जीवन में

घर कर गई है। लेखक ने आजादी के हाशिये पर पड़ी इन्हीं चन्द उपेक्षित जातियों समूहों को कथा का आधार बनाया है। काल की सीमा में ये बँछा नहीं है। पुरखे दर पुरखे इसी तम्बू में जन्म-मरण तक की अन्तहीन व्यथा को सहते चले आ रहे हैं। यह जिजीविषाका रूप है, जिसमें संघर्ष अस्तित्व की लड़ाई लड़ी जा रही है इस लड़ाई में शरीक है– चन्द धोखे बाज राजनीतिक ध्वंस होती परम्परा के जमींदार, थानेदार, पुलिस तथा सरकारी हुक्काम। जहाँ वे शोषण की मार से पीड़ित हैं नहीं अपनी अशिक्षा मूर्खतः जनसंख्या, अन्धविश्वास एवं जड़ता से दूर रहे हैं। ऐसी स्थिति में जीविका की इस लड़ाई का रेखांकन प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने किया हो। उद्देश्य के रूप में डॉ० सिंह ने स्वयं स्पष्ट किया है– ''मेरे जेहन में कुल बुलाते नटों के परिवार बार-बार पुकार रहतें, मेरी व्यथा को कब तक छिपाये रहोगे, उसे कलम की स्याही कर रूप दो।''[25]

वस्तुतः इन्हीं चायवरी घुमन्तू, खाना बदोश जिन्दगी को राष्ट्रीय परिदृश्यक लाने की कोशिशों के रूप में 'शैलूष' की रचना की गई है। जहाँ मैला आँचल से रेणु उपेक्षित समाज को बाहर लाना चाहते थे, वहीं इस कृषि के माध्यम से लेखक ने कबीलाई जीवन को राष्ट्रीय परिदृश्य पर प्रस्तुत कर भगीरथ प्रयत्न किया है, जो श्लाध्य है। यह रचना भी आंचलिक परिधि से बाहर नहीं है।

शिव प्रसाद सिंह का कहानी संसार–शिव प्रसाद सिंह की कहानियों को आंचालिक सन्दर्भ में विवेचन करने पर स्पष्ट होता है कि उनके द्वारा लिखित दो कहानी संग्रह ही इस विवेच्य के लिए पर्याप्त होंगे। उनकी द्वारा रचित दो कहानी संग्रह 'अन्धकूप' एवं एक यात्रा सतह के नीचे और प्रकाशित हुए है। 'अन्धकूप में धरातल, दादी माँ, बरगद का पेड़, हीरो की खोज, महुए के फूल, नई चुरानी तसवीरें, कर्मनाशा की हार देऊ दादा मंजिल और मौत, मास्टर सुखलाल, पोशाक की आत्मा चिंतक बरी, उसकी भी चिट्ठी आई थी मुर्गे ने बांगदी, उपधाइन मैया, आर-पार की माला कबूतरों का अड्डा, उस दिन तारीख थी, प्रायश्चित पाप जीवी, उपहार, वशीकरण, शहीद दिवस

25. शैलूष – भूमिका– डॉ० सिंह

के बड़े का फूल, सँपेरा, भग्न प्राचीर, हाथ का दाग, रेतो, बेहया, माटी की औलाद, गंगा तुलसी, मरहला, बिना दीवार का घर आदिम हथियार, विन्दा महराज, कहानियों की कहानी अन्धकूप कहानियाँ सम्मिलित है। 'एक यात्रा सतह के नीचे' संग्रह में इसी नाम की एक कहानी और नन्हों, इन्हें भी इन्तजार है, धूल और हँसी, टूटे, तारे, बहाव वृत्ति, शाखामृग, सुबह के बादल, आखिरी बात, ताड़ी घाट का पुल धतूरे का फूल, परकटी तितली, आँखें, बीच की दीवार, पैटमैन खैरा पीपर कभी न डोले, खेल, कर्ज, टूटे शीशे की तसवीर, अरुन्धन्ती, मैं कल्याण और जहाँगीर नाना, प्लास्टिक का गुलाब, किसकी पाँखें, धारा, चेन अँधेरा हँसता है, जंजीर फायर ब्रिगेड और इंसान, बेजुवान लोग, हत्या और आत्महत्या के बीच, एक वापसी और, राग गूजरी, तो - - - -, बड़ी लकीरें, भेंड़िये, तकाबी, कलंकी अवतार व मुरदा सराय कहानियाँ सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त भी कुछ प्राप्त व अप्राप्त कहानियाँ मिलती हैं, पर वे आधी अधूरी व सन्दर्भों से कटी रहने के कारण अध्ययन की सीमा में नहीं ली जा सकीं।

जैसा कि विदित है कि फणीश्वर नाथ रेणु के मैला आँचल के प्रकाशन के साथ ही आंचलिक कथा साहित्य पर बहस छिड़ गई। चूँकि रेणु जी ने ही लिखा था कि "ये हैं आंचलिक रागिनियॉ - - - - - उसी समय से हिन्दी साहित्य में इस चर्चा ने जन्म लिया। लगभग इसी समय शिव प्रसाद सिंह जी साहित्य में लेखन कार्य में उतरे उनकी पहली कहानी 'दादी मां शीर्षक से छपी और उसमें स्वयं के भोगे बाल जीवन के यथार्थ को गहरे रूप में चित्रित किया गया था, तब से यह माना जाने लगा कि डॉ० सिंह ग्रामीण कथा के चितेरे हैं। इसके बाद से तो लगातार वे ग्राम कथायें लिखकर साहित्यिक चर्चा में बने रहे। सन् 1967 में छपे अलग-अलग वैतरणी उपन्यास से लोगों के मन में यह बात हार कर गई कि ग्राम करैता का यह चित्रकार प्रेमचन्द के आगे बढ़कर ग्राम को सँभाल लिया है। पर यहाँ यह स्पष्ट करना उचित है कि प्रेमचन्द की कथायें प्रायः आदर्श से प्रभावित थीं, वहीं डॉ० सिंह यथार्थ की चिन्दी उड़ा रहे थे। यह बड़े महत्व की बात थी कि उन्होंने रेणु से अलग हटकर एक नई ग्रामीण शैली का रोपण किया।

आञ्चलिक सन्दर्भ में विशिष्ट ग्रामीण जीवन का कुछ अलग विशेषतायें हैं जो इस प्रकार हैं–

पिछड़ापन–शहरों से दूर विकास की किरणों से अछूतेपन की जिन्दगी, जहाँ जहालत व गरीबी का साम्राज्य है।

– विशिष्ट समाजिक जीवन एक खास जीवन शैली में बँधा हो।

– सांस्कृतिक चेतना– मेले, त्योहार, उत्सव, रहन-सहन, खान-पान, लोकगी-लोकनृत्य कथायें, गालियाँ, मुहावरे, उक्तियाँ व्यंग्य आदि।

– शिक्षा आवागमन के साधन, अस्त्र-शस्त्र एवं वेश भूषा।

– देवी देवता, पूजा-पाठ, परम्परा, रीति-रिवाज व धार्मिक आयोजन

– विशिष्ट भाषा व बोली।

इस प्रकार हम डॉ० शिव प्रसाद की कहानियों में वर्णित लोक सांस्कृतिक दृष्टि से तथ्यों की विशेषताओं को प्रस्तुत करेंगे।

जातिगत प्रथा हमारा समाज ऊँच नीच की भावना से जातिगत खेमों में बँट गया है। शिव प्रसाद सिंह की कहानियों में (मुर्गे ने बांगदी) लोहार मंगरु 'कलंकी अवतार' में रोपन बारी, माटी की औलाव में टीमल को हार जातियों में बंटे हैं। गाँवों में इन्हें 'परजा' कहा जाता है। इनकी मोहग्रस्तता इन जातियों से जुड़ी है। आर-पार की माला में जुम्मन नट, इन्हें भी इन्तजार है में कबरी-मंगरा मुसहर, बच्चन चमार जाति के हैं जो जातीय अभिशाप भोग रहे हैं। किसानों को भी जाति के रूप में दिखाया गया है। किसान तो जमींदारी प्रथा में भोग ही रहा है। ये चमार जाति से अच्छी दशा में नहीं हैं। आजादी के बाद यह आशा बँधी थी कि किसानों के हाल सुधरेंगे, पर मोटे मोटे होते गये, गरीब इन्तजार ही करते रह गये। इस प्रकार हम देखते हैं कि डॉ० सिंह की कहानियों में जाति प्रथा का सम्यक् चित्रण है। कर्मों के आधार पर जातियाँ हैं तो किसानों

की एक अलग ही जाति बन गई, जिनकी दशा में कोई सुधार नहीं हो रहा है।

जमींदारी प्रथा का बोलबाला है। इन जमींदारो का कई गाँवों पर बड़ा गहरा प्रभाव है। ये प्रायः उच्च जाति के हैं। प्रजा व मजदूर लोग उन्हीं की सेवा अपनी नियति मानते हैं। कहने की जमींदारी दूर गयी है, पर 'कर्मनाशा की हार' में चार सौ बीघे का पक्के का खेवट अब भी रामसुभग तिवारी के पास है। वस्तुतः जमींदारी टूटी तो, पर नाम बदलकर ये दूसरे रूप में किसानों का शोषण करने लगे। कलंकी अवतार में यह देखा जा सकता है।

दहेज प्रथा दहेज की प्रथा समाज में घुन की तरह लगी है। अंधकूप में नन्हों, सोना भाभी, हत्या और आत्म हत्या के बीच में सोभा बुआ, 'महुए के फूल में सत्ती इस कुप्रथा के शिकार पात्र हैं। डॉ० सिंह की कहानियों में ये सब बड़ी सहजता से प्रस्तुत है।

संयुक्त परिवार– संयुक्त परिवार की धारण टूट रही है। बीच की दीवार में भाभी व भाई मिलते हैं तो 'तलावी' में तो डॉड पड़ ही जाती है। संयुक्त परिवार के सुख-दुख की बेचैनी एकल परिवारों में बदल रहे हैं। 'भेड़ियें की तीनों भाई मिलकर रहते हैं। इस प्रकार ग्रामीण परिवेश में टूट रहे परिवारों की पीड़ा इन कहानियों के तीखे स्वर हैं।

नारी की स्थिति– परिवारों के टूटने की पीड़ा नारी को झेलनी पड़ी है। कहीं-कहीं टूटने से नारी सबल हुई तो कहीं टूट गई। नन्हों तो इस कथा में सब कुछ दाँव पर लगाकर खड़ी हो जाती है, धरातल की मैना भी उचित जवाब देती है पर अधिकतर टूटन की नारकीय स्थिति से उबर नहीं पाती है। तमाम नारी उत्थान अधिनियमों के पास हो जाने पर भी नारी इन धानियों में नहीं उठ पाती हैं। अधिकारों के लिए उठे हुए हाथ सहसा नीचे होने लगते हैं और यथास्थिति की शिकार नारी हो जाती है। डॉ० सिंह की कहानियों में नारी की स्थिति बड़ी अच्छी नहीं है।

विवाह भी अनमेल व बाल विवाह मे बदल गये हैं, जिसके भयंकर परिणाम कहानियों में बिखरे पड़े हैं। 'बरगद का पेड़' की शीला, एक यात्रा सतह के नीचे' का अवधू, अन्धकूप की सोना भाभी 'महुए के फूल' की सत्ती, केवड़े के फूल की अनीता साफतौर पर अनचाहे, अनमेल, बाल विवाह के प्रतीक हैं। जिनमें यातना से पीड़ित नारी अपने बचाव के लिए पुकार रही है। इसके पीछे कारण है– कुल खानदान की इज्जत, जातीय कठोरता एवं परम्परागत जीवन शैली। नारी के इस बीमार चरित्र का सृजन कथाकार ने जगह-जगह कर एक प्रश्न चिन्ह समाज को दिया है।

रूढ़ियाँ तो समाज में ग्रामीण व्यथा को तोड़ रही हैं। 'रेती' कर्मनाशा की हार रूढ़िवादी कहानियाँ हैं। कर्मनाशा की बाढ़ बलि से ही रुकेगी, ऐसी ही रूढ़ि की सर्जना है। बच्चा न होने का दोष नारी पर मढ़ा जाता है, जो तर्क की कसौटी पर एक दम नहीं खरी उतरतीं। इसे समाज का कोढ़ नहीं और क्या कहा जाय। बहुत सी कहानियों में समाज की रूढ़ियाँ विद्यमान हैं।

उत्सव-त्योहार भी समाज में ऐसे छाये हैं, जैसे धूप-छाँव। रेतीं में रामनवमी का पर्व आज जिउतिया है, मातृ नवमी नारी का महत्वपूर्ण पर्व। ''खैरा पीपल कभी न डोलें'' में होली, उपधारयन मैया में जन्माष्टमी। चमटोलमे लगने वाले धार्मिक सांस्कृतिक के समारोह। कार्तिक पूर्णिमा को गादी लगती है। इन्हें भी इन्तजार है में कीर्तन मंडली के गीत इसके अच्छे उदाहरण हैं। बच्चों के जन्म दिन पर त्योहार, विवाह का चित्रण, विवाह में खान-पान के तरीकों पर भी वर्णन है। वस्तुतः गाँवों में जन्म से लेकर मृत्यु तक तरह-तरह के आयोजन होते हैं। जिनमें खान पान से लेकर आम व्यवहार तक के वर्णन कहानियो में उपलब्ध हैं। दादी माँ, किसकी पांखें, इन्हीं भी इन्तजार है आदि कहानियों में जन्म से मृत्यु तक के संस्कारों का विधिवत् वर्णन है।

टोने-टोटके मंत्र-पूजा के विशद वर्णन कहानियों में हैं। धार्मिक अन्ध विश्वास, मूर्खता, मूढ़ता, अज्ञानता इनमें व्यक्त हैं। 'बड़ी लकीरें' में झुगिया झब्बू के साथ काम

करने से छुट्टी पाने के लिए मुर्गा चढ़ाने की बात कहती है। पाप जीवी में खप्पर पूजा, संपेरा में मन्त्रों से साँप को वश करना, रेती में बच्चा के लिए भूत-पिशाच व जादू टोने का व्यापक प्रभाव दिखाई देता है। इनमें कथाकार ने ग्रामीण परिवेश में व्याप्त अज्ञानता एवं अन्ध विश्वास को ही व्यक्त किया है। नौटंकी, नाच, खेल भी कहानी में देखने को मिलते हैं। 'बहाव वृत्ति' में नाटक, 'कर्मनाशा की हार' तथा 'तो' - - - - में सोदाहरण नौटंकी के दृश्य है। खेलों एवं दंगल के भी खूब उदाहरण है।

लोकाचारों का भी कहानियों में स्कूल वर्णन हैं शादी के बाद वर वधू को मूंज से नदी के दोपाटों पर लाया जाता है, थाली ढेलाई, मुँह दिखाई, डेहरी डँकाई आदि भी खूब प्रचलित हैं। कथाकार ने सांस्कृतिक परिवेश को कहानियों में खूब प्रदर्शित किया है, यहीं कारण है कि ये कहानियाँ ग्रामीण, ठेंठ, सांधी कहानियाँ बन पड़ी हैं। इसके अलावा इन कहानियों में तमाम तरह के लोकहास्य व कहावतों के रोचक प्रसंग में, जिनसे समूची ग्रामीण धरती रंगारंग है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि डॉ० शिव प्रसाद सिंह द्वारा लिखित लगभग 80 कहानियों का परिवेश स्पष्टतया ग्रामीण संस्कृति पर आधारित रहा है। कथा भूमि उन्हीं पात्रों से तैयार की गई है, जो उनके आस-पास रह रहे हैं जिनमें मिट्टी की गन्ध समाई है। सम्भवतया मुंशी प्रेमचन्द के बाद इतने बड़े फलक पर डॉ० सिंह ने ही ग्रामीण पात्रों, चरित्रों, परिवेश, को अपने साहित्य में स्थान दिया है। शोषित पीड़ित कराहते एवं अस्तित्व की रक्षा के लिए मुँह ताकती लाचार महिला चरित्रों के शिल्पीय स्वरूप एवं लोकतत्वी स्वरूप को पहली बार डॉ० सिंह ने अपने कथा का आधार बनाया है। हमने देखा कि लोक संस्कृति के उपरोक्त सभी तत्व कहानियों में मुखर हो उठे हैं। अब हम शिल्पगत तत्व के रूप में कथा वस्तु, चरित्र-चित्रण, संवाद वातावरण एवं भाषा शैली द्वारा कहानियाँ का सम्यक् विश्लेषण करेंगे। डॉ० सिंह ने मनुष्यता की खोज में कहानियों का सृजन किया। समस्त कहानियों की कथावस्तु को यहाँ दिया जाना सम्भव नहीं है। अध्ययन की सुविधा के लिए कथावस्तुओं को हम निम्नलिखित आयामों बांट सकते हैं–

मानव की खोज परक कहानियाँ डॉ० सिंह की एक कहानी का शीर्षक है– हीरो की खोज वस्तुतः आजीवन हीरो की खोज अर्थात् मनुष्य को खोजते रहे। उनका विश्वास था– 'मनुष्य से बड़ी कोई इकाई नहीं है। मनुष्यता से बड़ा कोई मजहब नहीं है। ''इसी मनुष्य की खोज उन्होंने विविध कहानियों में की है। देऊ दादा उपधाइन भैया, कर्मनाशा की हार में भैरों पाण्डे, अशरफ चाचा, अर्जुन पाण्डेय आदि पात्र मनुष्य की खोज के मील के पथ्तर हैं। लगता है कि उन्हें मानव मिल गया, पर वही पलटकर जब वार कर देता है तो सोचने पर बाध्य हो जाते हैं।

भेड़िये में मनुष्य को उस परिवेश के बीच खड़ा करते हैं तो वह बड़ी लकीरों के सामने भाग जाता है। लेखक की कोशिसें जारी हैं कि इस धुंधलके से ही आदमी का चेहरा साफ होगा और आदमी की खोज पूरी होगी, पर काश डॉ० सिंह ऐसा कर पाते, इसी बीच उनकी कलम खामोश हो गई। शोषण परक कथा में शोषण कभी नहीं रूका है। जमींदारी टूट गई है, पर कें चुलें अभी बाकी हैं। हरवाहों, चरवाहों जजमानों एवं परजा का वर्ग अभी है। यदि ये वर्ग है तो स्पष्ट है कि सोषण शेष है। मुर्गे ने बांग दी, उस दिन तारीख थी, में शोषण कई स्तरों पर है। उदाहरण– ''ठाकुर की दो औरतें हैं, पर उनसे मन नहीं भरता, बाप नौकर है तो बेटी नौकरानी। देवी सिंह का शोषण आर्तिक है तो उपहार में काम वासना सम्बन्धी शोषण, पाप जीवी व भाटी की औलाद में श्रम एवं शारीरिक शोषण चरम पर है। इस प्रकार हम देखते हैं कि शोषण के कई रूप–आर्थिक शारीरिक, जातिगत श्रम, एवं धार्मिक शोषण के कहानियों में बिखरे पड़े हैं। इन कहानियों का मूलभूत उद्देश्य है– शोषण से निजात की आशा। नारी जीवन पर बहुत सी कहानियाँ हैं। नारी की स्थिति व परिवर्तन शील विचार धारा का उन्मेष इसमें दिखाई देता है। गाँव रूढ़, सड़े-गले, अन्ध विश्वास परिपाटी पर नारी को तौलते हैं जहाँ आधुनिक नारी सर हो रहे अत्याचार का खुलासा हैं। दादी माँ कुलबदूकी मर्यादा से ओत-प्रोत कहानी है। बरगद का पेड़ की शीला, मछुए के फूल की सत्ती आर-पार की मालाकी नीरू, समाज द्वारा, के बड़े का फूल में अनीता माता-पिता द्वारा छली जाती

है इस प्रकार नारी को जहाँ समाज, पति, भाई, बहन, माता-पिता प्रताड़ित कर रहे हैं, वहीं नारी ही नारी के शोषण पर तुली हुई है। कहीं शिक्षा के अभाव कहीं कुल मर्यादा, कहीं रूढ़ि, अन्ध विश्वास मान प्रतिष्ठा से पीड़ित है तो कहीं अपने आप से ही। कहीं-कहीं डॉ० सिंह ने त्याग से भरपूर कहानियों की रचना की है। इन कहानियों में पात्र त्याग पूर्ण जिन्दगी जीते हैं। उपधाइन मैया में बोधन तिवारी का त्याग वरेण्य है। दादी माँ, गंगातुलसी आदि कहानियों में त्याग की झलक मिलती है। प्रेम परक कहानियों में नई पुरानी तसवीरें, टूटे स्वर की तसवीर, देऊ दादा, उपधाइन मैया हीरो की खोज, संपेरा आदि में प्रेम व त्याग की भावना व्याप्त है। महुए के फूल, बरगद का पेड़ और के बड़े का फूल विशुद्ध रोमानी अंदाज में लिखी कहानी है। कर्मनाशा की हार में प्रेम व कायरता एक साथ मिलती है। वैयक्तिक प्रेम का एकदम शुद्ध मानवीय रूप 'राग गूजरी' में देखने को मिलता है। वे एक दूसरे के साथ प्रेम के लिए रहते हैं, दिखाने के लिए नहीं। इस प्रकार प्रेम मूलक कहानियों में त्याग, बलिदान, आशा प्रतीक्षा एवं सौन्दर्य के लिए भाग व्यक्त हैं। स्वार्थी प्रेम मूलक कहानियों में प्रेमी की कायरता, विवशता व छलावा ही दिग्दर्शित है। अन्तर्सम्बन्धों के भाव पर आधृत कहानियाँ भी लिखी गई हैं। स्वार्थ भोगवादी भौतिकता, लिप्सा, ईर्ष्या, मोह ने मिलकर इस प्रकार के कथानकों को निर्मित किया है। बीच की दीवार, वशीकरण एक यात्रा सतह के नीचे, बड़ी लकीरें, मंजिल और मौत आदि कथा में टूटते बनते मानवीय सम्बन्धों पर आधृत हैं। मनुष्य पैसों की खातिर लुट रहा है, लूट रहा है, छल रहा है छला जा रहा है। इन्हीं बनते बिगड़ते मानवीय सम्बन्दों को लेकर कहानियाँ लिखी गई है।

विद्रोहात्मक कहानियाँ भी लिखी गई हैं। कर्म नाशा की हार में भैरो पाण्डेय बुजदिल कुलदीप को ठोकर मार देता है। और समाज से कहता है– ''कर्मनाशा की बाढ़ दुध मुंहे बच्चे की बलि से नहीं रुकेगी। इसके लिए तुम्हें पसीना बहाकर बाँधों को ठीक करना होगा। कुलदीप कायर हो सकता है किन्तु मैं कायर नहीं हूँ। मेरे जीते जी बच्चे और उसकी मां का कोई बाल बांका नहीं कर सकता। भैरों पाण्डे के विद्रोह एवं सच्चाई

के सामने सभी अवाक् रह जाते हैं, आँखें नीचे कर लेते हैं। इस विद्रोह का कोई उत्तर नहीं है। इस प्रकार हम देखते हैं कि तमाम भावों पर डॉ० सिंह की कहानियाँ सृजित है, जहाँ हास्य, व्यंग्य, चिन्तन, मनन एवं अनुशीलन के बाद बहुत देर तक इनके पात्रों के स्वर गूँजते रहते हैं। अर्थात् कहानियों के कथ्य परिवेश गत आंचलिक सन्दर्भ लिए हुए हैं। कहानियों में पात्रों का चरित्र-चित्रण डॉ० सिंह ने बहुत कुशलता से किया,जिससे पूरा परिवेश झलकता है। डॉ० सिंह ने स्वीकार किया है कि– ''मुझे कहानी कहने के लिए जो चीज सबसे अधिक विवश करती है, वह है मनुष्य का चरित्र में पात्र क्या हैं, मेरी कहानियों के अधिकतर पात्र उपेक्षित तिरस्कृत माटी के ढेले ही तो हैं, अथवा बबूल के सूखे पेड़ जो राह चलते पंथी को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं।''

पात्रों के चरित्र पर मनोवैज्ञानिक अस्तित्ववाद एवं पलायनवाद का प्रभाव दिखाई देता है। इन अर्थों में कुछ चरित्र बड़े सशस्त्र बन पड़े हैं। 'कर्मनाशा की हार' चरित्रों के विकास में बड़ी सशक्त कहानी है। भैरों पाण्डे का विद्रोह, सृजन एवं चिन्तन एक उजड़ते परिवार को पुनः बसाने की तथा आवारा एवं पथविमुख युवा पीढ़ी को पर एक गहरा तमाचा है। भैरों पाण्डेय जहाँ अपने कुल खानदान की बनाई 'बखरी' के प्रति सवेदनशील हैं वहीं कुलदीप की कायरता पर बहुत दुःखी हैं। इसलिए वे गाँव भर से बैर मोल लेकर दुध मुंहे बच्चे और विधवा को अपना लेते हैं। मनोवैज्ञानिकता में राम सुभग और नन्हों का चरित्र देखते बनाता है। चरित्रों पर अस्तित्व वाद का गहर असर दिखाई देता है। तमाम पात्र अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे हैं, जिनमें हीरों की खोज में बोधन तिवारी, देऊ दादा, उपधाइन मैया, दीदा माँ, कर्मनाशा की हार में भैरो पाण्डे, नन्हो, जगपती (कर्ज) मु० नैना (धरातल) में आस्था, विश्वास व साहस विद्यमान है। नन्हों अपने पैरों पर खड़ा होना चाहती है। वह अपने दवर तथा देवरानी से साफ कहती है कि– तो यह मुझे कुतिया बनाकर जंजीर में बोध्यत रखना चाहता है ताकि मैं रोटी के लिए दुम हिलाती रहेगी, ऐसा हर्गिज नहीं1 होगा।'' वह सदा साथ देने वाले हरि मगल से भी कह देती है– ''मैं कहाँ रहूँगी।'' यहकहकर सारे बन्धनों से अलग हो जाती

है। इस प्रकार मनोविज्ञान व अस्तित्व वाद का गहरा प्रभाव कहानियों पर है। डॉ० सिंह की कहानियों 'मैं' पात्र रह जगह छाया रहता है। 'मैं' के माध्यम से कथाकार परिवेश में घुसकर वर्णन करना चाहता है, जैसे लगे कि वह स्वयं उस घटना का उक्त भोगी रहा हूँ। इस शैली की कुछ प्रारम्भिक कहानियाँ हैं। बरगद का पेड़। बिना दीवार का घर वशीकरण वट लास्टिक का गुलाब इसके अच्छे उदाहरण हैं। कुछ पात्रों में बड़ी स्वच्छन्दता वादी प्रवृत्ति दिखाई देती है– देऊ दादा, सक्टर्वा लाला, बिहारी लाल, अर्जुन पाण्डेय, शंकर सिंह आदि पात्र है, जिन्हें लेखक ने बहेतू की संज्ञा प्रदान की है। शंकर सिंह के खेत बिकते हैं लहरी सिंह की पत्नी बीमारी से परेशान है पर लहरी सिंह रात को नौटंकी देखना नहीं छोड़ते हैं।

इस प्रकार ये पात्र अल्हड़पन में मानव प्रेम सच्चे सौन्दर्य बोध व सरलता की ओर संकेत करते हैं। कुछ विशिष्ट पात्रों को रचना की डॉ० सिंह द्वारा की गई है। देवा की मां, गुलटा के बाबा, दोपहर का भोजन नई पुरानी तसवीरें दादी मां, गंगा तुलसी, उपधाइन मैया आदि में विशिष्ट पात्र निर्मित किये गये हैं। ''ये पात्र समाज के उपरले स्तर के हैं, बौद्धिक रूप से जागरुक नहीं हैं।'' कुछ 'प्रमुख' पात्र कहानियों में देखने को मिलते हैं। ये पात्र हैं– शोषक यानि समाज के छद्म वेशी पात्र जो ऊपर से बड़े अच्छे लेकिन अन्दर से उतने ही मारक हैं। जमींदार ठेकेदार और मिल मालिक। इनकी शोषण कथा कालान्तर तक चलती रहती है।

ये आर्थिक मानसिक शारीरिक व श्रम सम्बन्धी शोषण कर पात्रों की निरोह महिला पात्र कनिया, पटनहिया, पुष्पी, धनेसरी, सगुनी, राजमती, दुलारी, सोनवा बना देते हैं। कुछ पात्र तो इनसे लोहा लेते हैं बाकी सभा गर्दने झूका लेते हैं। पुरुष पात्र जैपालु सारथ विपिन सुरजू बुल्लू गोगई, सुखदेव शशिकान्त देवनाथ, खलील, खुदाबक्श, सरुव भगत सिरिया, डॉ० सिंह ने बिन्दा महराज जैसे टाइप्ड पात्रों के माध्यम से हरिया, जग्गन, बीस, सुरजितवा, दयाल जगेसर, घुरविनवा, रमचन्ना, डोमन आदि।

साहित्य को एक जोकर देते हैं, जो अन्दर से रोता है, बाहर से हँसता और हँसाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि डॉ० शिव प्रसाद सिंह ने अपनी कहानियों में विविध प्रवृत्तियों वाले पात्रों की रचना कर चरित्र-चित्रण के मामले में परिवेशगत सफलता प्राप्त की है। इनके पात्र दादी माँ नन्हो गुलाबो, सुभागी, तिउरा, कबरी, रचना, अरुन्धती, नैना, भैरो पाण्डे, फुन्ननमियां, अर्जुन, श्याम लाल, रोपन समाज के हर वर्ग-समुदाय से सम्बन्धित हैं, जहाँ पगला बाबा, बक्कस नद, रिम्मल, खुनखुन, हीरा तिलक असरफ मुन्नू बाबू आदि के सुख-दुःख से ये हम परिचित कराते हैं। पात्रों के चरित्र में आधुनिकता, नव चेतना अस्तित्ववाद, मनोवैज्ञानिकता, विदोह अब सरवादिता एवं ऐसे ही न जाने कितने गुणों कीं समावेश है जो बरबस ही हमें खींच लेते हैं। डॉ० सिंह की कहानी 'कर्मनाशा की हार' का भैरो पाण्डेय आज की सच्चाई को प्रकट करता है। कहानीकार ने इस कहानी के पात्र भैरो पाण्डेय से विद्रोह व सृजन का स्वरूप संदेश दिया है। पात्रों के चरित्र-चित्रण के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इनकी कहानियों में मिट्टी की सोंधी महक है, जो अंचल विशेष के परिवेश को रेखांकित करती हैं। भाषा शैली की दृष्टि से डॉ० सिंह की कहानियाँ ग्रामीण परिवेश को छूटी हुई प्रतीत होती है जो भाषा गाँव या घरों में बोली जाती है। उनका बहुत सफल प्रयोग इन्होंने किया है। कहानियों में ज्यादातर देश जब तद्भव शब्दों का प्रयोग है।

ये बोली पूरे वातावरण को सजीव कर देते हैं। कहानी में दो बातें साफ होती हैं। कहानी के पात्र अपनी भाषा में बोलते हैं, जबकि कहानीकार अपनी बात करने में के लिए साहत्यिक भाषा का प्रयोग करता है कुछ उदाहरण हैं– ''दुलहिन के बारे में बंशी बो काकी ने बिना पूछे ही सब बताया। पढ़वैया लड़की है बहि नीजी।''

''अब का चाही दुलहिया।''

''तोहरे मुँह से कहानी सुनके तो सच धिया, बुझता है कि शहद चू रही है।''[26]

---

26. अलग-अलग वैतरणी– शिव प्रसाद सिंह

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि पात्रों द्वारा बोली जाने वाली बोली बड़ी ही मीठी, सरल, सहज व गंवई है। शब्दों, वाक्यों के परिप्रेक्ष्य में भाषा बोली का विवरण इस प्रकार है–

बिगड़े शब्द– हिरदा, हियां, पगला, नैना, घुंघुट, बाबू, सिगता, रमचन्ना, पांत, मजूरी, दरवज्जा, ददइ पक्खा, देस, पगही, करेजा, वरम आदि सैकड़ों शब्द इस रूप में कहानियों में हैं।

स्वयं रचित नये शब्द– सब्बो, कल्पू, सिरिया, अवधू आदि। अंग्रेजी शब्दों में कुछ कातो शुद्ध बाकी के बिगड़े रूप ही प्रयुक्त हैं। जैसे– डिराबर, पैटमैन, पजीशन, लाइन, क्लियर आदि। मास्टरी, क्लर्की, स्कूली बच्चे।

अरबी फारसी शब्दों का प्रयोग भी यथास्थान आया है। दिल फरेब, वकिया रस, पुस्तैनी, फैसला, इन्तजार चौगिर्द गिरोह आदि। भी देखने को मिलते हैं।'

मूर्त अमूर्त शब्दों के प्रयोग भी हैं– गोला गद्दर, थूथन, बिया, ठाँय से, टुकुर-टुकुर, चटनी, दउरा आदि।

गालियाँ– स्साला, हग मारना, हरामजादा, लुच्चा, दोगला, कुलच्छन, बहिरबण्ड सूरत हराम आदि।

इसके अलावा कुछ गँवई शब्दों के यथार्थ प्रयोग मिलते हैं। बोली तो हूबई वैसी ही है– ''बब्बू ई का कियो।''

''ओ ओ कौनो सुखबिका पर लगल है क्या आयें? इसके अतिरिक्त भाषा में लोकगीतों, हास-परिहास, कथाओं, मुहावरों, तुकबन्दियों एवं स्थानीय गीतों के दृश्य देखने को मिलते हैं। जोड़ की जोड़ मिलना, उल्लू का इत्र होना सैकड़ों आदि मुहावरे, कहानियों में प्रयुक्त हैं। भाषा की दृष्टि से डॉ० सिंह की कहानियाँ सर्वथा गाँवों के परिवेश की ओर ले जाती हैं। खुशी पर्व, त्योहार, मेले आयोजन एवं समारोहों में लोकगीतों की बहार रहती है। इसके अतिरिक्त फिल्मी गीतों की कुछ पंक्तियाँ तथा

तुलसी रामायण की चौपाइयाँ वकबीर वाणी के कुछ पंक्तियाँ उदाहरण के तौर पर पात्रों द्वारा प्रस्तुत की गई हैं। कुल मिलाकर डॉ० सिंह की कहानियाँ ग्रामीण परिवेश को पूरे तेवर के साथ प्रस्तुत करती हैं। भाषागत विशिष्टता– गँवई शब्द, ठेठ देहाती शब्द देशज शब्द बिगड़े, नये गठित शब्द, अंग्रेजी उर्दू-फारसी, संस्कृत के शब्दों, मुहावरों, उक्तियों हास-परिहास, तुकबन्दियों, कथाओं एवं किंवदन्तियों में साफ झलकती है कि ये कहानियाँ ग्रामीण परिवेश को आधार मानकर लिखी गई हैं। इस प्रकार हिन्दी कथा साहित्य के कहानी-संसार के मर चितेरे डॉ० शिव प्रसाद सिंह की कहानियाँ भाषाई सम्मोहन से पूरे ग्रामीण परिवेश को छूती हैं तथा पाठकों को इनके भीतर जाकर गाँवों को देखने का अवसर प्रदान करती हैं। यह बड़े महत्व की बात है कि आदर्शो-मुखी प्रेमचन्द का गाँव डॉ० सिंह के यथार्त गँाव में बदल जाता है। डॉ० शिव प्रसाद सिंह के कहानियों का उद्देश्य मानव को उसकी सम्पूर्णता में अभियुक्त कहाना ही रहा है। सदियों से दबे कुचले विकास के हाशिये पर पड़े छटपटा रहे अनगनित नन्हों, रज्जब या गुलाबों की व्यथा को राष्ट्रीय परि दृश्य पर लाने की कोशिशें ही इनकी कथाओं का मूल स्वर रहा है। डॉ० सिंह की बेचैनी 'शैलूष' उपन्यास और 'इन्हें भी इन्तजार है' जैसे कथानकों में साफ झलकती है। आजाद हिन्दुस्तान अभी अनगिनत मासवियों से भरा है, जरा कथाओं एवं उपन्यासों के चरित्रों से मिल कर तो देखें।

कहानियों के वातावरण के सम्बन्ध में डॉ० शिव प्रसाद सिंह का उद्घोष रहा है– 'मेरी जिन्दगी में गाँव एक ऐसी हकीकत है जिस मैंनाहकर भी काट नहीं सकता।..... जिन्दगी के लिए संघर्षरत कि स्टान मेरी कहानियों के अविभाज्य अंग रहे हैं।[27]'' वस्तुतः डॉ० सिंह ने अपनी कहानियों में भीतर के गाँवों के जिस अंचल की धरती को अपनाया है, वह धरती अपने पूरे वातावरण के साथ तथा समूचे परिवेश के साथ चित्रित है। समग्र गाँव, अपनी समग्र अकुलाहट के साथ कहानियों में बिखरे पड़े हैं।

इस प्रकार शिल्पगत दृष्टि से भी डॉ० सिंहकी कहानियाँ ग्रामीण परिवेश की सोंधी महक से सराबोर हैं। कथा वस्तु, भाषा-शैली, संवाद, चरित्र-चित्रण, वातावरण

27. आधुनिक परिवेश और नव लेखन– डॉ० शिव प्रसाद सिंह

एवं उद्देश्य की कसौटी पर कसने से वे आंचलिकता के आस-पास जाकर ठहरती हैं। यह सत्य है कि उनकी कुछ कहानियाँ गॉव से भिन्न हैं, पर वे मात्रा में बहुत कम हैं। जो शेष कहानियाँ हैं, सम्पूर्ण का अनुशीलन करने से यही ध्वनि निकलती है कि कहीं न कहीं इनके सूत्र गाँव से उपजे हैं। डॉ० सिंह ने स्वयं स्वीकार किया है-- मैंने आंचलिकता को हमेशा 'डेकोरेशन पीस' की तरह इस्तेमाल किया है। ''डॉ० सिंह की कहानियों में आंचलिकता का निषेध डॉ० शंकर पुणताम्बेकर जी जैसे तमाम आलोचकों ने किया है। उनका कहना है कि डॉ० सिंह की कहानियों में आंचलिकता का लेबर इसलिए नहीं चिपकाया जा सकता कि उन्होंने मनुष्य का सर्वांग वर्णन किया है। इस आलोचना का विनीत मनुष्य का सर्वांग वर्णन किया है। इस आलोचना का विनीत उत्तर यही है कि रेणु जी की कहानियाँ यदि पूर्णिया जिले के आस-पास को पूरी समग्रता से यदि व्यक्त कर आंचलिक ले सकती हैं तो डॉ० सिंह की कहानियाँ पूर्वी उ० प्र० के लोक जीवन को व्यक्त कर क्यों नहीं आंचलिक बन सकती। क्या डॉ० सिंह जी की कहानियों में जहाँ के जीवन में, मेले, उत्सव त्योहार, पूजा पाठ व्रत, हास परिहार, लोकगीत, कथा, मुहावरे, व्यंग्य, खान-पान रहन-सहन, जीवन शैली एकत्र नहीं है। भाषाई तौर पर डॉ० सिंह की कहानियाँ आलोचक को पढ़ना चाहिए, इसके बाद ही आंचलिक पर निषेध की बात कहनी चाहिए। एक क्षेत्र की विशिष्ट जीवन शैली व्यवहार रेणु ने यदि साहित्य में आंचलिकता जैसी नई शैली का ईजाद किया है तो डॉ० सिंह जैसे तमाम कथाकार इस श्रेणी से इन्हीं प्रवृत्तियों के आधार पर कैसे अलग किये जा सकते हैं। मेरी दृष्टि से डॉ० सिंह की कहानियाँ अपने सम्पूर्ण सौन्दर्य के साथ आंचलिक सन्दर्भ में फिट बैठती हैं। 'अलग-अलग वैतरणी' 'गली आगे मुड़ती है' तथा 'शैलूष' जैसे उपन्यास भी इसी श्रेणी में आते हैं। डॉ० शिव प्रसाद सिंह द्वारा लिखित नीला चाँद, वैश्वानर प्राचीन एवं मध्य कालीन काशी के परिदृश्य तथा दिल्ली दूर है ऐतिहासिक सन्दर्भ में मंजुशिमा व औरत जैसी कृतियाँ संस्मरणात्मक होने के कारण आंचलिक कथा साहित्य के अध्ययन की सीमा में नहीं आते हैं। अतएव आंचलिक सन्दर्भ में केवल कहनियों एवं उपन्यासों को ही आधार बनाया गया है।

●

अध्याय—पाँच

फणीश्वरनाथ रेणु और शिव प्रसाद सिंह के कथा-साहित्य का आञ्चलिकता के सन्दर्भ में तुलनात्मक अध्ययन

अध्याय–पाँच

फणीश्वरनाथ रेणु और शिव प्रसाद सिंह के कथा-साहित्य का आंलिकता के सन्दर्भ में तुलनात्मक अध्ययन

पिछले अध्याय में हमने क्रमशः आंचलिकता के स्वरूप के सन्दर्भ में रेणु व शिव प्रसाद सिंह के कथा-साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन किया है, जिसमें कथा-साहित्य में चित्रित लोकसांस्कृतिक तत्वों, यथा-जादू-टोने, परम्परा, रीति-रिवाज, विवाह-समारोह, मेले-ठेले, खान-पान, रहन-सहन, मूर्खता, मूढ़ता, यौन-विकृतियों, अन्धविश्वास आदि तथा शिल्पगत तत्वों– कथावस्तु, भाषा-शैली, संवाद, चरित्र-चित्रण, देशकाल, उद्देश्य आदि का सम्यक् अन्वेषण, अनुशीलन एवं परीक्षण किया। इस आधार पर हमारे अन्वेपण के आधार पर रेणु के कथा-साहित्य, में आंचलिकता के उपरोक्त सारे तत्व गहरे रूप में विद्यमान हैं, वहीं शिवप्रसाद सिंह के कथा-साहित्य में चेतना परिवेशगत रूप में उतने गहरे रूप में विद्यमान तो नहीं है, पर आंचलिकता की गन्ध से वह अछूती नहीं है। जहाँ रेणु ने पात्रों के साथ स्वर में स्वर मिलाकर गीत गये हैं, पात्रों के साथ नृत्य किया है, उनके बीच बैठका नौटंकी का रस लिया है, विवाहों, समारोहों, मेले-ठेले में पूरी तरह भाग लिया है, वहीं शिव प्रसाद सिंह पात्रों के बीच में हो रहे प्रतिक्षण दुःख-सुख को उसी स्तर पर भोगा है। कुछ आलोचक रेणु को पूरा आंचलिकता डॉ. सिंह को आंशिक आञ्चलिक, रेणु को आंचलिक, डॉ. सिंह को आंचलिक का मुलम्बा पहनाते हैं। शंकर पुणताम्बेकर जैसे लोग सब कुछ मानते हुए भी डॉ. सिंह को सर्वथा अनांचलिक कहकर पुकारते हैं। सभी विद्वानों की टिप्पणियों का सम्यक् विवेचन करने के बाद यही निष्कर्ष निकलता है कि ''गुड़ खाये गुलगुले से परहेज' वाली बात हमें नहीं पचती। या तो आंचलिक अथवा अनांचलिक, ये दो ही खेमे हैं। अर्द्ध आंचलिक या पूर्ण आंचलिक कहना मात्र दो मुँहापन है, यथार्थ से भागने का प्रयास। वस्तुतः फणीश्वरनाथ रेणु ने तो अपने कथा-साहित्य का उन्मेष ही आंचलिक धरती का कहानी

से प्रारम्भ करते हैं। उनके बारे में आंचलिकता से परे की बात ही नहीं है। रही बात शिव प्रसाद सिंह के कथा में आंचलिकता की तो विवेच्य विषयों पर ध्यान देना होगा। वस्तुतः प्रेमचन्द्र की अग्रिम पंक्ति के रूप में डॉ. सिंह को बैठाया गया। ग्रामीण परिवेश पर लिखी जाती कथायें लिखकर प्रेमचन्द्र अमर हो गये, कभी आंचलिक नहीं हो पाये। क्या कारण है कि डॉ. सिंह द्वारा लगभग बनारस के आस-पास के ही परिवेश पर लिखी गई कथायें आंचलिक होने लगी? इसका सीधा उत्तर है। प्रेमचन्द्र गुलाम हिन्दुस्तान में लिख रहे थे, और आंचलिकता शब्द का प्रवेश नहीं हुआ था, पर डॉ. सिंह आजादी के बाद उन पात्रों को साहित्य में ला रहे थे, जिन्हें आजादी के बाद भी हाशिये पर डाल दिया गया था। वे अपनी मुक्ति के लिए सपना देख रहे थे। डॉ. सिंह को इन्हीं कारणोंवश आंचलिक कथाकार कहने में कोई संकोच नहीं होता है। डॉ. सिंह ने जब लिखना प्रारंभ किया, तब तक साहित्य में आचंलिक सन्दर्भ चल पड़े थे। अब अन्वेषण की दृष्टि से डॉ. शिव प्रसाद सिंह का कथा-साहित्य व फणीश्वरनाथ रेणु के कथा-साहित्य में आञ्चलिकता का तुलनात्मक अध्ययन किया जाएगा।

लोकसांस्कृतिक दृष्टि से 'अंचल' का अर्थ परिवेश ही लिया जाता है। फणीश्वरनाथ रेणु बिहार के पूर्णिया जिले के औराही हिंगना गाँव के जन्मे थे। प्रारम्भिक शिक्षा व मूल संस्कार उसी जनपद व स्थान के हैं। जहाँ उसका ज्यादातर समय बीता। उन्होंने उसी परिवेश को अपनी कथाओं में सथान दिया। प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर युवा आन्दोलन तक, वे जहाँ भी रहे अपने साहित्य को वहीं टटोलते रहे। पूर्णिया से पटना तक उनके साहित्य में है। जहाँ मैला आँचल परती परिकथा ग्रामाँचल की कहानियाँ हैं वहीं जुलूस, दीर्घतया नये परिवेश शहरी वातावरण को लेकर लिखा गया। इसी प्रकार डॉ. सिंह ने अलग-अलग वैतरणी को ग्राम करैता का, शैलूष को रेवतीपुर का कथा भूमि बनी, वहीं गली आगे मुड़ती है में बनारस के आधुनिक स्वरूप को चित्रित किया है। इस प्रकार परिवेश गत दृष्टि से दोनों कथाकार एक ही परिवेश मानसिकता के सिद्ध होते हैं। परिवेशीय विशिष्टता दोनों में लगभग एक सी है, जिसके आधार पर हम उन्हें

आंचलिकता के पास पाते हैं। परम्परागत कसौटी पर दोनों साहित्यकारों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो लगभग एक ही परम्परा को रूपायित करते दिखाई देते हैं। रेणु के पात्र परम्परा में जहाँ बेजोड़ हैं, उनसे चिपक हैं, वहीं डॉ. सिंह के चरित्र भी परम्परावादी है। परम्परागत ढंग से त्योहार, पर्व, मेले आदि का आयोजन होता है। होली, दीपावली, रक्षाबन्धन, मोहर्रम, कार्तिक पूर्णिमा आदि त्योहार तो लगभग पूरे देस में एक ही प्रकार से मनाये जाने की परम्परा है। परम्परा में अपने समाज की अलग हो सकती हैं, पर इससे कोई ग्रामीण अँचल अछूता नहीं है। **अन्धविश्वास** तो मैला आँचल में सर्वत्र दिखाई देता है। परती परिकथा भी अछूती नहीं है। रेणुजी के लगभग कहानियों एवं उपन्यासों में इनका बोलबाला है। पितरों के लिए दो पूड़ियाँ फेंक देते हैं कि ये उन्हें मिल जायेंगी, तो सिंह की कहानी में रेवती को ही बच्चा न होने का प्रमुख कारण माना जाता है कि बच्चा न होने में औरतों की ही गलती होती है। 'कर्मनाशा की हार' में दुधमुंहे बच्चे की बलि देने से बाढ़ रोकने की रूढ़ि समाज को तोड़ रही है। वहीं रेणु जी की कथाओं में अन्धविश्वास से जनसमूह ही प्रभावित दिखाई देता है। **जाँति-पाति** रेणु जी के उपन्यास में जातियों के आधार पर टोले बने हैं। राजपूत टोला, दुसाध टोला, यादव टोला तो डॉ. सिंह की कहानियाँ आर-पार की आला, पापजीवी, इन्हें भी इन्तजार है आदि में जाति के आधार शोषण की प्रक्रिया चल रही है। कहानयों एवं उपन्यासों में जातियों का वर्णन दोनों कथाकारों की कलम से हुआ है। इस तरह जाँति-प्रथा पूरे चरम पर है। कायस्थ, राजपूत व यादव लड़ रहे हैं, इन्हें लड़ा रहे हैं– ब्राह्मण और ठाकुर जाति वाले। ये अलग-अलग बैतरणी तथा मैला आँचल व परती परिकथा ने बराबर रूप से मिल रहा है। **गन्दगी** का साम्राज्य पूरे परिवेश में हैं, **मेरीगंज, परानपुर, रेवतीपुर, कमालपुर** आदि में गन्दगी का वर्णन सर्वत्र मिलता है। गन्दगी से ही बीमारी है। और बीमारी से ही सर्वनाश है। ज्यादातर कहानियों एवं उपन्यास में गन्दगी का वर्णन है। मैला आँचल के एक पात्र का कहना है– ''लेकिन यहाँ के लोगों को तुम लोट्स ईटर्स नहीं कह सकते।

.... यहाँ की धरती बारहों महीने भीगी रहती है।''[1] डॉ. सिंह की कथा में आप गन्दे परिवेश के तमाम उदाहरण पा जायेंगे। ''अलग-अलग वैतरणी'' अथवा शैलूष में कुछ उदाहरण मिल जायेंगे। उत्सव-त्योहार गाँवों में मनाये जाने वाले तमाम उत्सव होते रहते हैं। पूरे साल त्योहार, पर्व, उत्सव, समारोह, नृत्य, संगीत एवं विवाह आदि की बहार रहती है। इसके पर्याप्त उदाहरण रेणु और डॉ. सिंह की कहानियों में देखने को मिल जाते हैं। बिहार के जनपद पूर्णिया के आस-पास के क्षेत्रों में त्योहार मनाये जाते हैं जिनकी अपनी सम्पूर्ण विशेषता है। बनारस के आस-पास मनाये जाने त्योहार, पर्व आदि उपन्यासों में देखने को मिलते हैं। रेणुजी की कथाओं में भी बीच-बीच में **पर्व-त्योहार** की दृष्टि से दोनों कथानकों की कृतियों में पर्व-त्योहार मनाये जाने की परम्परा विद्यमान है। यह अलग बात है कि देशगत परिवेश गत उत्सव व त्योहार भिन्न हैं, पर कुछ त्योहार तो समान हैं। इन त्योहारों, उत्सवों में लोकजीवन का उत्साह व सौन्दर्य पर पूरी तरह से दिखाई देता है। **दहेज-विवाह** आदि के भी चित्रण देखने को मिलते हैं। दहेज के कारण बालविवाह, अनमेल, विवाह व जबरन विवाह का प्रचलन बहुत देखने को मिलता है। मैला आँचल, परती परिकथा या कहानियों में वे दृश्य बहुतायत हैं। डॉ. सिंह ने इस तरह की समस्याओं पर बहुत लिखा है। अन्धकूप, हत्या और आत्महत्या के बीच महुए के फूल, एक यात्रा सतह के नीचे आदि कहानियों, अलग-अलग वैतरणी के कनिया पटनहिया यात्री के पात्रों के माध्यम से इन समस्याओं का चित्र उभारा है। विवाह समारोह भी कथाओं में प्रचुर मात्रा में हैं। दहेज समाजका कोढ़ है। इससे तमाम जिन्दगियाँ तब और अब भी अन्तिम साँसें ले रही हैं। इन सबका यथार्थ चित्रण कथाओं में पूरी तरह से वर्णित है।

जादू-टोना क्या उच्च जाति और क्या नीच जाति के लोग सभी जादू टोने पर विश्वास करते हैं। शैलूष से लेकर अलग-अलग बैतरणी तथा मैला आँचल से लेकर दीर्घतया तक सभी उपन्यासों, कहानियों में जादू टोने से बीमारी से छुटकारा, परीक्षा

1. मैला आँचल– रेणु

में सफलता, बच्चा पैदा कराना, मनचाही मुरादें पूरी कराना, बाँध बनवाना तथा किसी महिला का वश में हो जाना आदि बातें दृष्टव्य हैं। रेणुजी में काल भैरवी, भूत-प्रेत, पिशाच पर काफी अध्ययन किया है, और मठों, मन्दिरों, चबूतरों, मजारों पर जाकर इसे देखा है, इसकी सच्चाइयों को परखा है। अतएव उन्होंने जो वर्णन किया है, वे बिल्कुल यथार्थ से जुड़ते हैं। डॉ. सिंह के कथा साहित्य में भी इसी प्रकार के हजारों वर्णन देखने को मिल जायेंगे। इस प्रकार अन्ध विश्वास जादू-टोने एवं रूढ़ियों के चलते तमाम परिवार नष्ट हो गये हैं, इसे एक कोढ़ मानकर दर्शाया गया है। वस्तुतः कथाकारों ने यह ध्येय रखा है कि इन कथाओं, चरित्रों के माध्यम से एक पिछड़े समाज परिवेश, स्थल का खाका खींचा जा सके। **यौन विकृतियाँ** व कुण्ठा उपन्यासों व कहानियों में चरम पर है। क्षेत्र विशेष में होने वाली तमाम यौन विकृतियाँ समाज में दूर रहे मानवीय सम्बन्धों की कहानी कहते हैं। लक्ष्मी कोठारिन और अन्धे सेवादास के सम्बन्धों को सारा गाँव जानता है। इसी प्रकार डॉ. सिंह के उपन्यासों शैलूष अलग-अलग वैतरणी व गली आगे मुड़ती है में पात्र का भावुकता के शिकार हैं। यौन कुण्ठाओं से ग्रस्त पात्र नारी ही नहीं पुरुष भी हैं। विपिन-पुष्पी, बुझारथ, हरिमंगल बालदेव, डॉ. प्रशान्त, कालीचरन जैसे तमाम पात्र इस मानव सुलभ ग्रन्थि के शिकार है। स्थानीय परिवेश में रंगीय मनावृत्तियाँ सहजती ऐसे सम्बन्धों का हवा देती है, जहाँ जाति-वर्ग-वर्ग-ऊँच-नीच, धनी-निर्धन सब एक ही पायताने पर सोते हुए नजर आते हैं। इन मनोग्रन्थियों के टूटने के भी स्वर कहानियाँ सुनाई देते हैं। यौन विसंगतियों की दृष्टि से भी दोनों कथाकार लगभग एक ही धरातल पर पाये जाते हैं। **मनोरंजन-नाच, नौटंकी थियेटर, मेले की दृष्टि** से दोनों कथाकारों की एक सोच है। यह माना जाता है कि मेला गाँव की संस्कृति का ऐसा मंच है, जहाँ हर वर्ग एक दूसरे से मिलता है। मेले से ही अलग-अलग वैतरणी की कथा शुरू होती है तो मैला आँचल में मेले त्योहार, नाच, नौटंकी भरमार है। तीसरी कसम का हिरामन इसी नौटंकी की बाई का शिकार है, जो धोखा खाने पर तीसरी कसम खा लेता है। नौटंकी का अच्छा उदाहरण है– 'तीसरी कसम'। **लोक कथायें** भी इन

कहानियों व उपन्यासों में वर्णित है। चूँकि उपन्यास का कलेवर बड़ा होता है अतएव उसमें लोकथा की ज्यादा संभावना होती है। लोक कथाओं का ग्रामीण जीवन में बड़ा महत्व है। 'महुए का फूल' तो लोककथा से ही शुरू होती है। अरुन्धती में भी लोककथा है। इसी प्रकार रेणुजी की परती परिकथा लोक कथाओं का भण्डार हैं। लोक कथा में किसी चरित्र को परोक्ष रूप से रूपायित किया जाता है। इसी प्रकार इन कहानियों एवं उपन्यासों में **नारी की स्थिति** से लेकर, संयुक्त परिवारों की टूटन तक के यथार्थ चित्रण देखने को मिलते नारी जहाँ शोषण एवं अत्याचार की मार सहते थेथर हुई जा रही है, वहीं आधुनिक नारी के दर्शन गली आगे मुड़ती है तथा दीर्घतपा में देखने को मिलते हैं। 'दीर्घतपा' नारी संघर्ष व उत्पीड़न की अमर कथा है। बेला गुप्ता का आत्मसंघर्ष अन्तर्द्वन्द व मनः पीड़ा को जरा कनिया, पटनहिया, नन्हों, चितकबरी, सब्बो आदि पात्रों से मिलाये तो आप एक सन्धि स्थल पर इन्हें जड़ा पायेंगे। वस्तुतः नारी की दशा का सम्यक् चित्रण डॉ. सिंह की कथा-साहित्य में जहाँ मिलता है, वहीं रेणु ने आधुनिक युग बोध के साथ नारी को जोड़ने की कोशिश की है। इन उपन्यासों व कहानियों में रेणु व शिव प्रसाद सिंह एक युग बोध लेकर चले हैं, जहाँ सांस्कृतिक रूप से पात्र नारकीय जीवन भोगने की पीड़ा से ग्रस्त हैं वहीं कुछ पात्र भैरो पाण्डे जैसे लोग विद्रोह का स्वर अलापते हैं। ऐसा नहीं है कि रेणु इसमें पीछे हैं। मैला आँचल में डॉ. प्रशान्त, कालीचरन व बालदेव की मुठ्ठियाँ भिंची हुई हैं। तभी तो वे कहते हैं– ''जिस तरह सूर्य का डूबना एकदम सच है, उसी तरह पूँजीवाद का नाश होना भी सच है।'' पणीश्वरनाथ रेणु का शिव प्रसाद सिंह से थोड़ा पहले लिखना शुरू कर दिये थे। इस दृष्टि से कुछ अन्तर स्वाभाविक है, केवल राजनीतिक व आर्थिक क्षेत्र में दोनों कथाकारों में परिवेश वर्णन की अद्‌भुत साम्यता है। राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक व सामाजिक परिदृश्य तेजी से बदल रहे थे। पूँजीवाद जमींदारी टूट रही है, किसानों को स्वराज मिलेगा, पर सच यह है कि सामन्तवादी व्यवस्था की टूटन के साथ जमींदारों ने ठेकेदारों, बड़े नेताओं ने छुटभैय्ये नेताओं का रूप पकड़ लिया और आम आदमी के ऊपर चौतरफा प्रहार होने

लगा। ऐसी स्थिति में अलग-अलग बैतरणियों में डूब रहे मैले आँचल मेंजी रहे परती के लोगों को राष्ट्रीय परिदृश्य पर लाना आवश्यक हो गया। इस अर्थ में रेणु व शिव प्रसाद सिंह जैसे सुधी साहित्यकारों ने कलम उठाई। लोकसंस्कृति की दृष्टि से दोनों कथाकार एक ही सन्धि स्थान पर खड़े नजर आते हैं। अतः स्थलगत विभेद होते हुए भी दोनों कथाकारों ने जो लोकसांस्कृतिक परिवेश प्रस्तुत किया है, वह आंचलिकता की परिधि में है। शिव प्रसाद सिंह तथा रेणु जी के कथा-साहित्य में शिल्पगत स्तर पर तुलनात्मक अध्ययन के लिए कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, संवाद, भाषा-शैली, देशकाल एवं उद्देश्य पर अब विचार किया जाएगा। डॉ. शिव प्रसाद सिंह व फणीश्वर नाथ रेणु द्वारा लगभग दर्जनों कहानियाँ, उपन्यास, रिपोर्ताज, संस्मरण, निबन्ध, शोध प्रबन्ध एवं समीक्षा ग्रन्थ लिखे गये हैं, जिनमें भाषागत शैली का अपना महत्व है। भाषा लेखक की निजी विशेपता है। शैली में अन्तर हो सकता है पर भाषा, बोली, बानी, मुहावरे, शब्द, उक्तियाँ, हास-परिहास आदि में साम्यता होती है। कथावस्तु के प्रश्न पर विवेचना करते समय यह ध्यान में रखना होगा कि कथाकार रेणु और डॉ. सिंह ने ग्रामीण पृष्ठभूमि को ही आधार बनाया है। जहाँ ग्रामीण परिवेश से ये हटकर शहरी परिवेश को रेखांकित किया है, वहीं ग्राम कथाकार का नगर में प्रवेश होता है। अलग-अलग वैतरणी से गली आगे मुड़ती है में तथा मैला आँचल संदीर्घतया में प्रवेश बेचैन मन की अकुलाहट ही है। वस्तुतः इन उपन्यासों के बाद इन पर कथांचल के कथाकार होने के 'लेबुल' लगाने जाने लगे, जिन्हें उतारकर फेंकने की कोशिशें इनके द्वारा की गई, पर इसमें वे पूर्णतया सफल नहीं हो पाये कारण की रेणु ने इसके बाद ग्रामीण वातावरण पर वातावरण पर (अधूरा) रामरतनराय लिखना शुरू किया और शिव प्रसाद सिंह ने गली आगे मुड़ती है नामक उपन्यास लिखा, जिससे यह स्पष्ट होता है कि कथाकार शहर के वातावरण में रम नहीं पाये और मूल प्रवृत्ति ग्रामीण गंध को ही पकड़ा। वास्तव में रेणु जी का मन शहरी कथाओं में नहीं रमा, जिससे वे पुनः ग्रामीण परिवेश में लौट पड़े। ये कथाकार गाँव में पैदा हुए, संस्कार गाँव के रहे, पढ़े-बढ़े गाँव में और जिन्दगी का

लगभग ज्यादातर हिस्सा गाँव में बिताया तो यथार्थ के स्तर पर वे उससे कहाँ अलग हुए। डॉ. सिंह इसके बाद तो पौराणिक आख्यानों, संस्मरणों, रिपोर्ताजों एवं नाटकों में उलझ गये, जिससे लोक संस्कृति का प्रवाह रुक गया। एक बार उन्होंने स्वयं कहा था– ''गाँव मेरी कहानियों के अविभाज्य हिस्सा है, मैं उनसे चाहकर भी नहीं अलग हो सकता।''[2] सिंह यही स्वर उनकी कथा-यात्रा में भी सुनने को मिलता है। कथावस्तु का आधार दोनों कथाकारों के लिए ग्रामीण परिवेश रहा है। परानपुर, मेरीगंज सिमरबनी, फारबिसगंज, पूर्णिया जहाँ रेणु के प्रिय कथावस्तु केन्द्र रहे हैं, वहीं शिव प्रसाद सिंह के लिए करैता, रेवतीपुर, कमालपुर सकलडीहा, जमानियां जैसे प्रिय कथा केन्द्र रहे हैं। कथावस्तु में इन क्षेत्रों की दुःख दर्द भरी कहानी व्यक्त है, इनके लोकगीत, विलाप, करुणा, संत्रास एवं आशा रूपी वृक्ष यहीं फलते-फूलते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों कथाकारों की कथावस्तु में गाँव के पात्र शामिल हैं। इन्हीं के साथ रोना-हँसना गाना वार्तालाप इन्होंने सीखा है। गाँव इन कहानियों के अविभाज्य भाग हैं। आंचलिक परिवेश में इस प्रकार की साम्यता दोनों कलाकारों में है।

भाषा-शैली– रेणु जहाँ बंगाल व बिहार की मध्य स्थली पूर्णिया मैथिली भाषा में बढ़े हैं, वहीं शिव प्रसाद सिंह जी पूर्णरूप से भोजपुरी व बनारसी बोली के बीच तुतलाना सीखे हैं। डॉ. सिंह ने बनारस के गाँव में जन्म लिया, बनारस में पढ़ाई की और साहित्य का 'कखग' यू.पी. कालेज से सीखा, वहीं रेणुजी ने सिमरबनी से फारबिसरोज तक की पढ़ाई के बीच कहानी के पात्र गढ़ते रहे। इस प्रकार भाषा में स्थलगत अन्तर तो आया ही हैं। रेणु जी की पात्रो की बोली जहाँ बंगला से प्रभावित, मैथिली, बिहारी, भोजपुरी, 'कचराही', बोली में परिगणित है, वहीं डॉ. सिंह के चरित्र ठेंठ, देहाती बिगड़ी भोजपुरी भाषा का प्रयोग करते हैं। कथाकारों ने पात्र, स्थान,

2. आधुनिक परिवेश और नवलेखन– डॉ. शिव प्रसाद सिंह

वातावरण एवं परिस्थिति के अनुसार पात्रों से भी भाषा में संवाद कराया है। डॉ. सिंह ने तीन श्रेणियाँ– पात्रों की भाषा, वर्णनात्मक भाषा एवं स्वार्थ का 'मैं' की भाषा का प्रयोग किया है। वहीं रेणु जी ने पात्रों से ही सब कुछ कहलवा दिया है। वह अपनी कोई भाषा नहीं रखते हैं। भाषा में डॉ. सिंह ने जहाँ, ठेंठ, बिगड़े, तद्भव, उर्दू, हिन्दी, अंग्रेजी, बांग्ला, गुजराती, संस्कृतनिष्ठ एवं गालियों का प्रयोग किया है, वहीं रेणुजी ने एकदम देहाती ठेंठ, उर्दू, बेमेल, बिगड़े, अंग्रेजी, फारसी, उर्दू, गन्दी-गालियाँ मुहावरों उक्तियों, व्यंग्यों, कहावतों कथाओं का प्रयोग कर वातावरण को सजीव कर दिया है। इन कथाकारों की भाषा का रूप लोकगीतों, कथाओं, गानों, व्यंग्य, हास-परिहास आदि में सटीक दिखाई देता है। भाषा भाव की अनुचरी हो गई है। गन्दी गालियों का प्रयोग तो विचित्र है। सभ्य समाज यह स्वीकार करने में नॉक-भौं सिकोड़ता है, पर यहाँ की यह सच्चाई है। कुछ प्रिय शब्द, बिगड़े शब्द, स्थानीय शब्द हवा की तरह चले आये हैं। इनका प्रयोग न चाहते हुए भी लेखक को करना पड़ा है। इस प्रकार जनपदीय भाषा-बोली-बानी-आखर मन प्रयोग वातावरण के सर्वथा अनुरूप है। शहरी उपन्यासों में भी ये शब्द आये हैं। तुकबन्दियों भावों को व्यक्त करने के लिए तो 'सतसैय्या के तीर' की तरह आई हैं। उदाहरण– "बाप मरे तो कुमार", "माँ मरे तो दुअर"...... आदि। हजारों उदाहरण इन कहानियों, उपन्यासों में दर्शित हैं।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि कथास्तु, पात्रों के संवाद व चरित्र-चित्रण को यथार्थ रूप देने के लिए जिस बोली व भाषा का प्रयोग किया गया है, वह सर्वथा वातावरण के अनुस्वर ही है। रेणु व डॉ. सिंह भाषा के प्रयोग के स्तर पर अंचल विशेष की सच्चाई को हूबहू उतार देते हैं। इस दृष्टि से दोनों जनपदीय आंचलिक कथाकार सिद्ध होते हैं।

चरित्र-चित्रण डॉ. सिंह ने त्याग परक, मनुष्यता की खोज परक, शोषण परक, जिजीविषा प्रधान, व्यंग्य प्रधान, विद्रोह मूलक, बिखरते सम्बन्धों सूचक प्रेम परक, नारी

प्रधान आदि चरित्रों की रचना कर मानव की खोज को अपना लक्ष कहा है, वहीं रेणु ने अंचल को ही व्यक्ति मानकर पात्रों की रचना की, जो जिन्दगी के सुख-दुख, हास-पतन, प्रेम-करुणा, हार-जीत एवं यथार्थ परक सत्य को स्वीकार करते हैं। रेणुजी के पात्र विद्रोह नहीं करते, बल्कि एक सकारात्मक दृष्टि अपनाकर हल खोजना चाहते हैं। डॉ. सिंह का भैरो पाण्डे चिल्ला उठता है और विद्रोह कर बैठता है। नन्हों अस्तित्वको स्वीकारी है और आशा करती है कि बहुत खो जाने पर भी जीने की आशा तो बचती है। यही जिजीविषा उसे अन्य पात्रों से अलग करती है। डॉ. सिंह के पात्रों में चरित्र की प्रधानता है, रेणु के पात्र भावना प्रधान हैं। चरित्र-चित्रण में दोनों कथाकारों को सफलता मिली है। जनजातियों पर लिखी तमाम कहानियाँ डॉ. सिंह को शैलूष बना देती हैं, वहीं अछूते अंचलों पर लिखी गाथा से रेणु इस सदी के महान कथाशिल्पी घोषित किये जाते हैं। रेणु के पात्रों में पलायन के बराबर है तो डॉ. सिंह के विपिन व रामानन्द परिस्थियों से ऊब कर भाग जाते हैं। संवाद की दृष्टि से रेणु बड़े कंजूस हैं। डॉ. सिंह ने बड़े संवादों की रचना है। पात्रानुकूल संवाद अच्छे बन पड़े हैं। संवाद की दृष्टि से रेणु के कहानियों का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि संवाद कहीं एक शब्द दो शब्द या तीन शब्द से ही बोल दिया जाता है और भाव समझ में आ जाता है। डॉ. सिंह ने संवादों को लम्बा बना दिया है। कहीं-कहीं तो एक पृष्ठ तक संवाद चलते हैं। संवाद में उनकी उपयुक्तता, अनुकूलता, सम्बद्धता एवं स्वाभाविकता झलकती है। वस्तुतः रेणु जी के पात्र अपरिचित एवं अचीन्हे जगह से आये हैं, वहीं डॉ. सिंह के पात्र बनारस के आस-पास ही मिल जाते हैं। डॉ. सिंह के कथा-साहित्य में चरित्रों के व्यक्तित्व विखण्डन टूटी मनःस्थिति एवं अस्तव्यस्ता के बीच अधूरे, टूटे, उखड़े व खण्डित वाक्यों का संवाद शिल्प प्रतिष्ठित हो गया है। डॉ. सिंह ने जहाँ संवादों में भदेस शब्दों, देशज ध्वनियों एवं ग्रामीण टूटी-फूटी बोली को पात्रों से कहलवाया है, वहीं रेणु जी ने एकदम निखट्टू बोली में असंयमित संवाद कहलवाया है। संवादों में विरामों की कोई व्यवस्था नजर नहीं आती। इस प्रकार संवाद बड़े सजीव हो उठे हैं। पात्रों के चरित्र, वातावरण

की परिवेशगत विशिष्टता एवं कथावस्तु की सुगठित अवस्था की दृष्टि से शिल्पीय मोड़ पर दोनों कथाकार आकर मिल जाते हैं, जहाँ यह कहने को विवश होना पड़ता है कि दोनों कथाकार डॉ. सिंह व रेणुजी आंचलिकता के एकदम नजदीक हैं।

वातावरण– रेणुजी ने जहाँ राष्ट्रीयता परिदृश्य से गायब अचीन्हे, अनजान एवं सुनसान जगह को कथा का क्षेत्र बनाया है, वहाँ का वातावरण प्रस्तुत किया है वहीं डॉ. सिंह 'करैता' रेवतीपुर जैसे गाँवों का समूचा चित्र उतारा है। 'शैलूष' उपन्यास इस मामले में थोड़ा सा अलग है, जिसमें कबीलाई नट परिवार के अन्तर्द्वन्द्व एवं अस्तित्व संघर्ष को उभारा गया है। वातावरण की सृष्टि में दोनों कथाकारों ने श्लाघ्य प्रयास कर अछूते वातावरण को स्पर्श किया है।

उद्देश्य– डॉ. सिंह ने ग्रामीण परिवेश को कथा का आधार बनाया है। 'गली आगे मुड़ती है' में शहरी परिवेश को आधार बनाया है, पर शेष अन्य उपन्यासों में वे गाँव का मोह नहीं छोड़ पाते। रेणुजी भी इस मोह से नहीं उभरे हैं। डॉ. सिंह ने कबीलाई नट परिवार के सुख-दुख को 'शैलूष' में चित्रित कर यह कहने में सफल रहे कि अछूतों को साहित्य में स्थान नहीं मिला। यों तो और भी उपन्यास इन नटों पर लिखा गया है, पर जिस तरह का उद्देश्य परक यह उपन्यास है वह इनके भगीरथ प्रयास का ही फल है। रेणु ने जहाँ अपना उद्देश्य अछूतो, गरीबों, शोषितों एवं अचीन्ह लोगों को साहित्य में लाने का रहा है, वहीं डॉ. सिंह ने जमींदारी प्रथा से टूट रहे मनुष्यों की दर्दनाक दास्तां को उभारना था, जो आज भी दोहरी दासता की जिन्दगी जी रहे हैं। उद्देश्य की दृष्टि से दोनों कथाकारों ने अपना मुकाम लगभग एक ही तय किया है, जहाँ सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधि पात्र प्रश्नवाचक दृष्टि से लेखक को देख रहा है। यह कम महत्व की बात नहीं है कि कम फलक पर इन कथाकारों ने लगभग आधी शती की कारुणिक कहानी इन रचनाओं में उकेरा है। ऐसा इसलिए सम्भव हो सका है कि ये रचनाकार इसी मिट्टी में जन्म लिए, बढ़े और यहीं आखिरी साँस ली। यह बड़े भगीरथ प्रयत्न का सार्थक

परिणाम है।

अन्त में, फणीश्वरनाथ रेणु व शिव प्रसाद सिंह के कथा-साहित्य में आंचलिकता की परिकल्पना के तुलनात्मक अध्ययन पर यह निष्कर्ष निकलता है कि लोक सांस्कृतिक दृष्टि से डॉ. सिंह व रेणुजी की रचनायें लगभग परिवेशगत रूप में अपने-अपने गुण से भरपूर हैं। इस परिवेश की स्थानीय रंगत इन रचनाओं में प्रभावी है। शिल्पगत दृष्टि से भी ये रचनायें लगभग एक ही ध्येय को पूर्ण करती हैं। तमाम आलोचनाओं का विनम्र उत्तर देते हुए मुझे यही कहना है कि फणीश्वरनाथ रेणु जिन अर्थों में ग्राम परानपुर, मेरीगंज को लेकर आंचलिक हैं, उन्हीं अर्थों में डॉ. सिंह करैता तथा रेवतीपुर को लेकर उतने ही आंचलिक हैं।

●

उपसंहार

उपसंहार

इस शोध प्रबन्ध में आंचलिकता की परिकल्पना, परिभाषा, स्वरूप-लोकसांस्कृतिक व शिल्पगत, रेणु के कथा-साहित्य में आंचलिकता, डॉ. शिव प्रसाद सिंह के कथा-साहित्य में आंचलिकता, तुलनात्मक परिकल्पना विषयों पर विस्तार से चर्चा की गई और यथासम्भव आञ्चलिक सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में दोनों कथाकारों की कृतियों का निष्पक्ष अन्वेषण किया गया है। अन्वेषण की प्रक्रिया साहित्य में प्राचीन काल से चली आ रही है, आगे चलती रहेगी, क्योंकि ज्ञान की कोई परिधि नहीं है। यथासम्भव विषयों पर मेरे द्वारा खोजपरक दृष्टि अपनाकर नूतन चीजें प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है। इस दिशा में अभी और कुछ खोजना शेष है।

शोध विषय निश्चित होते समय गुरुवर डॉ. राम किशोर शर्मा जी ने एक वाक्य कहा था– ''अनचीन्हे, अज्ञात, अबूझ व अपरिचित विषयों पर खोज एक नई दिशा का बोध कराता है और कम से कम उन्हें भी साहित्य में दिये गये नाम को राष्ट्रीय परिदृश्य पर लाया जाय।'' वस्तुतः गुरूजी का यह प्रेरणा वाक्य मेरे मन में हमेशा गूँजता रहा और दिये गये विषय पर विविध स्थानों से जानकारी लेने हेतु स्वयं जाना पड़ा। विशेषकर, रेणुजी के साहित्य के बारे में एक स्थान पर उनके कथा-साहित्य का मिल पाना सर्वथा असम्भव था। इन्हें ढूँढ़ने के लिए नागरी प्रचारिणी सभा से लेकर पूर्णिया एवं बम्बई वि०वि० से हिन्दी संस्थान तक के कई चक्कर लगाने पड़े। रेणुजी की कहानियाँ तब जाकर लगभग 60 की संख्या में मिल पाई, इसमें रेणु रचनावली-भारत यायावर ने काफी मदद की। डॉ. सिंह के कथा-साहित्य को खोजने में कोई परिश्रम नहीं करना पड़ा, क्योंकि ज्यादातर इनके ग्रन्थ वाणी, राजपाल, लोकभारती आदि से प्रकाशित हैं।

फणीश्वरनाथ रेणु तथा डॉ. शिव प्रसाद सिंह ग्रामीण परिवेश को उभारने वाले महान कथाकार हैं। ये कथा को वहाँ से शुरू करते हैं, जहाँ मुंशी प्रेमचन्द लगभग खामोश से हो गये थे। आजाद हिन्दुस्तान में राजनीतिक बेड़ियाँ टूट चुकी थीं, जमींदार

अन्तिम साँसें ले रहे थे। एक पीढ़ी काल की अंधी सुरंग में समा चुकी थी, नई पीढ़ी जन्म ले रही थी। जमींदार तो चुक गये, लेकिन नये रूप में छुटभैय्ये नेता, व्यापारी, धनिक वर्ग छद्मवेश में आ रहे थे, जो समाज में नई-नई बिसातें बिछा रहे थे। जैपाल सिंह इसी का प्रतीक था, जो पैनी निगाह से शोषण के नये नये तरीके ईजाद कर रहा था। डॉ. सिंह ने इन परिवर्तनों को बड़ी बारीकी से देखा, सुना, समझा और कागजों पर उतारा। ज़िन्दगी से हार चुके, परिस्थितियों के झंझावात सहते हुए इन कथाकारों के पात्र अपनी मुक्ति के लिए छटपटा रहे थे। इनकी अकुलाहट को उपन्यासों व कहानियों के सैकड़ों पात्रों ने अव्यक्त रूप बदल कर कहींबेला, कहीं नन्हों, कहीं चितकवर्ण का बाना पहना। इन्हीं धड़कनों के स्वर इन कथाकारों के मूल उत्स रहे हैं। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक पहलुओं को इन कथाओं में व्यक्त किया गया है। डॉ. शिव प्रसाद सिंह की लगभग सत्तर कहानियों एवं तीन उपन्यासों एवं फणीश्वरनाथ रेणु की लगभग 63 कहानियों तथा छः उपन्यासों को विश्लेषण की दृष्टि से परखा गया है। सम्भव है कि कुछ प्रसंग छूट गये हों। अध्ययन के विविध रूप हैं, अनन्त सम्भावनायें हैं, जिन पर भविष्य में और भी जिज्ञासु लोग अध्ययन करेंगे। मैंने अपनी जानकारी, खोज एवं परिश्रम के अनुसार भरसक प्रयास किया है कि अछूते सन्दर्भ उठाकर देखे जाँय। इस सम्बन्ध में यदि कुछ कमी रह गई हो तो सुधीजन बहुमूल्य विचार से हमें अवगत करायेंगे। इसी आशा एवं विश्वास के साथ हम अपनी बात यहीं समाप्त करते हैं।

विनयावत :

रमेश कुमार शुक्ल
शोध-छात्र, हिन्दी-विभाग
इलाहाबाद वि०वि०

(11) हिन्दी के आंचलिक उपन्यास सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भ	**डॉ० विमल शंकर नागर**	प्रेरणाप्रकाशन, मुरादाबाद
(12) आंचलिकता से आधुनिकता बोध	**डॉ० भगवती प्रसाद शुक्ल**	ग्रन्थम प्रकाशन, कानपुर
(13) कहानीकार	**फणीश्वर नाथ रेणु**	राजा रैना, सीमान्त प्रकाशन, दिल्ली
(14) शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त	**गोविन्द त्रिगुणायत**	भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली
(15) हिन्दी उपन्यास–एक अन्तर्यात्रा	**डॉ० राम दरश मिश्र**	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
(16) रेणु से भेंट	**भारत यायावर**	वाणी प्रकाशन, दिल्ली
(17) रेणुरचनावली	**भारत यायावर**	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
(18) हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनको शिल्प विधि	**डॉ० आदर्श सक्सेना**	सूर्य प्रकाशन मंदिर बीकानेर
(19) आधुनिक साहित्य	**डॉ० नन्द दुलारे वाजपेयी**	भारती भंडार, प्रयाग
(20) अलग-अलग वैतरणी गली आगे मुड़ती है तथा अन्य उपन्यास व कहानियाँ	**डॉ० शिव प्रसाद सिंह**	लोक भारती व वाणी प्रकाशन नेशनल पब्लिशिंग हाउस राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित।